मन की बात

लेखक - तुलसीराम प्रजापति

मन पर करो विचार!

आत्मा-प्राण प्राण का पुरुषार्थ बुद्धि सोच बनता,
जैसा सोच बुद्धि का होता मन वैसा किया करता।
सोच सुधरे मन सम्हले करना करने का मन होता,
मन लगे जीवन सुधरे मानव मानस की विशेषता॥

मन-चला, मन-बढ़ा मन-लगा मन का ठीक हुआ कैसा,
मन अटका-भटका-खट्टा हो तो मन टूटता जावेगा।
मन मौज-मस्ती मन का खेल ही है बेफिक्री का जीना,
मानव मन की एक बात है मन भाया जन जन अपना॥

मन की बात पर करो विचार,
देखो समझो निकले सार।
बुद्धि आश्रित मन मंथन अभिसार,
सोचे समझे मानव सारा संसार

ॐ भूर्भवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धिमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

मन की बात

(मन मानसिकता की खोज खुलासा अद्भुत गाथा)

- सूक्ष्म संरक्षण -

आध्यात्म शक्ति एवं गुरु सत्ता

- लेखक -

तुलसीराम प्रजापति

46, बाणगंगा मेन रोड, इन्दौर (मध्यप्रदेश) पिन-452015

मों- 9826799243

- समर्पण -

जन्म मिला प्यार मिला जीवन भी सुधार दिया।
स्वयं दुःख तकलीफ सहे पर मुझको दूर रखा॥
माता-पिता परिजनों ने अपना सब कुछ मान लिया।
गुरु ज्ञान विद्या सिखलाई कर्त्तव्य पालन सिखा दिया॥

अवसर का सम्मान किया तो प्रतिभा उभार मिला।
संतुलित मस्तिष्क बुद्धि विवेक ज्ञान मन ने साथ दिया॥
यथा यर्थात मन मानसिक 'मन की बात' कह दिया।
आदर ! सम्मान !! परिजनों समर्पण नम्र प्रणाम किया॥

- तुलसीराम प्रजापति

अपनी बात

आदरणीय दादाजी की लिखी पुस्तकों को हम ग्रांडसन देखते हैं। पढ़ते भी हैं। पूछताछ बातचीत भी करते हैं। मन की बात पुस्तक तो हमारे सामने ही लिखी है। मैंने दादाजी से बोला कि आपने मन की बात पुस्तक लिख दी। मैं क्या लिखूँ? बोले मैंने यह पुस्तक लिखी है तो तुम इस पुस्तक पर अपनी बात लिख दो। मैं तैयार हो गया। मैं स्वयं और मेरे भाई लोग दादाजी की। इस पुस्तक के सरटेन टॉपिकों पर बातचीत करते रहे हैं। लेकिन अब जब यह पूरी पुस्तक मैंने पढ़ी तो लगा कि दादा और ग्रांडसन के बीच जनरेशन गेप पहिले और वर्तमान शिक्षा-दीक्षा का ही अन्तर लगा। पुस्तक के चेप्टर नाम उनका मेटर लिखने में तो जनरेशन गेप आने ही नहीं दिया है। खैर !

हम दादाश्री को बुकराईटर दादा कहें तो बहुत अच्छा होगा।यह मन की बात पुस्तक गद्य में लिखी है। गद्य में विचार पद्य में भावों को हमने समझा। अध्यायों के हेडिंग अट्रेक्टिव है, जिनसे अन्दर के मेटर का अंदाज हेडिंग पढ़ते ही लग जाता है। है तो यह कि जिनमें नई जनरेशन के माईन्ड की समझ को बड़े ही सांकेतिक तरीके से एक्सप्लेन किया है, जिससे कोई अखरने वाली बात हो भी तो वह नहीं अखरे। हुआ तो यह है कि माईन्ड और मेन्टेलिटी को बड़े बारीकी से टच करते हुए सब कुछ कह दिया हो। एक्सप्लेन करने को कुछ रह ही नहीं गया है।

ह्यूमन माईन्ड अटकता भटकता भी रहता है। मेड इन हेवन क्याहै ! प्रीनय ठीक है। नहीं तो मन को लड्डु से क्या पेट भरेगा। नहीं टाइम फेक्टर सब करवा लेता है। इसके लिए ही जीवन जीने के। लिए मन संवाद में रिश्तों के सदाबहार की कल्पना की है।

अच्छा तो यही ही है कि आप जो भी पुस्तक पढ़ेंगे सेल्फ रियलाईज्ड करेंगे कि आत्मा - प्राण और मस्तिष्क (माईन्ड) अर्थात बुद्धि (इन्टेलीजेंस) इच्छा (ईगरनेस) यह ह्यूमन की ह्यूमनिटी ही। तो है। इसे नहीं पहचानने के कारण ही देवी-देवताओं को सर्च करता मनुष्य भटका करता है। इसका साल्यूशन उसकी आत्मा (प्राण) और बुद्धि (मन) ही है। जो सोच समझ विचार के मनन चिन्तन से मन की इच्छा (जिज्ञासा) के रूप में प्रकट होता है। इसी मन की बात को पुस्तक हर चेप्टर में बताया गया है। मन मानसिकता यही तो जीवन है। इससे ज्यादा ह्यूमन कुछ नहीं है। वह तो ढांचा मात्र है। जो नष्ट होने वाला है। इसी की सरटेन नॉलेज को ही जनरेशन गेप में लिया जाता है। बस !

एज ए होल पुस्तक ह्यूमन लाइफ लॉग के पाइंट से अच्छा डारेक्शन है। आदरणीय दादा का माइंड देखो तो जनरेशन गेप को एकदम फिलअप कर डायरेक्शन देता है। मेरा सजेशन है पुस्तक है पुस्तक को ध्यान से पढ़ा जाय। जीवन की रियलिटी समझ में आ जाएगी। प्राण और बुद्धि के साथ मन को समझने के लिए पुस्तक सर्वश्रेष्ठ है। विस्तार के लिए तो ईश्वर की विलक्षणता है, जिसने ह्यूमन माइंड दिया है।

मेरे दादा आप इसी प्रकार हमारे सबको 'मन की बात' कहतेरहो। हम समझते रहे। इससे अच्छा और कुछ नही हैं। आपकी अमरता में हम ग्रांडसन सदा समर्थ रहेंगे। आपने सबसे अच्छा ग्रांडसन को समझा है। तब ही तो अपनी बात कहने का मौका दिया दुनिया में सबके दादा अपने अपने ग्रांडसन को ऐसे ही मौका दें। मन की बात करें, तो जनरेशन गेप की बात कहना ही भूल जायेंगे।

फिर यही कहेंगे कि लिंकवद्ध लाइफ प्रोग्रेसिव होती है। इसमें अन्तर जब आता है तो ही विज्ञान, कला, धर्म, दर्शन और।मान्य मान्यता सृष्टि की स्टेविलिटी की प्रगतिशीलता को अग्रेशित करती है। जो जीवन जिंदगी की लिंकवद्ध अनिवार्यता है। जो मानव मानस के लिए सामान्य हो। जो पुस्तक के सभी चेप्टरों से स्पष्ट है।

मुझे तो 'अपनी बात' 'मन की बात' के विषय में इतना शॉर्ट में कहना उचित है विस्तार के लिए तो ईश्वर की विलक्षणता है जिसने ह्यूमन माईन्ड दिया है। पुस्तक अपने आप में सफीशिएन्ट आस्पेक्ट को क्लीयर करती है ऐसा मेरा मानना है।

मेरे दादा आप अमर रहें। सबके दादा ऐसे ही सिद्ध हो, जिससे ग्रांडसन गौरवान्वित हों, होते रहें। 'मन की बात' पुस्तक अच्छा डायरेक्शन सिद्ध होगी।

जीवन जीने के विचार और गुण ही पूज्यनीय बनाते है। अमरता की याद इसी में छिपी है।

दिनांक- १५-८-२०१२
दिन - बुधवार

(जयन प्रजापति)
पुत्र- श्री नरेन्द्र प्रजापति
प्रपोत्र - श्री तुलसीराम प्रजापति

आत्मकथन

मन सोया झकझोर कौन जगायेगा उसे आकार।
मीठी वाणी कौन बतायेगा उसे बोल बोल कर ॥
'आत्मकथन' थोड़े में सब कह दिया यहाँ खोल खोलकर।
खूब लिखा यह 'मन की बात' शामिल किया सोच समझकर ॥

हमारा यह 'मन की बात' संक्षिप्ताकार ग्रंथ अपनी विशेषता को उजागर कर जीवन के साये में जीवन जीने का मार्ग बताता है। मानव मन की जीवन की समग्रता के मनतव्य तक पहुँचाता है। वह वर्तमान को सुधारने में लगा ही रहता है। चिंतन-मनन - मंथन कर प्राण और पुरुषार्थ का आभास कराता है। सोच आगे बढ़ता है। किन्तु बौद्धिक क्षमता का अन्त आता ही नहीं है। मन - बुद्धि, प्राणआत्मा पर्यायी है। हृदय गति देता है। मस्तिष्क सोचता है। इन्द्रियों की अनुभूति कला अपनी अलग ही है। मन सबका होकर चलता है, सब उसके हैं, वह सबका है, तो आत्म-निर्माण आत्म परिष्कार, आत्म विकास, आत्म सुधार, आत्म समीक्षा आत्म चिंतन, मानव मानस देवत्व- आत्मदेव दृष्टिकोण से 'मन की बात को समझ लिया जाय। जीवन जीने का स्वस्थ, स्वच्छ फिर इससे कोई अच्छा मार्ग ही नहीं मिलेगा। हमने अपने इस संक्षिप्ताकार ग्रंथ में आत्मदेव मानव मन की मानसिकता के विभिन्न आयाम बिन्दुओं पर विचार मंथन किया है। हमारा तो यह अटूट विश्वास
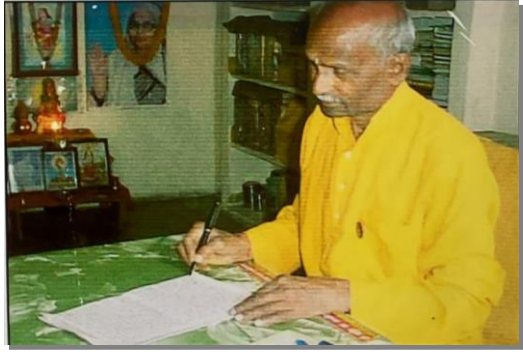
है कि किसी का कैसा भी सोच विचार हो, बुद्धि बौद्धिक आधारित मन मंथन का सिलसिला आगे ही बढ़ेगा।

पिता न कभी बेटे को अपने दिल की बात कहकर समझा पाताहै। न कभी बेटा उन्हें अपने ख्वाबी - ख्याल व्यक्त कर पाता है। सब मन का मन ही में धरा रहता है। जनरेशन गेप कारण बनता नजरआता है। मन की दशा और दिशा परस्पर व्यक्त हो। समझें ! समझाये, जनरेशन गेप उत्पन्न नहीं हो, जनरेशन से जनरेशन प्रगतिशीलता बनती जाय। 'मन की बात' साधे। मन को बनायें। आत्मदेव को जगायें। नवरात्रा देवी स्वरूप को साधे। आगे और विवेक प्रज्ञा से विचारा जाय, अच्छा है। यहाँ यही सुझाव है कि विचार उत्कृष्टता की सूझ-बूझ सीमा में वृद्धि जनरेशन से जनरेशन की जाना चाहिए। लिंकवद्ध अनुवांशिकीय प्रभावित पर्यावरणीय श्रृंखला बन जाय। फिर जनरेशन गेप कहीं रहेगा ही नहीं। जो मानव मानस हित में होगा।

अगली से अगली पीढ़ी समयकालिक 'मन की बात' संक्षिप्ताकार ग्रंथ के प्रत्येक बिन्दु पर मन मंथन बार-बार करें। जीवन सुखशान्ति, विश्वास - भरोसा की अनुभूतियों से भर जाएगा। जीवन जीने में अच्छा लगेगा।

पुस्तक का लेखन सन 2012 मैं किया

विचार प्रकट करने की स्वतंत्रता का हम स्वागत करते हैं।

श्रावणी पूर्णिमा - गुरुवार
दिनांक २ अगस्त सन् २०१२

लेखक
(तुलसीराम प्रजापति)
46 बाणगंगा मेन रोड,
इन्दौर (मध्यप्रदेश) पिन 452015
मो0-9826799243

विषय सूची

१- करना ! नहीं करना !

परमात्मा ने मानव के ऊपर मेहरबान होकर उसकी रचना की है। वह प्राणि जगत में सबसे ही निराला अग्रगण्य है। बौद्धिक क्षमता उसे इतनी प्राप्त है कि वह त्वरित हल निकाल लेता है। मन ऐसा व्यरस्थापक है कि बौद्धिक क्षमता के आगे-आगे चल कर तुरंत निर्णय लेकर आज्ञा दे देता है। मन होता अबोध है, लेकिंन उत्साही होता है। वह चंचल होता है। लौट पलट कर निर्णय में सुधार करता रहता है। बौद्धिक योजना को कभी असफल नहीं होने देता है। मन अटकता भी है, भटकता भी है, टूटता भी है। मरता भी जाता है। समय-समय पर खट्टा भी हो जाता है। इतने सबके बाद भी वह मन की मन में रखकर चलता रहता है। वह रुकना नहीं जानता है। ऐसे में हम शरीर की मन को युवा शक्ति कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। मन अपने उत्साह से विषय वस्तु को भविष्य के गंतव्य मार्ग पर चल पड़ता है। वर्तमान में उसका निर्णय वाहवाही की दाद देकर पीठ थपथपा देता है।

मन का निर्णय इसी बात से स्पष्ट हो जाता है कि जो योजना मस्तिष्क ने प्रस्तुत की है उसे वह लेकर आगे बढ़ा देता है। योजना अनुकूल प्रतिफल कैसा है, इसका निर्णय दूसरे करते हैं। उसके लिए तो वह अनुकूल होती है। व्यक्ति अपने-अपने दृष्टिकोण से अनुकूल - प्रतिकूल कहता है जो भी व्यक्ति योजना बना कर लागू करता है, उसके लिए वह अनुकूल ही समझ कर लागू करता है। मन की यह बात उसके लिए रहस्यपूर्ण होती है कि आगे परिणाम कैसा, क्या होगा? यह रहस्यपूर्ण मन की गोपनीय बात है जो व्यक्ति को मनभायी रहती है। लगता ऐसा है कि व्यक्ति मनमानीकर रहा है। मन छोटा नहीं वह मोटा होता है। हीनता आने नहीं देता है। व्यक्ति को निर्णय लेने के मार्ग पर लाकर खड़ा कर देता है। क्या करना है? कैसे करना है?कितना करना है? कब करना है ? बस यह याद रहता है। क्यों करना है, परिणाम क्या

निकलेगा, कितना निकलेगा। कैसा निकलेगा अपने माफिक होगा या नहीं होगा। इस विषय में सोचने, समझने जानने की अभी कोई आवश्यकता नहीं होती है बस एक ही बात याद रहती है। करना है। करता है। करने के प्रथम प्लेटफार्म पर आ जाता है

निर्णय के इस बिन्दु पर आत्मा की आवाज बुद्धि की बौद्धिकतामन का उत्साह मनुष्य को करने के लिए प्रेरित करता है।

आवश्यकता को समझकर उत्पन्न जिज्ञासा करने की इच्छा शरीर की इन्द्रियों के माध्यम से व्यक्त होने लगती है, यहाँ उचित, अनुचित की समझदारी की कोई आवश्यकता नहीं देखी जाती है। इस विषय में जानने की कोई आवश्यकता को उत्पन्न होने नहीं दिया जाता है। जितना याद है बस इसी तरीके से करने को अमादा हो लिया जाता है। कोई नई सूझबूझ की सलाह लेने की आवश्यकता नहीं होती है। समय भी नहीं होता है। कोई कुछ कहे तो उसकी मानने की बात को अनसुनी जैसा कर अपनी समझ ही काम में ली जाती है। बात सामने आ जाती है।

हमने उक्त वर्णन में मन को अबोध किन्तु उत्साही युवा कहा है। मनुष्य के पास इतनी बौद्धिक क्षमता होती है कि वह करने का तरीका तुरंत अपना लेता है। करने लग जाता है, किस विषय में क्या निर्णय लेना है, लिया जाता है। अब हम यह देखेंगे कि करना है या नहीं करना है। कैसा ?क्या? कितना करना है। लक्ष्य का एक-एक बिन्दु सामने आते हैं।

सोना, उठना, जागना, यह हमारे काम के अनुसार होता है। होना,चाहिए। शिशु अवस्था से लेकर वृद्धा अवस्था तक कब कितना कैसा क्या उपयोग होना चाहिए, यह अवस्था के अनुसार होता है, जो पालन किया जाता है। सिशु अवस्था से वृद्धा अवस्था तक शरीर अवस्था मान से सोने उठने जागने

के समय में अंतर होता है। स्थिति परिस्थिति के अनुसार कम ज्यादा अंतर हो जाता है जो पालन करना भी पड़ता है।

१. शरीर सुविधा स्वास्थ्य रक्षा उपलब्ध साधन और अपने काम के अनुसार समय सीमा में ही सोया जाय।
२. आलस्य में अपने काम के महत्व में कमी न करना, नहीं चाहिए।
३. तुलनात्मक दृष्टि से यह देखा जाता है कि किस काम का कितना महत्व है। कब उसकी आवश्यकता है, अपने अनुकूल स्थिति, परिस्थिति के अनुसार करने या नहीं करने या कितना कब करने का निर्णय लेना चाहिए।
४. बहकावे, दबाव, विपरीत स्थिति आदि में करने नहीं करने के निर्णय में फेर बदल इतना ही उचित है कि परिस्थिति को टाला जाय, लेकिन धीरता रखी जाय। अधीर नहीं हुआ जाना चाहिए। ना ही अपनी योजना को इस प्रकार व्यक्त किया जाय कि जिसका विपरीत प्रभाव पड़ता हो।
५. भविष्य मान मूल लक्ष्य से भटका नहीं जाय। महत्व को समझते हुए समय सामयिक पारिस्थितिक दशा में संतुलन नहीं खोया जाय। उचित का ध्यान रखा जाय। किया जाय।
६. व्यवहार की मर्यादा होती है। किससे कैसे व्यवहार हो याद हो, लेकिन कब कितना, कैसा क्यों का ध्यान अवश्य रहे। मान, अपमान में अपने आप को प्रस्तुत करने में सामने वाले की मनमर्जी और अपनी इच्छा का ध्यान अवश्य रहे।
७. नीति नियम समय-समय उत्पन्न ज्ञान स्थिति परिस्थिति आवश्यकता आदि के अनुसार बनाये हैं जिनमें बदलाव लाया भी जाने लगा है, नये लागू भी हुए हैं, जिनका जीवन में पालन पूर्ति भी किया है। छोड़ा भी

है। बदला भी है। वर्तमान में उन्हें भविष्य मानसे पालन करना है। प्रतिकूल को पालन नहीं भी करना है।

हमने केवल सिद्धान्तन विचार व्यक्त किया है। व्यवहार में तो व्यक्ति-व्यक्ति, स्थान-स्थान, समय- समय के अनुसार ही चला जाता है। जो आवश्यक भी है। मानवता खोई न जाय। ठगी न जाय। भूली न जाय। ध्यान अवश्य रखा जाय जन्म-मृत्यु के लिए ही हुआ है। मृत्यु जन्म को नियन्त्रित कर ही होती है। तो फिर पशुवत पेट प्रजनन भर के लिये ही नहीं जिया जाय। मानवता की उत्तम मिसाल कायम कर ही जिया जाय। जितना जीवन जिया जाता है उसमें उचित को स्थान दिया जाय। करना भी यही है। इसके अतिरिक्त होता भी क्या है। मान कर ही अपने सोच में मन की बात मनवाई जाय। पर मन में जमना चाहिए कि मन भाये लड्डू एक उचित मात्रा में ही खाये जाय। मन का मानना भी यही है, जो मन में जमना है, मन में बसना है, मन को मन से मिलना भी है। पारिवारिकता सभ्यता समाज में वरिष्ठता तभी आएगी जब व्यक्ति अपने आप में निर्णय की क्षमता को मन में बसा ले अपना सुधार इसी में है। मानना नहीं मानना, करना नहीं करना का उचित मार्ग प्रशस्त होता चला जायगा।

कहने और बताने को बहुत कुछ होता है, लेकिन उचित वही है जो करना है, उसे करना है। जो मानना है उसे मानना है। जो नहीं करना है। उसे नहीं करना है। जो नहीं मानना है उसे नहीं मानना है। यह मन की बात है। एक खुला रहस्य है कि मानव को मानवता, मनुष्य को मनुष्यता, जीव को जीवात्मा, आत्मा को परमात्मा,व्यक्ति को सामाजिकता को समाजोपरी की श्रेष्ठता को सदा ध्यान में रखना है। पालन करना है। सुख की विलासता, स्वार्थ अतिशयता, अनैतिकता की पराकाष्ठा, लालच की हीनता, मनवाने के लिए मन को मजबूर नहीं करना है। मन को स्वस्थ, स्वच्छ सभ्य कीउत्कृष्टता के मार्ग पर चलने दो। यह याद रखने की बात है। करने, नहीं करने की दशा और दिशा अपने अपने प्रकार के काम के अनुसार होती है। परिवार में मुखिया और आश्रित होते हैं,

जिनके हाथ में कमाने और खर्च करने की व्यवस्था होती है। वह तो परिवार व्यवस्थापक होता है। किन्हीं परिवारों में अर्थात संयुक्त परिवारों में एक से अधिक कमाने और खर्च करने में अधिकृत रहते हैं, किंतु उनमें भी परिवार मान्यता के अनुसार क्रम निर्धारित रहते हैं। शेष सभी आश्रित होते हैं। आश्रितों में वृद्ध, युवा, बच्चे, सगे संबंधी आदि होती हैं। इन सबके उनके अपने-अपने दायित्व, उत्तरदायित्व, अधिकार, कर्त्तव्य होते हैं। जिनके अंतरगत वे परिवार में अपने-अपने क्षमता अनुकूल निर्वाह करते हैं। क्या करना, क्या नहीं करना, कितना, कब, कैसा करना आदि सब परिवार हित में ही किया जाता है अथवा उनके अपने दायित्वों के अनुसार होता है। करने वाले ऐसे भी होते हैं जिनका दायित्वभार परिवार के वरिष्ठों का होता है। ऐसे में प्रायः विद्यार्थी होते हैं। अक्षम सक्षम की देखरेख में होते हैं। इन्हीं सब बातों की आवश्यकताओं के अनुसार परिवार में संचालन व्यवस्था होती है। कुछ अति करने वाले भी होते हैं। जो न कमाई करते हैं न पूछताछ या कहने का इंतजार किये बिना मनमर्जी के अनुसार अच्छे बुरे तरीके से कमाना, खर्च करना आदि भी करते हैं। ऐसे से उचित करने की उम्मीद नहीं होती है, आदि। लेकिन व्यवस्था मान लें और परिवार के हित को देखते हुये करने नहीं करने के जवाबदार परिवार का हर छोटा-बड़ासभी होते हैं। जो करते हैं। भूल-चूक, गलती भी हो जाती है तो आपसी सहयोग से समाधान भी करते हैं। इस प्रकार से परिवार व्यवस्था संचालन होता है। एक परिवार में एकल के हिसाब से तो संयुक्त परिवार में संयुक्त परिवार मान से सबकुछ किया जाता है। योग्यता, वरिष्ठता, स्तर, प्रतिभा आदि का ध्यान हर परिवार में रखा जाता है।

संक्षिप्त में यही है कि करना नहीं करना। आदि की दशा दिशा के दायित्व को परिवार का हर सदस्य निभाता है, निभाना चाहिए। इसी में भला है। मानमर्यादा प्रतिष्ठा है। परिवार का वर्तमान और भविष्य निर्भर करता है।

२ - ईश्वर - अपार मन- कमाल

वर्तमान मानव विज्ञानयुग का प्राणी है। उसे ईश्वर नहीं दिखता है। उसने अपनी दूरी इतनी बढ़ा ली है कि वह पूछता है कि ईश्वर है तो कहीं न कहीं तो रहता होगा। वह कहाँ रहता है। पता हो तो बताओ। हम उसे फोन तो कर ही सकते हैं। इस विचार में मनुष्य के ऊपर तरस आता है। अरे! ईश्वर का आकार प्रकार अपार हैं.यह ठीक है कि ईश्वर को इन्द्रियों अनुभव नहीं कर सकते, तो ईश्वर नहीं है। यह सोचना तो और भी गलत है। सूर्य, चंद्र, पृथ्वी गृह नक्षत्र ये क्या हैं? इन्हें नियमबद्ध कौन चला रहा है। चलो मनुष्य बताए कि इनकी नियमबद्धता में वह परिवर्तन कर सकता है, नहीं। तो यह मानव सोच भी नहीं सकता है कि ये सब उसी परमात्म शक्ति में शामिल है जिसे हमने देखा भी नहीं और कहते हैं ईश्वर है ही नहीं होता तो कहीं कहीं मिलता। तो फिर आइये हम ईश्वर का परिचय देते हैं। यह चैतन्य सृष्टि क्या है ? ब्रह्माण्ड इतना लम्बा-चौड़ा विस्तृत है जिसे ओर छोर से आँख देख नहीं सकती। वनस्पति, खनिज, प्राणी जिस पर मानव यह समझ नहीं पाया है कि इनकी कौन व्यवस्था कर रहा है। सूर्य, चंद्र, गृह नक्षत्र किसके आदेश से काम कर रहे हैं। आकाश को कौन नाप पाया है वायु को कौन पकड़ पाया है ? गृह नक्षत्रों की गिनती कौन लगा पाया है ? दिन-रात को कौन बदल पाया है ? आदि-आदि ऐसे प्रश्न हैं कि जिनका जवाब नहीं दिया जा सकता। यह स्पष्ट है कि ईश्वर ब्रह्माण्ड और ब्रह्माण्ड संबंधी सभी का एक अपार दायरा हो वह किसका हो, यही तो ईश्वर की काया का स्वरूप है। इसका पार नहीं पाया जा सकता है। इसे केवल अनुभूतियों के माध्यम से ही समझा जा सकता है।

मानव ने अपने ज्ञान-विज्ञान बुद्धि, सोच-समझ और तो और शरीर को चीरफाड़ तक करके देख लिया है, किंतु ईश्वर का पता नहीं लग पाया है। ऐसे

में यह ही कहना पड़ेगा कि ईश्वर अपार है। अदृश्य है। उसकी शक्ति अकूत है। हमारे शरीर के अन्दर शक्ति है, क्या?

मनुष्य इसके स्थान पर कुछ प्रतिष्ठापित कर पाया है ? नहीं। हम शरीर को देख सकते हैं, लेकिन बुद्धि, मस्तिष्क की शक्ति सामर्थ्य आत्मा से परिचय और मन के कमाल को मानव समझ पाया नहीं अनुमान भले चाहे जितना लगाया जा सकता है लेकिन वह प्रामाणिक नहीं हो सकता है। कहना यही पड़ेगा कि ईश्वर दिव्य है। सत्य है। शाश्वत है और सनातन भी है। इसमें मानव की क्षमता काम ही नहीं कर सकती है कि वह समझ ले आध्यात्म विषय बोध यही है कि हम अनुभूति जन्य यही कह सकते हैं कि वह सम्पूर्ण सृष्टि का निर्माता, पालक, पोषक और परिवर्तनकर्ता है। मनुष्य उसके सामने नगण्य है।

आध्यात्म बोध से ईश्वर की अभूति होती है। आत्मा के रूप में वह हमारे अंदर है। मन के रूप में वह व्यवस्थापक है जो हमारे अंदर है उसे आत्मा बोध कहा जाता है यह आत्मा बोध ही मैं हूं। मेरी शक्ति का केंद्र है। मेरी शक्ति का केंद्र आत्मा है। आत्मा अजर है। वह ही परमात्मास्वरूप शरीर में व्याप्त है। शरीर अवश्य जन्मता मरता है, किंतु आत्मा नहीं। यही कारण है कि मैं स्वरूप आत्मा कहलाता हूं। जो उत्पन्न नहीं होती, मरती नहीं। मोक्ष भी जिसकी नहीं होती। तो फिर मेरा शोक मोह कैसा ? मानव ने अपने आपको शरीर रूप में समझ लिया है। तभी तो वह अपना परिचय नाम, वर्ण, कुल, व्यवसाय, स्थान से लगाव दिखाते हुए देता है। जब शरीर से प्राण निकल जाते हैं तब शरीर निर्जीव हो जाता है।सड़ने लग जाता है, इसीलिए इसकी क्रिया अग्निदाह या भूमि में दफनाया जाता है। स्पष्ट हुआ कि शरीर आत्मा का मंदिर होता है, जब मनुष्य को आत्म ज्ञान हो जाता है तब ही वह यह समझ पाता है कि मैं स्थूल का सूक्ष्म नहीं हूं। इस सूक्ष्म को जानने वाला आत्मज्ञानी कहा जाता है। उसके अंतरचक्षु खुल जाते हैं। तब वह इस महत्वपूर्ण सत्य को समझ कर दिव्य शाश्वत के सत्य को समझ पाता है। उपासना साधना में इसी सत्य को सहलाया जाता

है। इसी सत्य के सहारे भौतिक शरीर की मुक्ति या सद्गति की कामना की जाती है। मन और बुद्धि का स्वरूप अलग-अलग भले समझ लिया जाय, लेकिन वास्तविकता में एक ही है। उनका काम एक ही है। एक दूसरे के बिना उनका कार्य निवर्तन नहीं होता है। प्रवृत्तमान से ऊपर दूसरा मन होता है, जिसका काम सोचना, कल्पना करना, तर्क करना, अनुभव करना आदि होता है। दुख सुख का आभास होता है। आत्मा परमात्मा का स्वरूप होता है तब ही तो परमात्मा और आत्मा की एकता का अनुभव होता है। तब यह कहा जाता है। मैं वही हूँ जो मैं में व्याप्त आत्मा है। जिसका संबंध परमात्मा से है। शरीर आवरण मात्र है। मैं आवरण नहीं आवरण के अंदर का वास करने वाला हूँ। वही मैं हूँ, यही कारण है कि मैं जन्मता नहीं। ना ही मरता हूँ। अजर-अमर परमात्मा शक्ति स्वरूप मैं शरीर आवरण में रह कर आत्माबोध कराता हूँ। मेरा ही सूक्ष्म कारण महाकारण चिंतन किया जाता है। वैज्ञानिक शोध में मैं पकड़ में नहीं आ पाता हूँ। मन मस्तिष्क, सोच-समझ, चिंतन, मनन का अद्भुत संयोग अनुभूति के रूप में मेरा ही आभास होता है।

अब यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि सृष्टि के प्रारंभ जब कुछ नहीं था तब एक से बहुत उसी ब्रह्म की माया रही है। ब्रह्माण्ड उसके (सूर्य, चंद्र, गृह, नक्षत्र के रूप में वह ईश्वर परमात्म) अपार हुआ। मैं आत्मा स्वरूप शरीर आवरण में प्रकट होकर मन से संचालित हुआ उससत्यस्वरूप आत्मा का ही कारण होता है। इस मन का कमाल ही हौ कि शरीर रूप में धरा पर जन्म लेकर कतिपय समय साध्य कार्य का निर्वाह किया जाता है। एक समय ऐसा आता है कि शरीर का आत्मा साथ छोड़ देती है तो मन का कमाल भी उसी के साथ विराम में चला जाता है।

जब तक शरीर में आत्मा रहती है तब तक मन बुद्धि दोनों एक होकर अपना काम करते हैं। इंद्रियों पर नियंत्रण रखते हैं। इंन्द्रियाँ इनके बिना अर्थात बिना आज्ञा के केवल शरीर का अंग ही बनी रहती है। पर इस कथन कथानक

के आधार पर ही ईश्वर को अपार मन को कमाल कहते हैं। आधार भूत यह स्पष्ट है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की वस्तुयें उसी स्वरूप परमात्मा (ईश्वर) की हैं। सम्पूर्ण भौतिक वस्तुयें मेरे भौतिक तत्व की क्षणिक झलक झाँकी ही हैं। मेरी मानसिक वस्तुयें (शक्तियाँ) जैसे बुद्धि, मन, आत्मा खण्ड मानस तत्व ही है। भौतिक मानसिक तत्व अबाध गति से बह रहे हैं, अतः मेरा स्वरूप ब्रह्माण्ड के रूप में अपार (विस्तार परे) का समझा जाता है। अविनाशी आत्मा परमात्मा का स्वरूप होने से मैं विशुद्ध हो गया हूं, जिससे आत्मा और परमात्मा एकता का अनुभूत करता रहा हूँ।

उपरोक्त विवेचना को हम आध्यात्मवाद और बुद्धि संगत मन के वैज्ञानिक स्वरूप पर भी थोड़ा विचार कर लें। ज्ञातव्य यह कि भौतिकवाद के स्वरूप अनेकों तनाव, उद्वेग, दुष्प्रवृत्तियों की भी वृद्धि होती चली जा रही है। यह सत्य है कि आध्यात्मवाद ने आत्मा के उत्कृष्ट कर्मफल को प्राप्त होने का मार्ग अवश्य बताया है, लेकिन वह मानव के व्यक्तित्व शरीर, मन, आत्मा के व्यावहारिक विकास में आध्यात्म का मूल लक्ष्य ही छू पाया। प्रत्यक्ष आध्यात्मसे तो आध्यात्म गुणों का ही विकास होता है। मानसिक शक्ति की वृद्धि में सहायक होता है। संयम अर्थात शरीर की इंद्रियों का संयत उपयोग आध्यात्म शक्ति वृद्धि मन को बल देता है। साहस, सेवा, मृदुलता, ईमानदारी, ध्यान, तन्मयता, भावातीत, अवस्था विचार शक्ति, संकल्पबद्धता, आत्मा और परमात्मा स्वरूप में अनुभूति, स्वप्न दर्शन आदि के रूप में आध्यात्म शक्ति की मूल परिस्थिति का प्रकटीकरण होता है। यह प्रकटीकरण उस ईश्वर (आत्मा) का मन बुद्धि के रूप में आभास है।

आध्यात्म की दाद देने वाले धर्म, सम्प्रदाय सभी आसक्ति से संघर्ष करते हैं। जिसकी राग-द्वेश दोनों ही प्रवृत्तमान प्रवृत्तियाँ होती है। जो एक सीमा पर मोह का रूप ले लेती है। राग व्यक्ति के मन को बाँधने का प्रयास करता है। तो द्वेष को बुद्धि बढ़ाती है। ज्ञान के सहारे मन को प्रेम से जोड़ा जाता है

चेतना को जगाया जाता है। मन तक पहुँचाया जाता है। आध्यात्म की उपलब्धि होती है। आत्मा से जोड़- जुड़ाव होकर परमात्म शक्ति का आभास किया जाता है। ईश्वरीय सत्ता को इस प्रकार समझने समझाने में मन का योगदान बड़ा विलक्षण होता है। मन का कमाल आध्यात्म के इस प्रकार ईश्वरीय स्वरूप आभास में व्यक्त होता है।

इस प्रकार सृष्टि का आधार प्रकृति पुरुष जो मूल में ब्रह्म और माया स्वरूप है। मन इसकी ओर अग्रसर होकर आनंद और ज्ञान विज्ञान का आभास कराता है। अतः ईश्वरीय अपारता के साथसाथ मन का कमाल सदा जुड़ा रहा है, रहता है। यह मन की बात का रहस्यपूर्ण एक स्पष्ट तथ्य है। जो आध्यात्म के माध्यम से मानव के पल्ले पड़ता है। यदि आध्यात्म नहीं होता तो यह पक्ष ओझल ही बना रहता है। ईश्वर अपार मन कमाल स्वतः स्पष्ट हो जाता है।

३- अतीन्द्रिय मन क्षमता

मानव जीवन रहस्यपूर्ण है। यात्रा है। प्रतिज्ञा है। कला है, जिसे तन से स्वस्थ्य, शरीर बुद्धि से तीव्र विचार मस्तिष्क, मन से स्वच्छ तेज के साथ आत्मा, शरीर, बुद्धि, मन और आत्मा चार स्तर में बिताया जाता है। मेडिकल साईंस के अनुसार हड्डी, दाँत, माँस, मसल्स, बसा, रक्त, त्वचा, नाखून, रोम जैसे शरीर में प्रत्यक्षदर्शी होते हैं। बुद्धि मन और आत्मा शरीर में अप्रत्यक्ष होते हैं। शरीर में शारीरिक बल की विशेषता होती है। ज्ञान, सोच, समझ, सूझबूझ जैसा बौद्धिक क्षमता मस्तिष्क में होती है। प्राणशक्ति, ईश्वरानुभूति में मेरा अस्तित्व अप्रत्यक्ष अदृश्य आत्मा होती है। कर्म क्रिया इच्छा, जिज्ञासा जैसा मन होता है। मन में प्रेम भाव होता है हास भाव, हर्ष, चपलता, आलस्य होता है। शोकभाव, मोह, अदब, विषाद, उन्माद, व्याधि, चिन्ता, ग्लानि होता है। उत्साह भाव, गर्व, उग्रता, धृत्ति होता है। क्रोधभाव, उग्रता, अमर्ष चपलता होता है। भय भाव, शंका, चिंता, आवेग, भास, दैन्य होता है जुगुत्सा भाव, मोह, व्याधि, आवेग होता है। विस्मय भाव मोह, हर्ष, चिन्ता, घृतिमति होता है। स्नेह भाव हर्ष आदि होता है। इस प्रकार से मन के भाव सेवा, अतिशोध, अधिकार, प्रगति ओर स्वार्थ से संबंधित होते हैं। समय-समय और स्थिति की परिस्थिति अनुसार मन के भाव प्रत्येक व्यक्ति में होते हैं। प्रत्येक भाव भावना चाहे वह लौकिक हो या आलोकिक लेकिन न्यूनाधिक में मन और शरीर पर अवश्य प्रभाव डालते हैं।

शरीर पंच महाभूत पंच तत्व पृथ्वी (मिट्टी) जल अग्नि, वायु और आकाश से बना है। जिसमें आत्मा निवास करती है। बाहर से शरीर दिखाई देता है किंतु समृद्धि और प्रगति के तत्व तो इसकेभीतर होते हैं। वे ही सुख शांति के केंद्र होते हैं। तृप्ति इन्हीं के भीतरी तत्वों में खोजी जा सकती है। जिन्हें

शरीर के कोष कोषों - के केंद्र षट चक्र के रूप में जाना जाता है। केंद्र नाभि चक्र होता है।

अन्नमय कोष - इसे सूक्ष्म शरीर भी कहा जाता है। अन्न का सात्विक अर्थ पृथ्वी का रस जो जल, अनाज, फल, सब्जी, मात्र कहे जा सकते हैं। इन्हीं से दूध, घी, मांस, आदि बनते हैं। अन्न के भीतर सूक्ष्म जीवन तत्व होता है। अन्नकोष स्थूल में स्वाद और भार सूक्ष्म में प्रभाव और गुण कारण में अन्न का संस्कार होता है। अन्नयम कोष में शारीरिक विकार उत्पन्न होते हैं, अत: परिमार्जन, उपवास, तपस्या, योग, आसन, तत्वशुद्धि आदि से किया जाता है। ऋतु मौसम के अनुसार क्रियाशील गुण होते हैं। जिनके अनुसार फसल बोई काटी जाती है। नवरात्रा विधान में नौ दुर्गा शक्ति उपासना की जाती है, जिससे अनेक अनिष्ठ टलते हैं। नवरात्र में नौ दुर्गा अधिष्ठात्री शक्ति नवदुर्गा, सत्ताईस नक्षत्र और उनके योग पर नियंत्रण रखती है। ऐसे में अन्नमय कोष प्रबल रहता है। नेत्र, कान, नाक, त्वचा और जिव्हा पाँचों ज्ञानेंद्रियाँ अन्नमय कोष से संचालित हैं।

प्राणमय कोष - प्राण शक्ति सामर्थ्य का प्रतीक होता है, जो आंतरिक होती है। विद्या, चतुराई, अनुभव, शौर्य, लगन, साहस, महानता, जीवनशक्ति, ओज पराक्रम, पुरुषार्थ ये प्राणामय कोष की प्राण शक्ति है। मानव शरीर में प्राण, अपान, समान, उदान, व्याप्त महाप्राण और नाम, कर्म, कृफल, देवदत्त, धनञ्जय लघु प्राण होते हैं। कोष की प्राण शक्ति को प्राणायाम, बंधन, मुद्राओं से पुष्ट किया। जाता है। प्राणमय कोष, कोष का केंद्र मूलाधार चक्र होता है। प्राणमय कोष शरीर चलाने और मन जोड़ने का काम करता है। मन का पोषण करता है। ऋषि पितृदेव भावों के ऋण से उऋण इसीकोष साधना से होते हैं। इसी कोष के माध्यम से सर्वत्र ईश्वर होने की धारणा की पुष्टि की जाती है। सोऽम साधना से अहं ब्रह्मास्मी का आभास किया जाता है। मूलाधार चक्र में प्राणग्नि कुण्डलिनी शक्ति का जागरण किया जाता है।

मनोमय कोष - मनोमय कोष प्राणमय कोष के भीतर ही रहता है। जिसका केंद्र आज्ञा चक्र होता है। मन चंचल है। वासनामय है। सुख सुविधाओं की सदा इसका लक्ष्य रहता है। मन प्रेरक होता है। जिज्ञासा, इच्छा, आकाँक्षा, तृष्णा, कल्पनायें उत्पन्न होती है। ध्यान त्राटक, तन्मयता साधना, मेसमेरिजम, हिप्नोटेरिज्म, तंत्र-मंत्र की ओगड़ विद्या की साधनायें इसी कोष में विभिन्न पूजा, होम-पाठ से सिद्ध की जाती है। शब्द साधना, रूप साधना, रस साधना, गंध साधना, स्पर्श साधना के द्वारा वश वशीभूत क्रिया में सफल बनाई जाती है।

विज्ञानमय कोष- केंद्र हृदय चक्र होता है। सारा का सारा प्रत्यक्ष, परोक्ष सृजन इसी कोष से प्रभावित होता है। यह कोष केवल साधन है। विज्ञान मय कोष का अर्थ ही है कि विशेष ज्ञान से ज्ञानी अनुभवी पारंगत और सफल होना होता है खोज - खबर, चिंतन, मनन, प्रयोग परीक्षणों के द्वारा हृदयचक्र के अनुकूल बनाकर लाभ लिया जाता है।

आनंदमय कोष- केंद्र सहस्त्रार चक्र होता है। बाहरी आवरण और केंद्र में आनंदमय कोष होता है। इन दोनों के बीच में प्राणरूप मनोमय और विज्ञानमय कोष जागरण से लाभ लिया जाता है। आनंदानुभूति की जाती है। इसी आनंदमय कोष में शान्ति, संतोष स्थिरता, अनुकूलता का आभास किया जाता है। नाद, बिन्दु, कला, साधना के द्वारा आनंदनुभूति की जाती है।

इन पाँचों कोषों की साधनाओं के द्वारा विरोधी स्थिति परिस्थितिके अनुकूल बनाकर शान्ति संतोष प्राप्त किया जाता है। अन्नमय शरीर अभ्यास प्राणमय-गुण, मनोमय- विचार, विज्ञानमय - अनुभव और आनंदमय-सत - चेतनाओं को जागृत किया जाता है।

मानवीय स्थूल शरीर का कर्मयोग सूक्ष्म का ज्ञान योग और कारण का परमेश्वर की प्रतिष्ठापना उपरोक्त कोषचक्र के विवेचन से ज्ञात हो जाता है। जिसकी सफल सफलता में शरीर की पाँचों ज्ञानेंद्रियाँ नेत्र से देखकर, कान से

सुनकर, नाक से सूंघ कर, त्वचा से स्पर्श कर और जिव्हा से चखकर आभास किया जाता है। इसीप्रकार पाँचों कर्मेंद्रियों मुँह से बोलकर हाथ से वंदना या सहला कर, पैर से चलकर, पहुँचकर, मृदा से मल फेंककर और लिंग से जीव जन्म (सन्तानोपत्ति) का आभास होता है। इन ज्ञानेंद्रियों और कर्मद्रियों के अलावा ग्यारहवीं इंद्री मन है जो सबका संचालन, संतुलन, नियोजन, व्यवस्था का काम कर शरीर को सहायता, मदद, सहयोग प्रदान करता है। बिना मन की आज्ञा, अनुमति, सहमति, आदेश के कोई भी इंद्रि अपनी मर्जी से कुछ भी नहीं कर सकती है। इस प्रकार इन दस पर एक मन भारी पड़ता है।

उपरोक्त विवेचना से हमने यह निष्कर्ष निकाला कि मनुष्य अपनी मनमर्जी से जीना चाहता है, जैसा वह चाहता है वैसा करना चाहता है। मानव अपने ज्ञान से विद्यावान, धर्म-ज्ञान- ऐश्वर्यवान बन कर रहना चाहता है। धन ऐश्वर्य चाहना उसकी बनी रहती है। मन बहुत चंचल है। इसी मन का अनुकरण प्राण करते हैं। मन में जिज्ञासा इच्छायें उठा करती हैं। इन्द्रियाँ उन्हें लेकर उस प्राण के पास पहुँचती हैं जहाँ प्राण का पोषण होता है। अतीन्द्रिय क्षमता कुण्डलिनी जागरण होता है। प्राण शरीर चलाने और मन जोड़ने का काम करता है। मनोमय से सिद्ध या अनुकूल बनाकर उसमें सफलता की खोज कर शक्ति, संतोष प्राप्त किया जाता है। इससेयह स्पष्ट है कि इस यात्रा में मन की भूमिका ही तो कारगर सिद्ध होती है, अर्थात मन की चंचलता ने उसे सफलता के सोपान तक पहुँचा दिया।

पंच तत्वों की पाँच तन्मात्रायें और उनसे पंचभूत निर्मित होकर कार्य करते हैं जो इंद्रियों को सहायता सिद्ध होती है।

१. शब्दतन्त्रमात्र से आकाश निकला जो गुण ध्वनि, कर्ण द्वारा ज्ञात हुआ
२. स्पर्श तन्मात्र संयोग से वायु उत्पन्न, जो गुण ध्वनि तथा स्पर्श द्वारा ज्ञात हुआ।

३. रूप तन्मात्र शब्द और स्पर्श के संयोग से अग्नितेज का जन्म जिसका गुण स्पर्श और रूप निखार हुआ।
४. रस तन्मात्र शब्द रूप के संयोग से जल मिला। जिसके गुण, शब्द, स्पर्श, रूप और स्वाद का ज्ञात हुआ।
५. गंध तन्मात्र से शेष चार के संयोग से क्षिति या पृथ्वी उत्पन्न हुई, गुण, शब्द, स्पर्श, रूप, स्वाद और गंध विद्यमान हुए।

इस प्रकार अब यह देखने में आया कि द्रव्य इस प्रकार हो गए - १.पृथ्वी, २.जल, ३.तेज, ४.वायु, ५.आकाश, ६. काल (Time), ७. दिक (Space), ८.आत्मा और ९. मन हुए।

आध्यात्म के विषय विश्लेषण में हमने यह पाया कि मन में जो अतीन्द्रिय क्षमता विद्यमान है उसी का परिणाम है कि शरीर, बुद्धि, मन, आत्माका स्थूल, सूक्ष्म, कारण, शरीर से होकर, पाँचों कोष, छ: चक्रों से संबंध विस्तार हुआ। दसों, इन्द्रियों जिनके अनावरण में सहयोगी बनी चक्र जागरण हुए। यह मनोविश्लेषण की स्थिति ही परिलक्षित होती है। कारण कि मन ग्यारहवीं इंद्रि है। जिसका प्रभाव दसों इंद्रियों पर पड़ता है। बिना मन की आज्ञा और सहमति के वे अपना काम प्रभाव नहीं दिखा करती थी। आज्ञा और सहमतिसे प्रभाव संभव हो गया। यह सब मन की अतीन्द्रिय क्षमता का ही प्रभाव है। जिसे नकारा नहीं जा सकता है। इससे मन मनके भाव और मनोभाव का स्पष्ट चित्रण विचार का कैसा भी कभी भी किया जा सकता है।

ये अतीन्द्रिय क्षमतायें ही मानव को श्रेष्ठता प्रदान करने में अग्रगण्य सिद्ध होती है। यही कारण है भी कि मानव सर्वश्रेष्ठ प्राणी कहलाने का हकदार सिद्ध हुआ है जो तत्व तात्विकी दृष्टि से मानव की अपनी अतिविशेष विशेषता ही कहा जा सकता है।

४- मन माने! मनाया जाय

दैनिक जीवन निर्वाह में प्राय: यह शिकायत होती है कि हम कोशिश तो बहुत करते हैं, किंतु मन ही नहीं होता है कि जिसकी करनी उसके साथ अपन क्यों बुराई लें। अपन तो सबसे मेल जोल रखो। बोलो-चालो। सबके यहाँ आवो जाओ। क्यों अपन बुरा बने। इसी प्रकार यह भी कहते हैं कि क्या करें ! हम चाहते तो बहुत है कि भगवान के दो नाम तो रोज लें, किंतु इच्छा ही नहीं होती है। मन ही नहीं लगता है। यह भी हमने देखा है और बात भी होती है कि टी.वी. सीरियल के एडवरटाईजों मेंजो खुला अंग प्रदर्शन होता है उसे नहीं देखें, लेकिन मन देखे बिना मानता ही नहीं है। आदि। इस सबसे यह स्पष्ट है कि मनही सब कुछ है, उसकी ही चलती है। तो सबसे अच्छा है कि हम मन से समझौता कर लें। तब वह मानेगा। ठीक भी है। अच्छा करने के लिए बुरा छोड़ने के लिए मन को मनवा लिया जाय और यदि नहीं माना तो, नहीं ! नहीं !! ऐसा कभी नहीं हो सकता कि हम कोशिश करें और मन नहीं माने! हमने तो यह भी पढ़ा है, सुना है, और कहते हुए देखा भी है कि मन तो मानने को तैयार है हम उसे मनायें तो सही। वह मान जाएगा। जो इच्छा होगी, उसे वह करने को कभी मना नहीं करेगा। तब तो ठीक है न ! चलो हम अपनी रुचि तो बनाए कि क्या करें जो करने की सोचते हैं उसमें अच्छा ढूंढें। बुरा क्या है, उसे छोड़ने का भी सोचे, फिर देखते हैं कि मन मानता है कि नहीं मानता है। चलो यह भी करके देख लिया जाय।

यह बात सही है। इसने देखा भी है कि हम अच्छे काम की रुचि बनाए। क्रिया कर्म में बुराई से दूर रहें। अच्छा करने की सोचें। अच्छे की सोबत करें तो निश्चित हमारा मन भी मान जाएगा। क्योंकि अच्छा करने का सोच अर्थात रुचि बनाना ही तो मन से समझौता करना लगता है। जब समझौता हो जाता है तो मन मानने भी लग ही जाएगा। यह बात सही है कि जिन विषयों में रुचि नहीं

होती है, उन्हें हम भी पसंद नहीं करते हैं। ठीक मन भी ऐसे में हमारा साथ कहाँ से देगा! वह भी भागने लगेगा। जब रुचि के काम होंगे सोच समझ विचार बनेंगे तो मन भी हमारा साथ देगा। ठीक है, अब हमारे समझ में आ गया कि रुचि सोच समझ बना लेना ही मन से समझौता करना है। ऐसे में मन मना करेगा ही नहीं। आखिरकार उसे भी ज्ञानेंद्रि और कर्मेन्द्रियाँ दसों इंद्रियों से करवाने का उत्तरदायित्व निभाना है। कर्मेंद्रियां तो वही करेंगी जो उनका बॉस मन आदेश देगा, चाहेगा। यही हम सब चाहते हैं कि हमारा मन सदा ऐसा रहे कि हम अच्छा सोचें, करें और करवाये। जिससे हमारा जीवन अच्छा बीते। अच्छा तो यही है कि ---

१. हम आशा भरा अपना दृष्टिकोण बनायें। निराशा कहीं नहीं दिखे, ऐसा सोचें, विचार बनायें। अपने वालों को इस आशा भरे विचार बतायें। अच्छे सुझाव को मानें।

२. अपनी गलतियों से नफरत करें, उन्हें दूर करने की कोशिश भी करें।

३. लोभ, लालच, स्वार्थ, झूठ दिखावा जैसों के स्थान पर शान्ति, संतोष के साथ अपनी आदतों में सुधार करें। अस्वास्थ्यवर्धक खान-पान, झूठ बोलना, बेईमानी कर लाभ उठाना, व्यवहार में धोखाधड़ी करना आदि जैसी बातें छोड़ें और वैसा व्यवार भी नहीं करें। तो सब ठीक होता चला जाएगा। मन पूरी तरह से आपका साथ देगा। होगा तो यह भी कि जब आप अच्छाई को अपनायेंगे तो मन आपको प्रोत्साहित भी अच्छे से अच्छा करने को करेगा। हीन हीनता कभी वह आने भी नहीं देगा। मन की ऐसी अच्छाई है जोबाद मे समझ में आती है।

४. प्राय: ऐसा अवसर भी होता है। स्थिति परिस्थिति भी बनती है कि हमको दूसरों का सहयोग भी लेना पड़ता है। ऐसे में यह देखें कि जिनका

सहयोग लेने वाले हैं के किस रुचि, स्वभाव, व्यवहार के हैं। कहीं वे आपको अच्छे रास्ते से भटका कर गलत रास्ता तो नहीं पकड़ा देंगे। यह सावधानी तो रखना पड़ेगी। दैनिक जीवन के व्यवहार में यह तो सभी को अनुमान होता ही है कि कौन कैसा व्यक्ति अपने लायक हो सकता है। पहले उसकी तलाश निकालें। आपके अनुकूल व्यक्ति को तलाश कर तुरंत अपनी आवश्यकता की सभी मत बताइये। उसका आपके प्रति क्या रुख रहता है देखें। अच्छा लगे तो ठीक नहीं तो उससे सम्पर्क छोड़ दीजिए। ऐसा भी नहीं हो कि आप जो सम्पर्क छोड़ रहे हो, वह उसमें कमी गलती को उजागर कर साथ छोड़ रहे हैं। ध्यान रखें।

५. हमारा यहाँ यह सुझाव है कि अपने बलबूते पर ही जो कुछ करें वह करें। लम्बे ख्वाब लेकर कुछ भी करने नहीं जुटे। स्थिति - परिस्थिति को देखकर अनुभव प्राप्त करें। अनुकूल स्तर पर व्यवस्था बनायें। काम प्रारंभ करें, धीरे-धीरे उन्नति होती है। काफी कसरत के बाद पहलवान कुस्ती में विजयी होता है। सहयोग सहायता ली जाय। वह अपने मन मिले से ही लें। सहयोग सहायता लेना करना बुरा नहीं है। लेकिन मन का मिला रहना यह सबसे ज्यादा जरूरी है।

चलो हमने यह देखा लिया कि मन हमारी बात मानता है। हमारे साथ चलता है तो अब हमें भी चाहिए कि

१. संतुलन बनाये रखने के विचार को छोड़कर मनमानी भी नहीं हो, इस पर भी पूरा ध्यान रहे। यह इसलिए करना जरूरी है कि जो परिवार में कर्ताधर्ता है वह ही मनमानी करने लग गया तोपरिवार का संतुलन तो बिगड़ना ही है। इसलिए कर्ताधर्ता को सैकड़ों की बजाय हजार बार साध कर अपने मन का काम करना चाहिए। संतुलन नहीं बिगड़े। परिवार में सबका सबसे आपसी सहयोग सहकार विश्वास बना रहे। अन्यथा परिवार में आपसी विश्वास में कमी

आने लगेगी। परिवार छिन्न-भिन्नता के मार्ग पर चल पड़ेगा। एकता में कमी आने पर और समाप्त होने पर फिर कायम करना संभव नहीं हो पाता है। अच्छा तो यही है कि एकता समाप्त ही नहीं हो। कर्ताधर्ता के साथ ही साथ सभी को अपने मन से संतुलन की स्थिति परिस्थिति को बनाये ही रखना चाहिए।

२. मन को मनवाये रखने का सबसे अच्छा मार्ग यही है कि अपने प्रति कठोरता दूसरों के प्रतिसरलता सदा अपनाई जाय। यहाँ सामान्य इच्छा सिद्धांत काम करता है। सबके भला में अपना भला। क्योंकि सबसे अलग तो रहा भी नहीं जा सकता है। जब सबका भला होता है तो अपना भी भला ही होगा। क्योंकि सबसे अलग तो हम हैं नहीं। क्योंकि सबका भला नकारकर अपना भला सबका भला नहीं कर सकता है।

उपरोक्त विवेचना से यह अच्छी तरह समझ में आ ही जाना चाहिए कि मन इतना कठोर, बेरुखा भी नहीं है जो कभी मानने को तैयार ही नहीं होगा, हाँ, यह तो सही है कि मन को मनवाना तो पड़ेगा। मनवाने के लिए यह मत समझिये कि बुरे कामों के लिए मनवाने से मना करता हो। लेकिन समझने का हमारा यह माद्दा अवश्य चाहिए कि मन बुरे कामों के लिए एक दम तैयार भी नहीं होता है। यह समझे बिना तथा नकार कर ही बुरे कामों के लिए मनवाया जाता है। यह प्रकृति प्राकृतिक एक स्वभाविक अटल नियम है। इसलिए मन की इस बारीकी को समझा जाय। बुरे कामों में लिप्त होने के पहिले मन की इस विषय में पूर्ण स्वीकृति कोसमझना बहुत जरूरी है। जब मन की मन्शा लिप्त होने से नकारती है तो उन बुरे कामों में मन को नहीं मनवाया जाय। इस मन के मनवाने का नेगेटिव पक्ष को भी समझा जाय तो हमें विश्वास है कि मन को बुरे कामों में मनवाना कतई संभव नहीं होगा। ऐसे में मन हम हमारे अच्छे कामों में सदा सहयोगी साथी बना रहेगा।

मन मान जाता है कि होना मनाने वाला। मन होता ही इसलिए कि वह सदा अपना बना रहे, इसीलिए उस परमात्मा ने दसों इंद्रियों को उसके हवाले कर नियन्त्रक, व्यवस्थापक, संचालक बनाया है। मन को इतनी योग्यता होती है कि वह भला भलाई से मुँह नहीं मोड़ता है। हाँ, उसे अपनी भावना, इच्छा, आशय भरी जिज्ञासा तो प्रकट करना पड़ती है। अथवा मन की ओर से अनुभूति सोचविचार सुझाव, संकेत के रूप में जब कभी कोई प्रस्ताव आता भी है तो हमें उस पर अवश्य ध्यान देना होगा कि हमारा मन चाहता है कि यह हम अच्छा करें। इस संभावना भरा संकेत को समझ लेना सबसे ही उत्तम है। फिर तो मन को मनवाने की भी जरूरत नहीं पड़ेगी।

ठीक है, मन मना रहे। यह सबसे उत्तम है। मनवाये की आवश्यकता पड़ती है तो वह मानने से मना भी नहीं करेगा। हम मन के अनुकूल मन हमारे अनुकूल बना रहे यह भी मनमाने तो क्या मनाया जाने की स्थिति स्वतः ही पक्ष में बनी रहेगी, हाँ मन मनवाये रखने के विपक्ष में कतिपय मतभेद अवश्य हो सकते हैं, ऐसा कभी कोई परिस्थिति दृढ़ नहीं होती है कि मन मनवाया ही नहीं जा सकता है। वाजिब मतभेद तो मानना भी पड़ेंगे। मन माने या नहीं माने इस सोच के पहिले यह अवश्य देखना होगा कि जिस पक्ष के लिए उसे मनवाया जा रहा है उसमें कितनी सचाई है। मन तो भले और बुरे दोनों पक्षों में उनके अनुकूल मान लेता है,लेकिन आशय अनुकूल ही हो तो जनसामान्य के वह योग्य होता है, अतः प्रयत्न यही होना चाहिए कि अनुकूलता के पक्ष को समर्थना देना चाहिए मन माने मनाया जाय इतना आशय प्राय: अनुकूलता का ही पक्ष समझना चाहिए। अपवाद को अधिक प्रश्रय नहीं देना चाहिए। मन की अनुकूलता से जीवन को स्वस्थ मार्गदर्शन ही मिलेगा। बहुत कुछ आशय इसी भाव में छिपा भी रहता है। मन माने, सदा मनाया ही जाना बहुत कुछ अच्छा है।

--- * ---* ---* ---

५- मानव मन मनस्वी है

मानव मन अद्भुत, अनोखा, विलक्षण और असाधारण है। वह अपने आप में ऐसा और जैसा है कि किसी भी प्राणी में नहीं है। वह मन चाहा मनमानी, मनभावन तो है ही स्वेच्छाचारी भी है। मानव मन के भाव ओर भावनायें अपने आपमें उस आत्मसत्ता का परिचय देते हैं जो संसार को चलाता है। यहाँ यह भी माना जाता है कि ईश्वर संसार को चलाता है तो मन प्राणी के शरीर को चलाता है। मानव का मन तो सभी प्राणियों से अधिक अग्रसर और उत्कृष्ठ है। जिसका मुकाबला किसी का मन नहीं कर सकता है, यही तो मानव मन की अद्भुत विशेषता है। तब ही तो वह सभी प्राणियों को अपने वश में लेकर अपनी सेवा करवाता है। खेल खिलाता है। वह भावनाओं में वृद्धि करता है। भावों को सहलाता है विचार उत्पन्न करता है। विचारों को नए-नए शब्द देता है। हाव-भावों को शरीर के अंग-प्रत्यंगों से व्यक्त करता है और तो और मन अपने आपको ऐसा केंद्रित भी कर लेता है कि अपने द्वारा वह विभिन्न अनुभूतियों को उकसाता रहता है, जिससे मानव अपनी शक्ति क्षमता में वृद्धि करता रहता है।

मानव को ऐसा मनस्वीमस्तिष्क मिला हुआ है कि जिसे प्रत्यक्ष कम्प्यूटर कहा जाय तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। इस मस्तिष्क में सेरेब्रम भाग अकूत बौद्धिक क्षमता रखता है। मस्तिष्क मन के सहारे ज्ञान और कला ऐसे चमत्कारिक प्रभाव दिखाया करता है कि विज्ञान ज्ञान उभरता ही चला जाता है। समष्टि श्रृंगार इसी विज्ञानज्ञान की झाँकी है। ग्रंथियाँ जो ज्ञानकला की परिचालक हैं अपना काम मन के नियंत्रण में रहकर इन्द्रियाँ अपना कार्य बड़ी सम्पन्नतापूर्वक करती है।

ज्ञानपक्ष में मन का चिंतन मनन कला पक्ष में मन की सूझबूझ प्रकृति प्राकृतिक की कल्पना जिससे आकार प्रकार की स्थूलता का प्रदर्शन होता है।

विज्ञान पक्ष में तत्व तात्विकों का अनुपातानुसार मिश्रण जिनसे उभरे परिणाम बुद्धि का ज्ञान मन का चिंतन परिणाम का प्रदर्शन करता है। ज्ञान कला के इसी आधार पर सूक्ष्म चिंतन, मनन का विस्तार अध्ययन के विषयों का विस्तार हुआ है, होता जा रहा है। ज्ञान, कला, विज्ञान, आध्यात्म, ज्योतिष, दर्शन आदि क्षेत्र में अध्ययन अध्यापन, शिक्षण, प्रशिक्षण, मनस्वी मन मानव के सोपान के शिखर मस्तिष्क की बौद्धिक क्षमता को उभार पाया है जिसका मनोविश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है –-

मन प्राणियों के लिए जिसमें इच्छा, विचार, संकल्प, विकल्प और अनुभव होता है, जहाँ मन की दशा मन में आना, प्रेम होना, मन का कच्चा करना, मन की मन रहना, मन टटोलना, मन डोलना, मन देना, मन बढ़ना, मन फेरना, मन बूझना, मन भर आना, मन भारी होना, मन मार बैठ जाना, मन सोचना, मन में रुचना, मन मोहना, मन मोड़ना, मन लेना, मन से उतरना, मन में चढ़ना, मन जीतना, मन हारना, मन हरना, मन में उतरना, मन हरा होना आदि मन की दशायें होती हैं। जिनसे मन के भाव, विचार, इरादे जैसों का पता लगता है। इन दशाओं के अधार पर मन रुढ़ना, अर्थात मन सामर्थ्य शक्ति का पता चलता है। ज्ञान, अज्ञात, ज्ञात के परे, व्यक्तिगत, सामूहिक मन की दशा स्पष्ट होती है। लक्षणात्मक दृष्टि से भी देखा जाय तो चेतनात्मक, बोधात्मक, संवेगात्मक जैसी मन की ये वे क्रियायें हैं जिनसे मन में हुई हलचल अर्थात संचालन दशा का अनुभव होता है। जो अन्तर्मुखी, बर्हिमुखी, प्रतिवर्तन, प्रत्यावर्तन, दिशान्तरणा, शक्ति का काम करना जैसा अनुभव करते हैं। अन्त:करण में संघर्षण, आकांक्षा करना, प्रभुत्व पैदा होना,इच्छापूर्ति प्रकट होना आदि प्रकार मन मानसिक ऐसी क्रियायें होती हैं जिनसे मन स्वभाव में आर्ददशा का पता लगता है। भय, चिंता, उन्माद, उल्लास, हट हर्षात्मक, पीड़ात्मक मनोपीड़ा अर्थात रोग ग्रस्तता का पता लगता है। सम्मोहन, निर्देशन, आघात पहुँचाना, विश्रान्ति अर्थात राहत देना, आदि प्रकार से मन द्वारा उपचार

क्रिया प्रक्रियाओं को किया जाता है जो आत्मरक्षा, सामाजिक जीवन संबंधी जैसी प्रवृत्ति की रक्षा होती है। स्वप्न द्वारा मन की दशा, हलचल, भविष्य संकेत, भी मिलते हैं। दैनिक जीवन का संचालन इसी प्रकार मन की वृत्ति प्रवृत्ति से ज्ञात होता है।

उपरोक्त सेयह स्पष्ट हो जाता है कि ज्ञान, विज्ञान, कला, धर्म, दर्शन कैसे भी हम समझें मन कर्म क्रिया का दबाव और प्रभाव सदा जीवन संचालन में देखने को मिलता है। जो मन की मनस्वीता अर्थात विलक्षणता कहा जाना कोई गलत नहीं है। यह विलक्षणता बुद्धि, अनुभव, स्थिति परिस्थिति में जाँच अर्थात प्रयोग परीक्षण अर्थात जाँचा भी जा सकता है। जो इंद्रियों की हलचल, बुद्धिबौद्धिक, ज्ञान, नीति, मूल्य (अनुकूल प्रतिकूल) आदि प्रकार से स्पष्ट होता है। इससे यह देखने समझने में आता है कि योग्यता, होशियारी, चतुराई का विकास होता है। इसी विकास की दशा उत्पन्न होने पर ही तो मानव में मानवीय जीवन की स्थिति परिस्थिति को समझने, विकसाने के लिए ज्ञान, कला, विज्ञान, दर्शन, धर्म आदि आधार पर विषय (Subject) का विश्लेषण किया है। जिसे हम संकाय (Faculty) रूप में समझ सकते हैं। यह मानव मन की सामर्थ्य ही तो है जैसे- कला, वाणिज्य, विज्ञान, न्याय, चिकित्सा, संगठन, कृषि, ज्योतिष, वनस्पति, आदि आदि जिनको विषयों के रूप में हम इस प्रकार नाम करण कर सकते हैं- भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, गणितशास्त्र, प्राणीशास्त्र, इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, राजनीति,समाजशास्त्र, दर्शनशास्त्र, मनोविज्ञान, ज्योतिषशास्त्र, खगोलशास्त्र, चिकित्सिाविज्ञान, खनिज विज्ञान, न्यायशास्त्र, अपराध शास्त्र, कृषि बागवानी, संगीत आदि-आदि रूप में विषय वार जान सकते हैं। यहाँ हमने केवल संकेत ही किया है

मानव मन को मानसिकता के सामान्य रूप से हमने कुछेक स्थिति-परिस्थिति को देखा। इससेयह तो स्पष्ट हो ही जाना चाहिए कि मानव मन में प्राणियों की तुलना में विशेषता तो है ही नहीं, बल्कि अपेक्षा से भी अधिक है।

जिसे हम समझ पाए हो या नहीं समझ पाए हों, लेकिन आवश्यकता के समय मन की वह अपेक्षात्मक विशेषता सामने आए बिना कभी नहीं रुकती है। इसे ईश्वर प्रदत्त ही तो कहा जाएगा। हाँ, क्रिया कलाप, सीख - सिखावन, सोचसमझ आदि प्रकार से इनमें सुधार, प्रतिस्थापना, परिवर्तन के विचार से बौद्धिक, चिंतन, मनन विचार जैसा अवश्य किया जाता है जो अस्तित्व काल से होता चला आया है। तथा आगे भी जिसका क्रम रुकने वाला नहीं है।

यहाँ हम इस परिस्थिति पर भी विचार कर देख सकते हैं कि मन की मनस्विता अर्थात उसकी विलक्षणता, सामर्थ्य की विशेषता क्या मानवीय जीवन की अवस्था काल से प्रभावित होती है। हाँ, होती है। वृत्ति प्रवृत्ति जन्मजात होती है। जिनमें विकास ह्रास आदि परिवर्तन वंशानुसंक्रण और पर्यावरण का प्रभाव पड़ता है। इसी मान से वंश, नस्ल, परिवार, व्यक्तिगत आदि देखा जाता है। रहनसहन, व्यवहार, बोलचाल, खान-पान, वास - निवास, संग सोबत, सीख - शिक्षा, शिक्षण प्रशिक्षण, अध्ययन, पढ़ाई, सत्संग, धर्मधार्मिक, व्यवहार तरीके आदि-आदि प्रकार की स्थिति- परिस्थिति बनाई जाती है। जीवन के संस्कार, परिवार मान्यताओं के रीति(रिवाज, जाति समाज के नियम, व्यवहार, शासन के नीति नियम,कानून आदि बनाये जाते हैं। पालन किए जाते हैं, जिसका प्रभाव शिशु अवस्था, बालक अवस्था, तरुण युवा अवस्था, प्रौढ़ अवस्था, वृद्धावस्था, जैसी सभी स्थिति में मन मनस्वीता का विकास, स्थिरता, ह्रास, परिवर्तन आदि जो होता है, वह वंशानुसंक्रमण से निर्मित होकर पर्यावरण और संयुक्त प्रभावी आंतरिक प्रभाव उत्पन्न होकर पीढ़ी दर पीढ़ी देखे जा सकते हैं। वर्तमान जीवन में जिनको बहुत ही कम समझा जाता है, या यूँ कहें कि बहुत ही कम समझ में आता है, वह भी जब समझने की कोशिश की जाय तब, लेकिन यह अवश्य होता है कि पीढ़ी दर पीढ़ी प्रभाव अवश्य देखा जाता है। इस विकास काही परिणाम है कि मानव जब प्रारंभिक अवस्था में था तब से वर्तमान तक उसमें कितना क्या परिवर्तन

आ चुका है। इसी प्रकार से आगे भी परिवर्तन में वृद्धि की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है।

मन की मनस्वीता मानव में सर्वोत्तम है। यह प्रकृति-प्राकृतिक विधान ही है। अर्थात उस परमात्म शक्ति की ही देन है। इसे झूठलाया नहीं जा सकता है। हर दशा में वंशानुसंक्रमण और पर्यावरणीय प्रभाव पड़ा है। पड़ेगा भी। हीन हरकत से रोक रुकावट बाधा भी आती है। इनका निवारण मानव, बुद्धि, चातुर्य, होशियारी से निबटा भी जाता है। अनुकूल परिस्थिति बनाई जाती है। मानव की सामाजिक वृत्ति प्रवृत्ति ही इसकी विशेषता है। सहयोग, सहकार, परिवार गठन, जिससे मानवीय मनस्वीता को स्थिर होकर विकास का अवसर मिलता है। इसी भाव भावना आशय से परिवार, कुटुम्ब, समूह, उपजाति, जाति, समाज उनके रीति-रिवाज पालन पूर्ति भी परिस्थिति बनाई जाती है। यह खुले रूप से समझ में आने वाली बात भले न हो किंतु आंतरिक रूप से प्रभावक आवश्य होती है। विद्या शिक्षा के शिक्षण, प्रशिक्षण, स्वाध्याय, साहित्य साधना,कर्म आध्यात्म, विज्ञान वैज्ञानिकों, कला, कलात्मक आदि प्रकार से अपनाए जाने का आशय मानव की मानवीय मनस्वीता में वृद्धि विकास की दशा उत्पन्न करना ही होता है। मानव मन जो प्राणियों में विशेषता रखता है उसका कारण भी यही है। मानव इस अपनी परिस्थिति को वर्तमान तक खूब अच्छी तरह समझ चुका है। तभी तो वह मन मानसिकता की दृष्टि से सोच-विचार, आचार्य - व्यवहार, रहन-सहन, खान-पान आदि के साथ अपनी जीवन की अवस्था मान से दिनचर्या पर बल देने लग गया है, जिससे जीवन में प्रारंभ काल से ही मानवीय मनस्वीता में वृद्धि विकास, प्रगतिशीलता उत्पन्न होती रहे। यही कारण है कि मानव मन वर्तमान में इस दृष्टि का सिरमोर समष्टि का निर्माता संचालक बन गया है। प्राणी जगत। में मानव मन की असाधारण सफलता है।

६ - मन पतियाये ईश्वर प्रत्यय

मानव मन एक आधार है। जिसके सहारे वह यह विश्वास जमाये हुए है कि इस सारे ब्रह्मण्ड का निर्माता संचालक, संरक्षक कोई शक्ति है कि जिसके बल बूते पर सारी सृष्टि टिकि हुई है। मन मानसिक अटूट विश्वास मानव जीवन की विशेष विशेषता है। मानव ने इस सच को स्वीकार कर लिया है। भले वह इसकी पुष्टि के लिए वह कितने ही प्रयोग परीक्षण जाँच पड़ताल करता रहा हैकर रहा है। करता भी रहेगा। इससे मानव में विश्वास जमता अवश्य जाएगा। शंकायें उठती रहेंगी लेकिन उनके समाधान भी तो मिलते रहेंगे। जो क्रम रुकने वाला नहीं है चलता रहेगा प्रसिद्ध है कि---

ईश्वर न स्थापित किया जाता न निर्मित वह होता है।
स्मरण की अन्तरयात्रा प्रभु सदा उसके पास रहता है ॥
सामान्य जन की भाँति वह कहीं नहीं मिलता जुलता है।
भाव का भूखा प्रेम का दीवाना वह तो सबका होता है ॥
मन पतियाये स्मरण मानव मन में करता रहता है।
नित्य जीवन आदर्श मान धीरता वीरता धारता है ॥
विश्वास प्रतीति एतबार मन की होती धारणा वारणा है।
गलती सुधार मन विश्वास सब ठीक ठाक होता जाता है ॥

एक समय का मानव अबोध अवस्था में था। तब उसका मन तो उसके पास था पर उसके हित में मन से वह सोच समझ भी नहीं पाता था। तो स्थिति ऐसी थी कि मन में वह हर चीज को एक अजूबा मानता था। ऐसा नहीं था कि मन में सोच नहीं आता हो। सोच समझ जितनी भी मानव में थी उसके अनुसार उसका मन होता था। जब कुछ नया होता तो उसका मन प्रसन्नता से भर जाता।मन कह उठता कि मन में धारो तो सब ठीक ही होता है। होता भी था। इसी में उसने अपने लक्ष्य को पाने के कुछ उद्देश्य बनाये। बनाये इसलिए कि

उनका पालन किया जाय। मन को अच्छा लगे। शान्ति मिले। आगे के लिए आशा बँचे। उसके इस विश्वास से मन में यही आया कि पहले मन में धारा जाय तब सब कुछ सुधरता चला जायगा। मन में जो इच्छा होती है, प्रेरणा उत्पन्न होती है। मानव उसके अनुसार करता भी था। इससे उसे इंद्रियों का ज्ञान उन पर मन का प्रभाव मालूम हो गया। बस उसकी इस धारणा ने मन को प्रेरित किया कि मन के हारे हार है। मन के जीते जीत। उसे मालूम हुआ कि मन की बात मन ही जाने दूजा क्या कर लेता। इससे उसे लगा कि मन में भाया सब सही। क्योंकि होता यह कि समुद्र गंदा कठोती में गंगा। अर्थात अपने पूरे शरीर में डूबने से क्या वह तो मन ही से काम चलेगा। बस फिर क्या ? मानव ने अपने मन को पहचाना उसकी बात मानी। मन में विश्वास पैदा किया कि मन सुधार ले तो सब लो वारणा। यह सही भी लगा कि मन सधे तो सब सधे, मन की बात मन की वही एक बात सबकी वही एक बात हो जाती। मन लगाया। मन मनाया विश्वास हो गया कि कल का जीवन जीने के लिए आज का श्रम सहायक बनेगा। उसने रोटी कपड़ा, मकान की व्यवस्था में अपने मन में श्रमसाध्य जीवन व्यतित करना धार लिया। सुख सुविधा की व्यवस्था में यह समष्टि श्रृंगार कर बैठी मन में ज्ञान, विज्ञान में लगन, कला में मन, अंतर में दर्शन, धर्म में आस्था, लक्ष्य पर दृष्टि, सफलता से शान्ति आनंद से मानव मन भरने लगा। उसमें ललक लालसा और बढ़ने लगी तो नित्य वह पूजा प्रार्थना उपासना साधना जैसे कृत्य करने लगा। दैनिक जीवन व्यतीत करने में मन लगा। विश्वास हो गया कि जीवन में शान्ति संतोष मन को साधकर लगाने पर ही सफलता मिलती है।मन सधे तो सब सधे विश्वास हो गया। प्रत्यय अर्थात विश्वास हो गया कि आदर्शों का कारण दया श्रोत, निरपेक्ष तथा स्वतंत्र सत्ता, असीम में ससीम, दृश्य में अदृश्य, आत्मा में परमात्मा, वही आदि में कारण ईश्वर का ही प्रत्यय प्रतीत हुआ। सम्पूर्ण प्रकृति प्राकृतिक जीव जंतु प्राणि, खनिज तत्व का समुच्च वही ब्रह्म मन में समाया हुआ समझ लिया। मानव मानस ईश्वरवादी होकर जीवन जीने लगा। मन की धारणा बन गई कि मन में सबका वास है, अतः मनको लगाया जाय।

नित्यको नियमित बिताया जाय। मन को लगाना, मन का लगना, मन का मानना हो जावेगा। मन मान जावेगा, हमें भी लगेगा कि हम मन को मनाना जानते हैं। मन को जीत लिया जायगा। हमें भी लगेगा कि हम मन को मनाना जानते हैं। मन को जीत लिया जायगा। हम सबके सब हमारे हो जावेंगे। इस सृष्टि पर सब हिलमिल रह सकेंगे। अन्य प्राणियों से मानव ने अपना परिचय समझौता कर उन्हें अपने मन से चलाने लगा। अपने काम में लिया उनका मन चैतन्य नहीं था। अतः वे असमर्थ रहे। मानव मन उन पर हावी होकर सृष्टि पर समष्टि का मालिक बन गया। मन की प्रतीति उसे हो गई। मन में यह विश्वास हो गया कि ईश्वर हमारे साथ है। यही जीवन है। मौत अर्थात मन में इसकी प्रतीति में बदलाव है कि अस्तित्व हमारे कर्म क्रिया के अनुसार फिर से तैयार होगा। यह क्रम समझ में आ गया। जन्म-मृत्यु मृत्युजन्म समझ में आ गया। मृत्यु का दुःख जन्म की प्रसन्नता में मन लग गया। क्रम चल पड़ा। निर्गमन में सामान्य आगमन में विशेष एक ही सत्य की स्थापना और पुष्टि हो गई। मन आशावादी सिद्धांत का अनुसरण करने लग गया। मन में व्यवहार की समरसता आती गई। जड़, जीवन मानस तीनों स्तर पर नवीन तत्व सृजित हुआ। जो मन को प्रभावित कर जीवन को गति बन गया। समय उसकासहयोगी बन गया। घड़ी, पल, दिन, वर्ष एक अन्त रहित क्रम बना। मन की दृष्टि में यह ब्रह्म सत्ता अर्थात बाहरी स्वरूप माना गया। बाह्य स्वरूप को अस्वीकार कर घटनाओं को मूर्त विचार माना, किंतु दोनों को निबेध कर बुद्धि निहित अनुभव से पूर्व प्रत्यय या ढाँचा रुपेण मन की सामायिक दशा हो गया। बस यहाँ मानव मन अपना मन बन कर अनुभव विश्वास और शान्ति प्रदाय का स्वरूप बन गया। जिसकी की मानव को आवश्यकता थी। इस प्रतीति और विश्वास ने मन को अपनी जीत महसूस की। यही कारण है कि मन बाह्य जगत में कितना ही भ्रमण कर ले, किंतु कहीं किसी एक बिन्दु से जब वह टकराकर घटनाग्रस्त होता है तो अनुभव होता है। यह अनुभव मन के लिए मार्गदर्शक बनकर आगे कुछ करने समझने का कारण बनता है, यहाँ मन सध जाता है। मन की हर सोची बात अच्छी लगने

लग जाती है। उदाहरण में हम सुनते हैं कि ' मैं कहता हूँ मेरा मन कहता है कि यह करो यह मत करो, यह मानो यह नहीं मानों इस अंतिम निष्कर्ष के लिए ही मन को साधा जाता है। मनाया जाता हैं। सोच समझ विचार बनाया जाता है। निष्कर्ष में शब्द चयन होते हैं। उपयोग में उन शब्दों के अर्थ के अनुसार किया जाता है। मन लगाया जाता है। उपलब्धि मानी जाती है। उपलब्धि के बाद उसका क्रम चलता रहता है। मन लगा रहता है। जीवन की क्रमबद्धता बन जाती है।

उपरोक्त व्यक्त विचार अपने अपने अनुसार कुछ फैर बदल भी हो सकता है। यह अपनी मनोवृत्तियों पर निर्भर होता है। कारण की वृत्ति प्रवृत्ति और प्रवृत्ति वृत्ति में बदलती रहती है। यह समय सामयिक स्थिति परिस्थिति के अनुसार भी होता है। एक सी समय दशा होती भी नहीं है। अतः व्यस्त मन की दशा में बदलाव आना स्वाभाविक होता है। जब शाकाहारी से मांसाहारी और मांसाहारी सेशाकाहारी परिवर्तनों को देखा जाता है तो इस परिवर्तन से आश्चर्य होता है कि मन ने यह कैसे स्वीकार कर लिया। यहाँ मन की मजबूरी यही रही होगी कि मनमानी पर उतर गया होगा। अपना आपा खो बैठा होगा। अन्यथा उलट-पुलट प्रभाव पैदा नहीं होता। अत: इस उलट पुलट प्रभाव से बचने के लिए मन को साधा जाता है। नियमबद्धता में बाँधा जाता है। दिनचर्या के निर्धारण से चलाया जाता है। तब ही मन की प्रतीति को उसकी आत्मप्रत्यय समझा जाता है।

इस आत्म प्रत्यय अर्थात ईश्वर धारणा अर्थात जीवन जीवनी में मन के क्रिया कलाप अर्थात मन की धारणा को इस प्रकार प्रकट होने का अवसर मिलता है कि संतोष की लहर उत्पन्न होती है। संतोष शान्ति मिलती है। मन प्रसन्नता से भर जाता है। स्थिति परिस्थिति बनने बनाने के लिए मन को लगाया जाता है। यहाँ जब मन लगा हुआ प्रतीत होता है तो मन भटकाओं में जाने से रुकता है। अवसाद पैदा होने से रुकते हैं। सोच समझ विचार अनुकूल होने

लगता है। मस्तिष्क में ऐसी लहर उत्पन्न होती है कि विचार क्रम चलने लगता है। जीवन जीने का आनंद सा उत्पन्न होता है। भाव भावना अच्छा करने, करवाने की ओर होती है। मन में इस अहसास को कायम रखने के लिए अनुकूलता को अपनाया जाता है। अनुकूलता का विचार बनता है। प्रतिकूलता का स्थान खाली होते जाने से अनुकूलता स्थापित होती चली जाती है। इस प्रतीति के लिए ही मन लालायित रहता है। जिसकी पूर्ति होने से मन प्रभावित आत्मा में विश्वास जमता है। ज्ञानेन्द्र और कर्मेन्द्रि मन कर्मेन्द्रि के अनुसार अनुकूल होकर काम करती है। संतोष शान्ति मिलती है। विश्वास होता है।

७- मस्तिष्क विचारे मन पकड़े

बुद्धि बौद्धिक चिंतन, मनन विचार और शब्द उत्पन्न का अधिष्ठाता मस्तिष्क होता है। स्मृति में संग्रहीत विचार और शब्द तो हर समय प्रकट होते रहते हैं। स्मृति से औझल जो वर्तमान व्यवहार में नहीं आरहे हो मन के चाहने पर वे भी प्रकट होते रहते हैं। लेकिन सबसे प्रमुख तो यह है कि मस्तिष्क चिंतन से मौलिक विचार और शब्द जो कभी सामने आये ही नहीं वे भी उत्पन्न किए जा सकते हैं। इसके लिए धैर्य रखा जाना है। प्रतीक्षा तो की जावेगी। मस्तिष्क में विचार और शब्द यात्रा चलती ही रहती है। नए विचार और शब्द की जिज्ञासा तो करना पड़ती है। आधारित विषय पर चिंतन को मस्तिष्क को प्रेरित करना पड़ता है। कुछ समय मस्तिष्क को ऐसा भी लगता है कि शून्यकाल होता है। उसमें अथवा चलते अथवा छिपे विचार चिंतन को साथ प्रेरित विषय पर भी चिंतन मनन चलता है। इसी बीच नये विचार और शब्द एक दम स्मृति में आ जाते हैं। मस्तिष्क की मौलिकता उन विचार और शब्द को एक दम उत्पन्न होने से आभास कराते हैं। बुद्धि की तीव्रता मन की सजगता के होते वे विचार और शब्द उत्सुक आनंद की झलक दे उठते हैं। मन उन्हें तुरंत संभाल लेता है। कर्मेंद्रि इंद्रि हाथ को आज्ञा दे देता है। कागज पर वे विचार अथवा शब्द जो भी हों उन्हें उतार लिया जाता है। सजगता की क्रमबद्धता मस्तिष्क में इस प्रकार स्थान पा लेती है कि नये विचार और शब्द भी चिंतन मनन धारा का क्रम चलता रहता है। इसी क्रम को यदि हम चाहे तो समय बद्ध भी कर सकते हैं। एक निश्चित समय निर्धारित कर लें। अथवा फुरसत के समय में शून्य काल आमंत्रित कर चिंतन मनन का क्रम उत्पन्न किया जा सकता है। सोते समय और विश्राम के समय भी,इस मस्तिष्क के बौद्धिक पटल पर आये कि समय मन उन्हें पकड़ने दौड़ पड़ता है। पकड़ लेता है। कागज पर उतरवाता रहता है। नित्य ऐसा होता रह जाता है। एक समयबद्ध सीमा दैनिक को शामिल करते हुए साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक या फिर जितने गिनती के दिन के अंतिम उन

शब्द विचार भी गिनती लगाई जाय तो हमारे पास एक खासा संग्रह का भण्डार तैयार हो जाता है।

पद्धति को हर व्यक्ति जानता है, लेकिन उसको व्यवहारिकता नहीं दे पाने से अनजान ही बना रहता है। चिंतक विचारक मननशील जो कोई भी इस पद्धति को अपना सकता है। प्राय: यह देखने में आता है कि साहित्यकार अपने लेखन में नये शब्द और विचार आते ही अनुभूत हो उठते हैं। लेखन में लहरा उठता है। क्रमबद्धता बढ़ जाती है। लगन में मगन या खोई हुई स्थिति जैसा उस समय उसकी हो जाती हैं यह इस पद्धति का ही परिणति परिणाम होता है। क्या ही अच्छा हो कि पद्धति जब पकड़ में आ गई तो उसे अपनाया जाना चाहिए। इससे विचार सक्रिय हो जाते हैं।

हमारा तो यह भी मानना है कि इस पद्धति को लम्बे समय तक अपनाया जाय तो इसकी अनवरत क्रमबद्धता स्वतः क्रियाशील हो जाती है, जिसे हमारे चाहने पर हम कभी भी इसका उपयोग कर सकते हैं, लेकिन होता यह लम्बे समय बाद ही। लम्बा समय कोई निर्धारित नहीं होता है। यह तो हमारे मस्तिष्क की तीव्रता, सक्रियता और उसे प्रेरित करने पर निर्भर होता है। ठीक भी है। प्रेरित किए बिना तो कुछ हो भी नहीं पाता है। फिर नवीन मौलिकता के लिए तो और भी अधिक आरश्यक हो जाता है। मौलिक साहित्य सृजन और शब्दकोष तैयार करने के लिए तो यह पद्धति असाधारण रूप से उपयोगी सिद्ध होती है। विद्या विद्यावान, इसका उपयोग करनेपर निहाल हो जाते हैं। पद्धति के सामने शैक्षणिक योग्यता केवल मस्तिष्क की सक्रियता में ही सहायक होती है। मस्तिष्क क्षमता में वृद्धि होती रहती है। सफलता मिलती रहती है। विचार और शब्द उत्पन्न होते भी सृजनात्मकता उत्पन्न होकर मस्तिष्क क्षमता में घुलमिल जाती है। योग्यता जो छीपी थी वह प्रकट होकर व्यवहार में आती है। योग्यता सुदृढ़ होती चली जाती है। इससे नये विचार नये शब्द और ढेरो उदाहरण जो कभी उस स्तर के सामने नहीं आये आने लग जाते हैं। जिनकी

नवीनता को पाकर चिंतक, विचारक, साहित्यकार, प्राध्यापक आचार्य, निहाल हो जाते हैं। इनकी यह यात्रा फिर चलती रहती है। लापरवाही अथवा शिथिलता में ही व्यवधान उत्पन्न हो पाते हैं क्रम शिथिल अथवा टूट जाता है। अन्यथा प्रगतिशीलता से इनकार नहीं किया जा सकता है। परिश्रम की न्यूनता रंग ला देती है।

पद्धति का उपयोग हर क्षेत्र में किया जा सकता है। पत्रकारिता, लेखन, सम्भाषण, अन्ताक्षरी, सेमीनार, वार्तालाप, बातचीत और नहीं तो दैनिक क्रियाकलाप, उद्योग, व्यापार, श्रम आदि सभी में पद्धति उपयोगी ही सिद्ध होगी। हमारा तो यह भी सुझाव सबके लिए है कि पद्धति अपनाने वाला कभी घाटे में रह ही नहीं सकता है। यदि वह घाटे का अहसास करता है तो पद्धति को उचित नहीं अपनाने की कमी ही रहेगी। इसके अतिरिक्त मस्तिष्क की क्रियाशीलता मंदबुद्धि ही कारण होगा। अज्ञानता वह जो बौद्धिक क्षमता भी कमी के कारण हो वह अवश्य प्रभावक होगी। अन्यथा बौद्धिक क्षमता होने और शैक्षणिक योग्यता भले कम ज्यादा या नहीं होने पर विचार एवं शब्द स्तर में भले अंतर आ जाय, किंतु उत्पन्न होने के क्रम में कभी अंतर आ ही नहीं पाएगा। यदि इसमें कमी आती है तो हमारे समझाने की कमी कही जा सकती है।

इस सबके लिए सर्वप्रथम आवश्यकता को स्थान देना होगा। आवश्यकता का अहसास होने पर ही तो पद्धति अपनाई जा सकेगी। इसके पश्चात इसको हमारी बुद्धि में बुद्धि तेज की स्मृति को सहलाना होगा, जिससे चेतन, अर्थचेतन, अवचेतन और सुपर चेतन मस्तिष्क में हलचल पैदा हो। बिना हलचल पैदा किए पद्धति परिणाम का प्रकटीकरण हो ही नहीं सकता है।

उपरोक्त हमने बहुत ही सरल तरीके से बताया है कि फिर भी हम प्रत्येक विचारवान को उनकी अपनी साधन सुविधा बौद्धिक क्षमता के अनुकूल

यदि पद्धति में फेरबदल की आवश्यकता होती है तो हमको कोई आपत्ति नहीं है। ना ही हम इसे प्रतिष्ठा का विषय बना रहे हैं, लेकिन इतना तो हम कहेंगे ही कि पद्धति की क्रियाशीलता से फिसल कर लाभ उठाना संभव नहीं होगा। क्रियाशील रहना पड़ेगा। तब ही नये विचार और शब्द की दौड़ में नये-नये विचार और शब्द मिल पाएंगे। जब यह लगे कि ये नये विचार अथवा शब्द हैं तो उन्हें तुरंत नोट कर लें। भूलचूक देरी करने पर स्मृति से वे ओझल भी हो सकते हैं। नोट करने के बाद उसे बारबार पढ़ने से वह स्मृति में स्थान पा लेता है। आपको अपनी योग्यता पर फिर विश्वास भी हो जाएगा। एक बार पद्धति अपना ली, दिमाग (मस्तिष्क) को सक्रिय कर लिया तो फिर क्रम चल पड़ेगा। आश्चर्यजनक सफलता मिलती ही चली जाएगी।

हमारे सोचने समझने का जितना अधिक महत्व होगा वहाँ हमारा मस्तिष्क उसी स्तर पर काम भी करेगा। कौन विचार किस श्रेणी प्रकार आदि के हैं इस झमेले में पड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। वह तो क्रियाशीलता अपने आप मस्तिष्क को सक्रिय बनाकर उसका निर्धारण कर ही देगा। इसके लिए चिंता की कोई आवश्यकता नहीं होती है। केवल क्रमबद्धता, लगन, सतर्कता औरदुहराते रहने की आवश्यकता का क्रम तो पालन करना ही पड़ेगा। यहाँ हमारा एक अनुभव यह ही कि ऐसे में रटंत विद्या नहीं अपनानी पड़ती है। यह रटंत क्रिया वे ही अपनाते हैं जो विद्यार्थी अपने कोर्स का पूरा ज्ञान नहीं रखते हैं। और केवल प्रश्नोत्तर अथवा पाईन्टों से काम चलाना चाहते हैं। हमारा अनुभव तो यह है। कि विषय को समझा जाय। पूरा पढ़ा जाय। तब जब कभी आवश्यकता पड़ती है अपने शब्दों में वह उत्पन्न हो जाएगा। जिसमें मौलिकता अवश्य होगी। हमारे द्वारा बताई गई पद्धति इससे आगे के विषय श्रेणी के प्रकार की है। उसी आधार पर विद्यार्थियों को हमने संकेत किया है। पद्धति अपने आप में अलग है। उसे गहन गहनता, नवीनता के लिए विद्यार्थी अपने कोर्स के

अतिरिक्त अपनाए तो सही। देखो फिर असाधारण सफलता मिलती है कि नहीं।

दिमाग (मस्तिष्क) कभी थकता नहीं। थकान जब महसूस होती जब अरुचि से करते हैं। रुचि से किये काम में मस्तिष्क कभी नहीं थकता है। हमारा तो यह भी अनुभव है कि नींद आराम साज श्रृंगार की वस्तुओं के उपयोग की भी कोई विशेष आवश्यकता अहसास होती ही नहीं है। ना ही कोई उसके अनुपयोग से कोई कमी दिखती हो।

उपरोक्त विचार पद्धति कोहमने बहुत ही सरल सादगी से व्यक्त किया है। अब आपके ऊपर निर्भर है कि आप उसे अपनाये या नहीं अपनाये। कसौटी पर कसने के लिए आप स्वतंत्र हैं। कुछ भी, कैसा भी कर सकते हैं, लेकिन सफल सफलता के लिए उचित को तो स्थान देना ही पड़ेगा, फिर भी हमारा सुझाव है कि मस्तिष्क से विचार मन की पकड़ बनाए तो उपरोक्त की सभी प्रकार निश्चित सफलता मिले बिना कभी नहीं रह सकती है। व्यावहारिक तौर से जिसेहमने अपनाया है वही आपको परोसा गया है। आप भी अपनाए और परोसेइस आशय के साथ सफलता की शुभकामना है।

८. मनोभाव विचार सम्प्रेषण

मानस भाव हर स्तर और हर प्रकार के होते हैं। उनकी वास्तविकता उपयोगिता, महिमा, गरिमा, श्रेष्ठता स्तर आदि व्यक्त होने पर ही मालूम होता है। भाव अनुकूल प्रतिकूल अथवा मिश्रित भी हो सकते हैं। व्यक्त करने वाले का अपना व्यक्तित्व होता है। उसका बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है। विचार और भाव कैसे भी हों व्यक्त करना और तरीका भी महत्व रखता है। वाक कला, पत्रकारिता, साहित्य लेखन, समय सामयिक पत्रिका सम्पादन, अनुवाद, संक्षिप्त कर लेखन, विस्तार लेखन, ट्रांसलेशन, वाक्य, उक्ति, कहावत, लोकोक्ति, मुहावरा, उलटवासी, संस्मरण, अमृतवाणी, चिंतन बिन्दु, सदवाक्य आदि विचार व्यक्त सम्प्रेषण ही हैं। अभ्यास की आवश्यकता सदा पड़ती है चाहे वह नित्य व्यवहार हो, समय सामयिक हो, व्यक्ति विशेष से हो, सामूहिक स्तर पर हो, स्वत: हो आदि-आदि सभी स्तर पर आवश्यकता होती है। विषय, भाषा, लिपि, अपनेअपने स्तर की होती है। ज्ञान, विज्ञान के युग में बदलती तकनीक का अपना महत्व है। शिक्षण प्रशिक्षण की व्यवहारिकता भी पूरी करनी पड़ती है। भाव-भावना, विचार, अनुभव का यह आदानप्रदान की प्रक्रिया है। वक्ता और श्रोता के बीच तक मेल बैठा कर इसे व्यक्त किया जाता जो ज्ञानेंद्रियों से होता है। स्वयं अनुभव की जानकारी जिसमें शामिल रहती है। यह शब्दों का प्रयुक्त प्रमाण है जो कल्पना शक्ति के आँकलन का वक्ता श्रोता दोनों का तुलनात्मक विचार प्रत्यक्षीकरण है। इसमें अर्थ शामिल रहता है। जब कभी व्यक्ति अकेला ही कुछ तो भी करता रहता है। इसे बड़बड़ाना भी कहते हैं। यह स्व बातचीत विभ्रम होने की भी दशा होती है जोआसान है। इसे आत्मबोध भी कह सकते हैं। मौन अथवा उच्च स्तर में किसी देवी शक्ति का गुणगान, पाठ, आरती, जप, ध्यान मन के भाव व्यक्त होते हैं। बुद्धि का मन से अनुसरण है। अपने मन की बात दूसरों से करना यही तो जीवन डोर है। जिसके बंधन से बंधकर विचार आदान प्रदान होते हैं। इस प्रक्रिया बल से पुराने

नये और वर्तमान से जुड़ा रहा जाता है। भिन्न-भिन्न आदेशों से यह प्रकट किया जाता है। कभी प्रेम, कभी नफरत, कभी क्रोध, कभी अहं, कभी आदर तो कभी अपमान, कभी कठोरता तो कभी उदारता, कभी स्पष्ट तो कभी संकेत आदि प्रकट होता है। इस सबका यही अर्थ है कि यह मात्र मन के भावों की अभिव्यक्ति बुद्धि का चातुर्य मात्र ही कहा जा सकता है। यह शरीर अंगों की अभिव्यक्ति जिसे हम पृथक अध्याय में व्यक्त करेंगे।

बोर्ड होर्डिंग, बेनर, प्टेल, केलेन्डर, विज्ञप्ति, विज्ञापन, दीवाल लेखन, पोस्टर, पेम्पलेट, बुकलेट स्टीगर आदि से भी मनोभाव प्रकट होते हैं। कि जिस व्यक्ति, संस्था के वे होते हैं क्या चाहते और कहते हैं। दान, सहायता, भेंट अनुदान इसका रूप अलग है, किंतु किसे किस प्रयोजन से वह दिया गया है, यहाँ उस मनोवृत्ति का संकेत मिलने से विचारों का अंदाज लगता है कि देने वाले के किस प्रकार के विचार समर्थन प्रकट करते हैं।

वाक कला, तर्क शक्ति, वाद, चित्रकला, नक्कासी, मूर्तिकला, संकेत पट्टिका आदि इस विचार प्रकट करने के बहुत अच्छे प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। देव देवताओं के आकार प्रकार का निरूपण कर चित्र, मूर्ति बनाना भाव भावना का पुट लिए होते हैं। गीत संगीत, नृत्य, वाद्ययंत्र, प्रयोग से जो आयोजन प्रयोजन होते देखे जाते हैं वे उन आलोचकों के मनोभावों को व्यक्त करने वाले संकेत ही तो होते हैं। हम तो यह भी कहते हैं कि व्यक्ति का पहनावा, खानपान, निवास सुविधा, उपयोग उपयोगिता, पढ़ाई-लिखाई के विषय, घरु उपयोग का सामान इस सबसे उस व्यक्ति विशेष विचार की छाप दर्शक ही होते हैं। रीति रिवाज, परंपरा, प्रथा, उनके टोटम बंधनवार यह सब मन के विचारों के अनुकूल विचार दर्शाने वाले ही होते हैं। यह सभ्यता, संस्कृति के बहुत अच्छे उद्धरण हैं।

हमने बहुत फैलाव को समेटते हुए विचार व्यक्त करने की वृत्ति - प्रवृत्ति भाव-भावना का उजागर होना या करना बताया है, लेकिन नियमित

संयमित आशय से भाव भावना का प्रदर्शन तो व्यवहार बोलचाल ही से पता लग जाता है। भाव भावना के अनुकूल ही जीवन निर्वाह किया जाता है। परिस्थिति बनाई जाती है। अपने केरियर विकास की दशा को चुनकर आमंत्रित किया जाता है चला जाता है। थोड़े में यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि भाव भावना के अनुकूल मानव जीवन जीने की परिस्थिति में वह जीता है और मरता है। इसके विपरीत स्थिति परिस्थिति में मानव प्राण समाप्त के तरीके भी अपनाता है। परिवार, जाति, समाज का संगठन, अनुकूल भाव भावना और उसका गोपनीय रूप बनाए रखने का तरीका उनका अपना सम्प्रेषण है। जाति, उपजाति. बहिर जाति, अंतरजाति, निषेध विवाह को अपनाना नहीं अपनाना इस फैलाव की बुनियादी कड़ी है।

हमने विषय का विस्तार जो लिया है, उसका व जिसका औचित्य मनुष्य का विभिन्न समाज संगठनों में आना जाना और मेल मिलाप की परिस्थिति से समायोजन करना रहा है। कभी-कभी यह भी होता है कि हम जानते तो बहुत हैं सम्प्रेषण चाहते भी हैं, लेकिन व्यक्त नहीं कर पाते हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण में यह कहा जा सकता है कि जब कभी मुखिया को सामने देखते हैं तो कपकपी छूटने से कुछ कह नहीं पाते हैं। इसी प्रकार जब व्यक्तविचार करनेखड़ा होता है झिझक के कारण कुछ बोल नहीं पाता है। इसका मतलब यह नहीं है कि वह विचार व्यक्त करना ही नहीं चाहता हैं, लेकिन उसके अंदर विचार व्यक्त करने वाले वक्त के गुण नहीं होते हैं, इससे वह कुछ भी बोल नहीं पाता है। लेकिन यह स्पष्ट है कि विचार सम्प्रेषण बिना दुनिया का कोई भी अभियान हो या आंदोलन हो सफल हो ही नहीं पाता है। तभी तो विशेष विचार व्यक्त करने के तरीके मैं कैसेट, माईक आदि का उपयोग किया जाता है। इंटरनेट ब्राडकास्टिंग, कौंसलिंग जैसे विचार सम्प्रेषण के सरल सुबोध वर्तमान के प्रचलन हैं। ध्वनि प्रसारण के माध्यम से जगह -जगह प्रसारण किया जाता है। टेलीविजन (T.V.) के अलावा मोबाईल फोन और भी आसान

तरीका उपलब्ध हो चुके हैं। और भी सुविधाजनक तरीकों का प्रयोग बढ़ता ही जा रहा है। जिन्हें सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता है।

प्रजातांत्रिक युगकाल में तो विचार सम्प्रेषण बहुत ही आवश्यक हो गया है। जिसके वैज्ञानिक उपकरण मोबाइल, वॉकीटॉकी, इंटरनेट पर सभा आदि जैसे तरीके अपनाये जाते हैं। यह सबका एक ही विशेष महत्व होता है। हम क्या बोलते हैं, क्यों बोलते हैं कैसे बोलते हैं, कितना बोलते हैं। इस सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण तो यह है कि हम कैसे बोले, कब कितना बोले, यह सब आधुनिक सभ्यता में बहुत ही जरूर हो गया है। इसके विशेष प्रयोजन की शिक्षा भी निर्धारित की जा चुकी है। शासन व्यवस्था में नियम कानून भी बनाए जा चुके हैं। जिनका पालन अनिवार्य भी हो गया है। न्याय व्यवस्था मान से पालन नहीं करना अवमानना माना जाता है। जिसके अपने प्रकार के दण्ड के प्रावधान भी हैं। सीमित निर्देश भी होते हैं। जो केंद्र, प्रान्त, और स्थानीय स्तर का महत्व रखते हैं। जिनको शासकीय गजट, विज्ञप्ति सूचना को प्रकाशित किया जाताहै। टी.वी., समय सामयिक पत्र पत्रिकाओं में समाचार के रूप में शासन, संस्था समान स्तर के अपने प्रकाशन होते रहते हैं। अपनीअपनी क्षमता के अनुकूल व्यक्तिगत भी तरीके अपनाए जाते हैं।

सम्प्रेषण के समय मुख्य समस्या यह रहती है कि वक्ता और श्रोता दोनों भिन्न होते हैं। तो वक्ता उनके अनुकूल व्यक्त नहीं हो पाता है। श्रोता शर्मा शर्मी सुनने के प्रदर्शन में बैठा रहता है, किंतु उसका ध्यान कहीं ओर पर लगा रहता है। अथवा आपस में एक दूसरे से बातचीत में व्यस्त हो जाता है। यदि वह दोनों नहीं तो वह झपकी ले लेता है। बातचीत में भी सुनी अनसुनी करते हुए वार्तालाप होता है। इस समस्या का समाधान वक्ता के अनुकूल के लिए आकर्षण व्यवस्था की जाती है। यह सब किया इसलिए जाता है कि वक्ता की बात हर एक को प्रभावित करे। सम्प्रेषण सफल भी ऐसा ही होता है। आंदोलन में जबरदस्ती से विचार मनवाने का आशय होता है। हड़ताल, तालाबंदी जैसे

इसी प्रकार के उदाहरण हैं। शान्ति तरीके से बात मनवाई जाय इसके लिए अभियान रूपी तरीका अपनाया जाता है। प्रचार-प्रसार निवेदन जानकारी के उसी अभियान के तरीके होते हैं। वर्तमान में बड़े अजीब तरीके अपनाये जाते हैं। घोषणायें भी जाती है। अनेक प्रलोभन दिए जाते हैं। वायदे किए जाते हैं। वस्तुयें वितरित भी की जाती है। आदि आदि।

आंदोलन के समय उनके प्रभावक को मिला लिया जाता है। आंदोलन कमजोर पड़ जाता है। प्रभावहीन हो जाता है। अथवा दबा दिया जाता है। जिससे बुलंदगी समाप्त हो जाती है। अभियान में उपवास, धरना, मूक प्रदर्शन होता है, जिससे किसी को हानि नहीं पहुँचाई जाती है, जिससे जनसमर्थन अधिक प्रभावित होता है। सम्प्रेषण के दोनों तरीकों की अतिशयोक्ति हम देख चुके हैं। इसका सबसे प्रभावी तरीका तो आपसी व्यवहार ही है। जिससे दोनों पक्षसभ्यता, शालीनता से एक दूसरे के अनुकूल होकर मेल मिलाप हो जाता है। एक दूसरे को समझ लेते हैं। मनोभाव भावना का सम्प्रेषण आदान प्रदान दोनों पक्ष को अनुकूल हो जाती है। थोड़ी परेशानी जरूर होती है। समय अवश्य लगता है लेकिन परिणाम अनुकूल निकल कर सामने आते हैं।

विचार सम्प्रेषण एक कला है, जिसे व्यक्त करने के लिए प्रभाव पैदा किया जाता है। सम्प्रेषक को ज्ञान हो, अनुभव हो, तौर तरीके याद हो, अपने विषय को व्यक्त करना आता हो। उसका अपना व्यक्तित्व होता है। सम्पर्क होता है। यदि पदाधिकारी हो तो उसको अपनी सीमा गरिमा के अनुरूप सभ्यता में रहकर सम्प्रेषण कला हो। यह सब अपनी-अपनी निजी योग्यता पर भी बहुत कुछ निर्भर है। विषय को व्यक्त करने में हमारी तो यही अभिव्यक्ति रही है कि संबंधित छोटी से छोटी से लेकर विस्तार स्तर की परिस्थिति भी अभिव्यक्ति प्रकट कर दी जाय। जिसे अपने-अपने मनोभाव से मूल्यांकन हो जाएगा।

९. अंग विन्यास मन के भेद

ईश्वर ने मानव रचना बड़ी कला कृति से की है। शरीर सौष्टव सौंदर्य शरीर की बनावट आँख, भोहे, नाक, मुँह की आकृति। रूप, रंग तेज फिर विचार सम्प्रेषण के समय उभरने वाले भाव मन की चंचलता चपलता को प्रदर्शित करते हैं। इससे मन के भाव भावना का पता चलता रहता है। प्रसन्नता की लहर क्रोध की कसक आकर्षण विकर्षण को प्रभावित करते हैं।

बोलते समय झुकना दिलचस्पी। आने वाले के स्वागत पहले हाथ मिलाने को बढ़ाना स्वागत की आतुरता। फिर हाथ मिलने मिलाने के संकेत जिनसे समझ में आता है कि- ढीला लापरवाही से हाथ मिलान रुचि का अभाव, मन भाव की संकुचितता, हाथ मिलाकर हिलाना लापरवाही। सेन्डविच तरीके से हाथ मिलाना धूर्तता काष्ट का प्रदर्शन। कसकर हाथ मिलाना आदर देना। हाथ पर हाथ रखकर मिलाते कसना स्पष्टवादी ईमानदार पद का सम्मान देना। एक हाथ मिलाने दूसरा उसके ऊपर रखना हितैषी होने का भाव होता है। खुली हथेली से हाथ मिलाना सहज स्वभावी। इसी प्रकार से अलग-अलग मुद्रा के भाव भी वैसे ही दर्शित होते हैं। दायें-बायें दिमाग का प्रदर्शन होता है। बोलते बात करते समय आंख का मटमटाना, भोहें तानना, गुस्सा नाक, फुलाना गर्व गौरव, मुंह की आकृति से मनोभावों का पता स्वतः चलता है। ललाट पर झुर्रियों का बनाना अपने आश्चर्य का प्रदर्शन होता है। बैठने में पीठ के बल टिककर बैठना दिलचस्पी की कमी और बोलते समय व्यक्ति की ओर झुकना दिलचस्पी का भाव होता है। शरीर सौष्टव सीधे होना सतर्कता। लुन्ज पुन्ज से शरीर सामने लाना अनमनस्ता दर्शाता है। अभिवादन में हाथ हिलाना। हाथ जोड़ने, पैर ढीला करखड़े होना सीधा खड़े होना आदि आदि अंग प्रदर्शन के हावभाव मन की भावभंगिमा को दर्शाते हैं। और तो और हम तो यह भी देखते हैं कि व्यक्ति के बैठने उठने के तरीको से उसके स्वभाव के गुण संतोष नफरत का भी पुट छिपा

होता है। लिखते समय कलम पकड़ने के तरीके से भी भाव प्रदर्शित होता है। कागज पर साल संभाल कर हाथ रखकर कलम चलाना विचार को सावधानी से प्रदर्शित करना। एक हाथ को अलग रखकर कागज पर कलम चलाना सुस्ती प्रदर्शित होती है। हस्ताक्षर करने लाईन खेंचना सपोर्ट की आशा व्यक्त होती है। बिन्दी लगाना शंका प्रदर्शित है। अक्षरों की बनावट में खूबसूरती लाना रचनात्मकता दर्शाती है। लिखते समय इधर- उधर नजर मारना शंकालुता दर्शाना होता है। इसी प्रकार शरीर के विभिन्न अंगों का प्रदर्शन मन हावभाव के भेदभाव प्रदर्शित होते हैं। हो समझने वाला तो सब समझ में आ जाता है।

सड़क पर बिल्ली का रास्ता काटना। कुत्ते का भौंकते लौटते दिखना। गधे का मिल जाना, गाय का पूँछ उठा भागना। साँप का फन उठाना, गोयरे का जीभ लपलपाना। पक्षी का चहचहाना। देखकर छिपना आदि सभी का अपने-अपने प्रकार के जब भाव प्रदर्शित होते हैं। इन सबका मनुष्य की आकृति पर जो झलक झाँकी बनती है उससे सहजता निर्भयता, डर, शंका, प्रसन्नता के भाव हावभाव चेहरे पर स्पष्ट झलक आते हैं। इन होने वाले परिवर्तनों से मन के भेदभाव भावना का प्रदर्शन समझ में आता है। चेहरे पर इनको झलकान सामने वालों को अपने भावों से बताना होता है कि वह क्या चाह रहा है। प्रसन्नता नाराजगी अथवा जो भी भाव हों वह स्पष्ट झलकते हैं।

समय-समय पर इस विज्ञान वैज्ञानिक युग में अब खोज खबर शोध सर्वे आदि कई प्रकार से पता लगाया जाता है। कुछेक सिद्धपरिणामों पर हम विचार करते हैं तो पाते हैं कि कैसा क्या उनसे समझना चाहिए अथवा समझा जाता है

अंग से पालन अगल-बगल अंग का संचालन जैसे हाथ हिलाना, बाँह उठाना, हाथ हिलाना आदि प्रभाव प्रभाविकता दर्शाता है। आगे पीछे अंग

संचालन की क्रिया से स्पष्ट है कि व्यक्ति की कुशलता का प्रदर्शन है। ऊपर हाथ उठाकर कुछ कहना विश्वास की दृढ़ता। नजर आती है।

मानव की वृत्ति प्रवृत्ति भी मनोवृत्ति को प्रदर्शित प्रदर्शन में वृति प्रवृत्ति में उनका प्रभाव मिलता है। सिर उठाकर चलना ऊँचा स्तर दर्शाता है। सिर झुकाकर चलना निम्न स्तर दर्शाता है। अथवा शारीरिक असमर्थता दर्शाता है। सम्प्रेषण की विश्वसनीयता पर प्रभावगामी मुद्रा बनती है। चेहरे पर मुस्कान उदासीनता जैसा प्रदर्शन स्वीकृति अस्वीकृति आदि भाव प्रदर्शन होता है। बातों में कोई रुचि नहीं लेता है। शब्दों को तोड़फोड़ जैसे प्रदर्शित करते लगता हो आदि में ऐसा लगता है कि रुचि नहीं ली जा रही है। या यूं कहें कि उस समय चर्चा करना ठीक नहीं है। किसी प्रकार के रहस्य यहाँ छिपे हैं।

प्रायः टी.वी. चेनलों में संवाद होते हैं। संवाददाताओं से बात प्रश्न पूछे जाते हैं। उत्तर दिए जाते हैं। वार्तालाप होते हैं। उन सबके समय जो मुद्रायें बनाई जाती हैं लहजे अपनाए जाते हैं, उतारचढ़ाव में बोला जाता है हावभाव कीमुद्रा बनाई जाती है। मौन रहा जाता हो झटपट बोला जाता है। आदि सबका अपने अपने प्रकार स्थान पर अर्थभाव प्रदर्शन के मतलब होते हैं। इन्हें समझाने के लिए ही यह सब विचार सम्प्रेषण अर्थात भाषण, प्रदर्शन, नारे, कोष घोषणा आदि के समय विशेष ध्यान रखा जाता है।

वाहन का उपयोग वस्त्रों की पसन्दगी, चप्पल जूते का पहनावा,बेग, थैली, पोटली का रखना, हाथ घडी, डंडा रखना आदि से शरीर क्षमता मन के भावों का पता चलता है। हमने उपरोक्त प्रकार से कुछ बनागी के रूप में बहुत थोड़ा बताया है। इस संकेत से हमको यह आईडिया तो मिल ही जाना चाहिए कि हमारे शरीर के अंगविन्यास से मन के विभिन्न प्रकार के भाव अर्थात भाव भावना का जिनके प्रदर्शन में गहरे, गंभीर, सार्थक अर्थ छिपे रहते हैं। जिन्हें समझ लिया जो तो सतर्कता आती है। संभावनाओं का अंदाज लगता है। मानव

मस्तिष्क इतना परिपक्व होता है कि हावभाव संकेतों से जो भाव प्रदर्शित होते हैं उनका अर्थ आशय समझ लिया जाता है। यह अनुभव सूझबूझ सर्तकता वाली सावधानी है कि हावभाव भाव भंगिमाओं से आशय, प्रयोजन, प्रयास के मतलब निकाल लिए जाते हैं।

अंगूठा, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका, कनिष्ठा के अपने संकेत होते हैं सेवा प्रतिशोध, अधिकार, प्रगति, स्वार्थ के अपने प्रदर्शन होते हैं। समीक्षा समानता, सरलता, सहिष्णुता, सहयोगिता के अपने गुण होते हैं। ऐच्छिक, जबरदस्ती, नकल बाध्य होकर, दूसरे के कहने के दबाव के अपने भाव प्रभावी संगठन होते हैं। अनुदारता, समझौता, प्रेम, दूरदर्शिता, सफलता के अपने प्रकार होते हैं। लेखक, पाठक, सम्पादक, प्रकाशन, आलोचक के अपने संबंध के प्रकार व विशेषता होती है। बच्चा, कवि, प्रेमी, सार्थक पागल के अपने हावभाव संकेत होते हैं। सिर, छाती, पेट, पीठ, हाथ, पैर आदि के अपने संकेत होते हैं। अध्ययन, श्रवण, निरीक्षण, चिंतन, मनन, अभ्यास, विचार व्यक्त करने के अपने तरीके होते हैं। ब्रह्म देव, भूत, पितृ और नृयज्ञ इनके आध्यात्म आशय अपने प्रकार के होते हैं। इसी प्रकार सिद्धांत, उद्देश्य, लक्ष्य, संकल्प, वृत्त के आशय से सफलता पाने के अपने भाव होते हैं। कथा, कहानी, नाटकउदाहरण लोकोक्ति, कहावत, उक्ति आदि के माध्यम भावों को व्यक्त करने के अपने आशय होते हैं। इसी प्रकार के अन्य अन्यानों के आशय का यहाँ हमने विस्तार से भले खुलासा नहीं किया, किंतु इन सभी से मन के भेदभाव, भावना, आशय, लक्ष्य, संकेत आदि भली भांति प्रकार से अपने-अपने स्वभाव भाव - विचार, अनुभव आदि के आधार पर स्पष्ट समझने में आते हैं। मनोविज्ञान, मनोविश्लेषण से देखा जाय तो अंगों के विन्यास से भाव, संकेत, भावना, स्पष्ट समझ से आती है। हो अपनी जूझ बूझ, अनुभव, ज्ञान, बौद्धिक क्षमता, जितनी क्षमता होगी वहाँ उतना ही समझ में आएगा। यह मानव मस्तिष्क की बौद्धिक, मन की सूझबूझ पर निर्भर है।

अंग विन्यास के हवाले हमने बताए। शंका प्रश्न उठता है कि किससे कैसे संकेत का क्या मतलब होता है। यह नहीं बताया। कारण कि अंगविन्यास चित्रमय वर्णन हमने नहीं किया है, फिर संकेतों के नामकरण भी संभव नहीं होता है। यदि उनके नामकरण होते तो वह हम अवश्य बताते। अंगविन्यास का वर्णन जो किया है। हावभाव से अपने अनुभव से समझा जा सकता है।

मन के भेद तो क्या व्यक्ति की स्थिति परिस्थिति समय, काल, स्थान, आदि के अनुसार पड़ने वाले प्रभावों से मन के भाव भावना उत्पन्न होती रहती है जिनकी श्रेणी बनाई जा सकती है। जिन्हें पद्धति भी कहते हैं, जिनसे सामान्य, संभावना, निश्चितता, वास्तविकता के लक्षण ज्ञान का अनुभव होता है। अर्थात शब्द, स्पर्श, रूप रस, गंध, पर विचार आता है। देखने सुनने अनुभव में लाने वाले भावों के आधार पर शुभ, अशुभ का आँकलन सोच बनता है। बुद्धि की पक्ष, विपक्ष स्थिर आशय से अनुकूल प्रतिकूल अथवा मध्यम समझे जा सकते हैं।

उपरोक्त से स्पष्ट है कि शरीर रचना को समझा जाय ईश्वरप्रदत्त विशेषताओं को माना जाय। अपनी कल्पना, विचार, सूझबूझ, ज्ञान से उसका आँकलन, अनुमान, संभव, संभावना को आँका जा सकता है। मनोभावों के अनुसार शरीर, अंगों में हलचल, प्रदर्शन संकेत उत्पन्न होकर दर्शित होते हैं। सामान्य स्थिति में सामान्य विशेष स्थिति में उसके अनुकूल अर्थात जब जैसी स्थिति परिस्थिति जो भी हो वहाँ वैसे ही आभास होता है। आभास से संभवत: प्रदर्शन के भाव समझ में आ जाय। बस इसी के लिए यह सब होता है। हमने ऊपर देखा है कि मानव ही नहीं प्रत्येक जीव थलचर, नभचर, जलचर जो भी हैं सबके अंग विन्यास के अपने-अपने प्रकार के आशय होते हैं। यहाँ हम यह भी कह सकते हैं कि अंग विन्यास के माध्यम मन के भाव भावना व्यक्त करने में सरलता, सार्थकता, वास्तविकता, अर्थ आशय का स्पष्टीकरण आदि सभी बिना बोले बताए, मूक प्रदर्शन से सामने आ जाते हैं। हो इनको समझकर

पालन करने वाला। आशय के अज्ञानी कहकर टाला भी जाता है। समझ में नहीं आया कहकर टाल कर पीछा छुड़ाया जाना या छिपाया जाना भी बहुत आसान होता है। लोकिन स्पष्ट और वास्तविकता तो यह है कि मन की बात ये अंग कहने से नहीं चूक करते हैं। रहस्य को रहस्य समझकर ही समझा जा सकता है।

१०. मन की दिशा और दशा

शरीर जन्म से लेकर मृत्यु तक प्राण शक्ति के अधीन रहता है। समय समय पर कार्डियोग्राफी के ग्राफ से उसके प्राणान्त का संकेत मिलता है, लेकिन अभी तक वह शरीर कितने समय तक रहेगा। प्राण शक्ति कब तक काम करेगी। इस अवधि को बताने वाला यंत्र सामने नहीं आया है। भविष्य में यदि सामने आता है तो संभव है जीवन जीवनी शक्ति के समय में अंतर आ सकता है। मौजूदा स्थिति में यही कहा जाता है कि प्राण शरीर का धारक है, जिसकी बागडोर का पता हृदय गति से चलता है। संचालन इंन्द्रियों के द्वारा होता है। इंन्द्रियाँ मन के अधीन काम करती है। स्पष्ट है कि शरीर की प्राणशक्ति का प्रदर्शक हृदय है तो संचालक इंन्द्रियों का स्वामी मन है। शरीर को गति इंद्रियों से मिलती है। इंन्द्रियाँ शरीर की क्रिया करती हैं मन इंन्द्रियों को आदेशित करता है यह कब तक होता है। जब तक हृदय गति बनी रहती है। हृदय की गति रुकी कि खेल समाप्त हो जाता है। मन कुछ भी नहीं कर पाता है। प्राण रहने की दशा में ही मन का शासन इंद्रियों पर काम कराने के आदेश भव का रहता है। शरीर के विभिन्न काम इंन्द्रियाँ अपने-अपने अधिकार क्षेत्र में काम करती है। अतः मन की दशा को यदि समझा जाय तो यह है कि वह शरीर संचालन में इंद्रियों का राजा है। शासक है। हृदय शरीर में प्राण प्रदर्शक हैं। मन स्वतंत्र अवश्य है किंतु शरीर उत्तरदायित्व का दबाव उसके ऊपर हमेशा बना रहता है। यह दबाव शरीर की आयु अवस्था मान से रहता है। जैसे शिशु, बालक, तरुण, युवा, अधैड़, वृद्धि आदि। आयु अवस्था के अनुकूल दबाव, कसाव, कसावट शिथिलता आदि आती रहती है। यही कारण हैं कि मन स्वतंत्र नहीं रह सकता है। बगावत नहीं करसकता ना ही डिक्टेटर बनकर इंद्रियों को अपने कर्त्तव्यनिर्वाह करने से रोक सकता है। हाँ, आत्मशक्ति साधना के माध्यम से इंद्रियों के कार्य यथावत सम्पादन में अंतर आ जाता है। ध्यान, प्राणायाम, योग समाधि, जिनके लिए संयम से रहा जाता है। जिव्हा और जननेंद्रि के ऊपर

नियंत्रण किया जा सकता है। स्वाद रस को त्यागा जाता है। स्थिरत को अपनाया जाता है। मन के केंद्रित इंद्रियों का संचालन करवाया जाता है। इससे स्पष्ट है कि शरीर के लिए प्राण और मन दोनों ही अपने-अपने प्रकार से आवश्यक है। यह उस परमात्मा की व्यवस्था है कि शरीर को प्राण शक्ति के हवाले कर संचालन का काम मन को दिया है। प्राण के विद्यमानता का संकेत हृदय को मन के आदेश पालन का इंद्रियों को काम उस परमात्म शक्ति का ही बंटवारा है। मानव अभी तक इसमें फेरबदल नहीं कर पाया है।

मन की दिशा और दशा में अवश्य अंतर उत्पन्न होता रहता है। उसके लिए प्रकृति, प्राकृतिक ऋतु मौसम होते हैं, जिनका प्रभाव शरीर पर ज्योतिष के माध्यम से गृह नक्षत्र, योग का लगाया जाता है। समय कालिक मनोभाव समय-समय पर प्रकृति प्राकृतिक दिशा धारा में मानव वृत्त उपवास, संकल्प, कार्यक्रम, योजना आदि बनाता है। काम करता है। तद्नुसार समय सामयिक स्थिति परिस्थिति में इंद्रियों को शरीर रक्षा के कार्य की अनिवार्यता में मन के तदनुसार आदेशित कर स्वेच्छाचारिता अपनाने को ढील दी जाती है। शरीर रक्षा में प्राण का उत्तरदायित्व दबाव की कसक कसावट में इंद्रियों को कार्य की अनिवार्यता के कारण मन, पर आदेशित करने का दबाव अवश्य रहता है। बस इतने ही में मन का दबाव, कसाव, तनाव आदि जो समझा जाय वह उतना रहता है। मन का कसाव, दबाव, तनाव आदि जो भी वह कब कैसा कितना कबतक होता है रहता है। समझना है जो स्थिति परिस्थिति के अनुसार समझा जाना आवश्यक भी है।

रोग, दुख, तकलीफ, घात, अघात, घटना, दुर्घटना, शोक, संताप, कष्ट जो जब आते हैं तो शरीर बेचैनी अहसास करता है। बेचैनी का दबाव, तनाव, निराशा में शरीर दशा बदल जाती है। यहाँ मन की दिशा धारा भी स्वतः बदल जाती है। शरीर दशा को अनुकूल बनाने के लिए इंद्रियों के कार्य की दिशा में मन को भी सहमत होकर चलना पड़ता है। तब ही शरीर मस्तिष्क, मन, आत्मा,

का सामंजस बैठ पाता है। आत्मा की स्थिरता, शरीर की रक्षा, मन की उस सबके काम करने करवाने की दिशा अपनाना पड़ता है। यह अनिवार्य भी है। तब ही प्राण रखा होने पर शरीर का औचित्य होता है। अन्यथा वह जैसा कि पंच तत्वों का पुतला होता है। प्राण निकलते ही जल्दी से जल्दी पंच तत्वों में विलीन किया जाता है। अन्यथा देरी होने पर उसमें सड़ांध होने लगती है। कीड़े मकोड़े उसका भक्षण करने लग जाते हैं। इस दशा को बुरा समझा जाता है। रोग दुख तकलीफ कष्ट से शरीर को राहत दिलाई जाती है। शरीर शारीरिक मन मानसिक तनाव से छुटकारा दिलाया जाता है। इस सबके लिए मन और मन आदेश पर निर्भर दसों इंद्रियों को प्राण रक्षा के लिए स्वतंत्र छोड़ा जाता है। तब ही तो पलक गिरते हैं, हाथ हिलते हैं, कदम उठते, मुँह से आवाज निकलती है, हाथ रक्षा को उठ जाते हैं। आदि-आदि तुरत - फुरत होने लगता है। यह सब स्थिति परिस्थिति की दशा की दिशा में मन के क्रिया कलाप है जो होना चाहिए। होते हैं, हो रहे हैं।

रोगों का इलाज किया जाता है। घावों पर मरहम पट्टी की जाती है। शोक में संतोष दिलाया जाता है। संकट संताप में सहायता कीजाती है। दुख में शान्ति, सांत्वना दिलाई जाती है। तनाव में स्थितिको सुधारा जाता है। बेचैनी में राहत पहुँचाई जाती है। दबाव से मुक्त किया जाता है। अभाव में पूर्ति की जाती है। आदि-आदि। दशा सुधार दिशा में सबकुछ जो जब जिसकी जितनी आवश्यकता होती है उतना सब कुछ किया जाता है।

इस प्रकार से प्राण हित में शरीर रक्षा में दशा और दिशा दोनों ही मन की बहुत रहती है। यहाँ यदि मन में निराशा आ जाय तनाव में बेहाल हो जाय, दबाव में मजबूर हो जाय तो सबका सब जहाँ का तहाँ ही धरा रह जाता है। कुछ भी न होता न कर पाते हैं, इसलिए मन की दशा और उसकी दिशा को बरकरार रूप से अनुकूल रखा जाता है। मन शक्ति संतोष निर्भयता के बिना कुछ भी होना संभव नहीं होता है। मन की इस शन्ति संतोष के लिए जन्म से

लेकर मरण मौत सभी के संस्कार संकल्प, कार्य, सभी किए जाते हैं। पूरे किए जाते हैं। मानव सामाजिक प्राणी है। वह समाज में परिवार बनकर जीवन यापन करता है। अतः उसके लिए मानव प्रयुक्त उपयुक्त सभी प्रकार से मानवीय आचार संहिता का पालन करना पड़ता है। व्यवहार निर्वाह किया जाता है। मानव भी मानवीयता का औचित्य और अनिवार्यता भी यही है। यही तो स्वर्गिक आनंद प्राणी का मार्ग कहा जाता है। इसके विरुद्ध मार्मिक यातना तामिश्रमक्रालय कष्ट का करक सागर कहा जाता है। कहने कहलाने को कुछ भी समझा समझाया जा सकता है। लेकिन उचित औचित्य, अनुकूल और अच्छा यही है कि मानव मन को दशा बिगाड़ कर नहीं रखा जाय। मन की दिशा विरुद्ध नहीं चलाया जाय। मन की दशा और दिशा तक दिशा और दशा को अनुकूल इसीलिए संतुलित रखा जाता है। सुख शान्ति सम्पन्न, रोग, शोक से मुक्त आदि सभी भाँति से घर गृहस्थी में कामना की जाती है। ईश्वर, मनुहार, शरीर खुशमाद, मन से सहमत होकर चला जाताहै। मन की दशा और दिशा दोनों ही अनुकूलता में ही यह कर्मक्षेत्र संसार स्वर्ग के आनंद देता है। नहीं तो यही संसार नार्किक यातनाओं से पीड़ित बनाए रखता है। मानव योनी का सफलता स्वर्गिक आनंद में है। यहाँ ही मानव को सुधरा हुआ पशु कहा जाता है, क्योंकि पशु पेट प्रजनन का जीवन बिताता है। मानव सार्वभौमिक जीवन व्यतीत करता है। देवता स्वर्ग में वास करते हैं। इस तथ्य की सत्यता में मानव देव तुल्य व्यवहार से धरा को स्वर्ग बनाकर रहता है। यहाँ यह कहा जाता है कि मानव पिछड़ा हुआ।देवता है, किंतु यदि वह स्थूल को सूक्ष्म में सूक्ष्म कोकारण और महाकारण में यदि ले जाय तो देवात्मा हिमालय का वह नंदनवन जो धरा का स्वर्ग है जहाँ देवता वास करते हैं उसके योग्य बन कर वहाँ का अधिकृत होता है इस कल्पना के साथ पालन में मानव मानवीयता, मनुष्यता का आध्यात्म परक जीवन यापन का पूरापूरा प्रयत्न करता है। सत्य, न्याय, दया, सहयोग, सहकार की दिशा में मानव अपनी दशा को हर संभव तरीके से कायम रखता है।

उपरोक्त विवेचन मन की दिशा दशा और दशा दिशा का स्पष्टचित्रण है। मन इसके विरुद्ध कभी नहीं जाता है। जा भी नहीं सकता है। कारण कि वह आत्मा का पूरक है, जहाँ आत्मा है वहाँ मन भी उसके अनुकूल ही होगा। इसी प्रकार आत्मा का स्वरूप प्राण है, वह उसका आज्ञाकारी अथवा यूँ कहें कि रक्षक हिफाजत कर चलने वाला इंद्रियों पर नियंत्रक मन है। अतः आत्मा, आत्मा स्वरूप प्राण इनका कार्यवाहक प्रमुख मन है। मानव में मानवीय आत्मा है तो मानव मन में वह मन भी है जो मानव को चाहिए। इसी में मानव मन की पूर्णता है।

११. तन दर्शन मन मंथन

ललक- लालसा, इच्छा- जिज्ञासा, चाह - चाहना, मोह- आकर्षण, सुख-सुविधा आदि जैसी सभी आवश्यकतायें मानव शरीर के लिए मन में विभिन्न प्रकार से उठा करती हैं। एक के बाद एक तो ठीक, सब एक साथ भी मिलती हों तो मन उसके लिए भी तैयार होने से कभी मना नहीं करेगा, लेकिन ऐसा होता कहाँ है। जन्म के लिए भी माँ के पेट में नौ महीने तक का कारावास जैसा समय बिताना पड़ता है। न जाने कितने उठक-पटक, लोट-पटक, सहन करना पड़ते हैं। कहते हैं कि इस अवस्था में ८४ (चौरासी) लाख उठक-पटक, लौट पलट हुआ करती है। लग चौरासी लाख योनियों में भ्रमण कर कठिनाइयों के बाद मानव जन्म योनी मिलती है। भले इसे सही नहीं मानें पर इतना जरूर है कि यातनायें तो भुगतना पड़ती है। जन्म होने के पूर्व तक शरीर परेशान अवश्य हो जाता है। तब कहीं उसे धरती पर जन्म मिलकर आने का अवसर मिलता है तो यहाँ भी क्या जन्म से मृत्यु तक शरीर के मन में ऐसी हलचल सदा हुआ करती है कि चैन तो क्या उस उठापटक के चिंतन मनन मंथन से छुटकारा मिलना भी कठिन हो जाता है। तमाम तरह के लोभ-लालच, फायदे, नुकसान, अच्छे-बुरे के काम करने पड़ते हैं, फिर भी दुख तकलीफों के फजीते से न मन स्वतंत्र हो जाता है न तन को उनसे छुटकारा मिल पाता है। उधर शरीर अपनी दिनचर्या में व्यस्त रहता है तो मन सोच-फिकर, पालनपूर्ति में लगा रहता है।

दिखाने को शरीर वस्त्रों से सजा - सजाया, तेल, फुलेल, क्रीमपाउडर आदि से चमचमाता, ब्यूटी पार्लर की टेकनीक अपनाए हुआ मेकअप, आँख पर चस्मा, चमक, झलक सफेद दांत, नेलपॉलिशसजे नाखून और तो और विभिन्न प्रकार के लगे टेटू, फिर पैरों की तरफ देखें तो फैशन के सेंडिल, फिर क्या देखो तो शरीर खासा सजा सजाया एक दर्शक लायक पुतला हो जाता है। इसे देख क्या मन कोई कसर रखता होगा? नहीं। वहाँ भी उसे इंद्रियाँ इच्छापूर्ति

करने के लिए अनुमति चाहने की राह में मन को चैन लेना कठिन कर देती है। कोई सी भी इन्द्रि इतना सबर रखती ही नहीं है कि वह अपनी मर्जी का काम कल कर ले। जो हो वह आज ही नहीं अभी हो जाय, इतनी जल्दी मची रहती है। भले इस जल्दबाजी में कोई गलती हो जाय, पकड़े जाय तो इसकी परवाह कौन करे वहाँ तो इन्द्री की इच्छापूर्ति प्रबल होती है। ऐसे में मन बेचारा क्या करे वह हार मान लेता है और इंद्रियों को उनके सुख भोग की अनुमति उसे देना ही पड़ती है। यह बात अलग है कि इंद्रियां अपनी सावधानी से गलतियाँ नहीं कर बची रहती है। लेकिन मन में आखिरकार यह तो उत्तरदायित्व की चिंता रहती ही है कि किसी भी इंद्रि से गलती एवं अच्छा का दोष और तारीफ का श्रेय तो मन को ही जाता है कहते हैं क्या करें मन नहीं माना तो यह सब करना पड़ा। यह अटक भटक के मंथन में मन को चैन कभी मिलती ही नहीं। उधर शहनशाही दिखाता रहता है और अधिक हुआ तो अपराधी बनकर बिना कमाई की रोटी तो खाने को मिल ही जाती है। तब मनुष्य समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी को याद करता है कि उसने यह क्या कर डाला क्या उसके मस्तिष्क में इतनी भी समझ नहीं थी कि बेईमानी करने रोकने की जवाबदारी का साहसी बनकर निभाता। मन इतना तो कमजोर नहीं था कि मानता भी नहीं। मन को मनाना तो पड़ता है। वह मान जाता मानता क्या वह गलत काम करने से किसी भी इन्द्रि को अनुमति ही नहीं देता। फिर गलती कहाँ होती। लेकिन मन पर उस इन्द्रि के लोभलालच, बहादुरी के सामने मन पर दबाव अधिक था। मन को उसकी बात माननी पड़ी। मन पर हावी हुई इन्द्रि दबाव पैदा कर मनवा लेती है। मन भी आखिरकार इन्हीं के लिए है तो वह उनकी बात मान भी लेता है। यह सब क्या है। है तो वही कि शरीर अपने प्रदर्शन के लिए मन का मंथन कर डालता है। इन्द्रियों को अपनी सेवा में लगाए रखता है। तब ही तो उस शरीर अर्थात उस व्यक्ति की वाहवाही हुआ करती है। कहा जाता है कि वह व्यक्ति कितना अच्छा है कि वह किस बुद्धि बौद्धिक मन लगाकर मन में तोलकर सब कुछ जो कुछ करता है। वह करता है। तब ही तो

उसका कारोबार इस स्तर का चल रहा है। साधन सुविधा तो अपने अपने हिसाब के सभी के पास होते हैं। लेकिन मन सबके पास नहीं होता है। वह तो होने वालों के पास ही होता है, यह हमने सामान्य चर्चा की है।

तनदर्शन, मन मंथन की विशेष विशेषता तो यह है कि जीवन भले ही सादा बीते, लेकिन वह मन का धनी अवश्य हो। एक सामान्य मानव स्वस्थ तन, स्वच्छ मन, सभ्य परिवार और समाज के साथ सभ्य राष्ट्र का प्रणेता होना चाहिए। उसका मन प्रेमी, सेवाभावी, स्तय पर आरुढ़, न्यायप्रिय, दयालू और हितैषी प्रवृत्ति की वृत्तिवाला हो फिर देखो सरल सादगी वालों को उसका चरित्र कितना महान बना देगा। क्या ऐसा जीवन मानव नहीं बिता सकता है हमारा तो यह मानना है कि अवश्य बिता सकता है। कोई कठिन नहीं है। केवल इतना अवश्य है कि मनुष्य को अपने हिसाब का संयमी, उद्यमी, उदारवादी, व्यवहारिक, दूरदर्शि के मान से अवश्य चलना पड़ता। तब ही पिछली भूल सुधार वर्तमान की प्रगतिशीलता से भविष्य का सुखदायी मार्ग अवश्य बना ही लेगा। (शरीर दर्शन योग्य बनाने के लिए मन का इस स्तर पर मंथन क्याइस प्रकार की सफलता में कोई कमी लाने से चूक करेगा? कभी नहीं। ऐसे में शरीर व्यस्त रहेगा। मन चुस्त रहेगा। वाछित कुशल कुशलता सदा पैर चूमती रहेगी। मन गौरव गाथा से फूला नहीं समाएगा।

जीवन की ललक, लालसा को देखते हैं तो उससे मन कभी भी दूर नहीं रह सकता। आखिरकार मन का इंद्रियों से गठजोड़ जैसा संबंध तो होता है। अकर्मण्यता, बुरी आदत, खानपान की शुद्धता अर्थात श्रमजीवी, नेक, स्वास्थ्यवर्धक भोजन करने वाले मानव का मन कभी भी डोल नहीं सकता है। यह भी सत्य है कि उसका मन कभी भी किसी भी इन्द्रि को निम्नस्तर का काम करने की अनुमति कभी नहीं देगा। यह विचार मनमंथन उसके स्वभाव में घर कर लेगा। जीवन सभ्य सुशील, प्रगतिशील, सुधारवादी मार्ग पर सदा चलता चला जाएगा। स्थिति परिस्थिति भले बन कर मजबूर करती है, किंतु मन अपने

आप में इतना नाजुक भी नहीं होता है कि वह तुरंत लुभावने में आ जाता हो। जीवन चरित्र का प्रभाव तो उसके ऊपर सदा असरकारक होता है। तन को सजाया जा सकता है किंतु वह भी मन के अनुकूल ही होगा। तन को लुभावना बनाने के लिए मन में उस प्रकार के विचार की दृढ़ता तो बनानी ही पड़ती है अन्यथा मन एक साथ में स्वीकार भी नहीं करेगा।

साधारण किंतु सुसभ्य, सम्पन्न किंतु सहृदयी, आत्मिक दृढ़ किंतु न्यायप्रिय प्रेमी और दयालु नेक, नेक का समर्थक किंतु सत्यारुढ़ यदि बनना चाहें तो मन से मजबूत अवश्य बनाना ही पड़ेगा। निराशा और हताशा मन आने ही न दें। प्रयत्नशीलता सफलता देती ही है। तनाव उत्पन्न होते हैं, किंतु मन की सूझबूझ से उन पर विजय पाई जा सकती है। अपने मन की कमी से दिमाकी थकान अवश्य आती है। यह भी सत्य है कि चिंता से काम में थकान जल्दी आतीहै, लेकिन उत्साह से वह मिट भी तो जाती है। अतः मन को उत्साही बनाए रखें। व्यस्त रखें। आलसी आरामतलबी नहीं बनने दें। अभावों की मार सहने लायक अर्थात सरल सादरी प्रेमी बनाए रखें। आईने में अपने उत्साही चेहरे को चाहे जब देखते रहें। बेमतलबी सोचे नहीं और मन को अच्छे विचारों से खाली कभी न होने दें। अशंका, संभावना में उलझे नहीं। अपितु उज्जवल भविष्य मान से कल्पना को मन में स्थान दें। हीन हरकत कुविचारों से लेनादेना नहीं रखें। अपनेपन की कमियाँ आती रहती हैं। ऐसा भी होता है कि हम अपने आप को उस स्थिति परिस्थिति से दूर भी नहीं पाते हों, किंतु हमारे तन, मन की मानसिकता तो सबकी समान नहीं होती है। ऐसी परिस्थिति में अपने आपको मन मंथन की दृढ़ता की दृष्टि से गिरने नहीं देना मानव मन की उत्कृष्टता को नहीं खोना चाहिए। इस प्रकार मन मंथन की क्रमबद्धता बनी रही तो आशा तो क्या विश्वासपूर्वक यह कहा जा सकता है कि जीवन सदा अनुकूल दिशा की राह पर ही चलता चला जाएगा।

आत्मा, प्राण, मस्तिष्क, इंन्द्रियाँ तन ही अंदर होती है। मन के चिंतन, मनन से उनके कार्यकलापों पर प्रभाव भी पड़ता है। अतः यह स्वस्थ तन के प्रयास स्वस्थ मन का चिंतन दोनों ही अत्यंत आवश्यक हैं। यह दोनों ही ऐसे स्वर्णिम सूत्र हैं कि हमारा जीवनपथ स्वर्णपथ गामी बन जाएगा। ये स्वर्णिम सूत्र हमारे जीवन को सफलता की मंजिल पर पहुंचा कर गौरवशाली बना देगा मन संतुष्ट होकर सफल जीवन को मान लेगा। तन दर्शनीय हो जाएगा। बस इसके अतिरिक्त और बचता ही क्या है कि जिसके लिए प्रयत्न प्रयास किए जाएं।

ज्ञानी, ध्यानी, दर्शन - दार्शनिक, धर्म-धार्मिक, सभ्य-सभ्यता, संस्कृति, सांस्कृतिक, विज्ञान वैज्ञानिक, समाज- सामाजिक, व्यवहार-व्यावहारिक, सत्य - सात्विक, न्याय-न्यायिक, उचित- औचित्य आदिआदि किसी भी दृष्टि दृष्टिकोण से देख लिया जाय कि तन स्वस्थ, निरोग, दीर्घजीवी, सभ्य सुशीलता प्रदर्शक है तो उसका मन स्वच्छ अपने आप स्वच्छ रहेगा। उसकी इंन्द्रियाँ कभी मन को डगमगाएगी नहीं। ऐसे में सभ्य जीवन व्यतीत करने का मानव हामी हो जावेगा। यह मन की बात ऐसा सत्य, बेदाग, अटूट, निष्कर्ष है। कि मन कभी कमजोर नहीं होगा। उसका मंथन हमेशा ही नए-नए सोपानों की ओर गति बनाए रखेगा। मन की हार कभी नहीं आएगी। तन जीत का प्रशंसक मन गहनता का हामी सदा बना रहेगा। तन को साधा जाता है, मन को मथा जाता है। सधा तन, मथित मन उन्नति की प्रगतिशीलता को पकड़े रहते हैं। अन्ततः यही उसका निष्कर्ष ही निकलेगा।

१२. मन मानसिक दशा निराली

हे, मनुष्य तू महाँन है! तेरी मानसिक दशा सभी प्राणियों से प्रतिभावान है। तू ज्ञानी, ध्यानी, वैज्ञानिक, दार्शनिक, धार्मिक, कलाकार संगीतकार, नृत्यकार, वाद्यकार, विवेकी, दूरदर्शी, ज्योतिषी, आध्यात्मवेत्ता, तत्वज्ञानी, नीतिकार, शासक, संगठक, भूगर्भवेत्ता, खगोलशास्त्री, लेखक, कवि, साहित्यकार, सामाजिक आदि-आदि प्रतिभावों का धनी है। यह तेरी वृत्ति प्रवृत्ति काही परिणाम है कि योगी तपस्वी, उपासक, साधक, उद्यमी, साहसी, पराक्रमी, दयालु, श्रद्धालु, निर्भय, जागरुक, प्रेमी, धीर, वीर, बहादुर, कामी, अहंकारी, क्रोधी,, स्वार्थी, झूठा, वीत बैरागी, भावुक, मंगता, शक्तिशाली, अनुभवी, चित्रकार, गणितज्ञ, ज्योतिषी और जितना जो कहें वह सभी प्रकार से विभूतिवान, प्रतिभावान, धनी, सम्पन्न, संतोषी है। यह सब मानवीय मस्तिष्क होने का ही परिणाम है। अपनी बौद्धिक प्रतिभा को व्यापार, वाणिज्य, कृषि वनस्पतिविज्ञान, जीव विज्ञान, प्राणीविज्ञान, मानव विज्ञान, इतिहास, भूगोल, भूगर्भविज्ञान, अन्तरिक्ष विज्ञान, अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र, नागरिक शास्त्र, मनोविज्ञान, तर्कशास्त्र, वादशास्त्र, नीति शास्त्र, तत्वशास्त्र, दर्शनशास्त्र, बागवानी, पाकविज्ञान, चिकित्सा, चिकित्साशास्त्र, नाड़ीशास्त्र, सामुद्रिक विज्ञान, समाजशास्त्र, पक्षी शास्त्र, वास्तु शास्त्र, अपराध शास्त्र आदि आदि विषय विशेष ज्ञान, कला, संकाय, धर्म दर्शन, विज्ञान कृषि, खनिज, आदि आदि के अध्ययन अध्यापन, सुविधा के निमित्त विषय शास्त्र उनकी शाखा उपशाखाओं की खोज खबर, ज्ञान, प्रतिभा, विकास सुविधाओं के लिए व्यवस्था कर ली है। प्राणियों में ऐसा कोई प्राणी नहीं है कि जिसमें जिसने यह सब किया हो। मानव अपनी और भी ऐसी विशेषतायें हैं जो अन्य प्राणियों में नहीं पाई जाती है। मानव नेशरीर भार दो पैरों पर संभाल कर हाथ को फ्री कर लिया है। हाथ की उंगलियों के पोरवे होने से अच्छी पकड़ बनाने वाला है। वाणी से शब्द (उच्चारण), बुद्धि, बौद्धिक, मस्तिष्क का सेरेब्रम भाग, सामाजिक

भावना, वान यह ऐसी विशेषतायें हैं जो किसी भी प्राणी में मानव की तुलना में कुछ नहीं है। उसने अपने प्रतिभावान मस्तिष्क से रोटी, कपड़ा, मकान, रक्षा, सुरक्षा के साधन, सुविधाओं के को जुटा लिया है। यहाँ तक कि अन्य प्राणियों को अपनी सेवा में तक ले लिया है। जिससे उसका जीवन सुखी, वैभवी, निर्वाह बहुत ही सुविधा जनक हो गया है। मानव की यह दशा अपने आप में बहुत ही निराली और एकल प्रकृति प्राकृतिक ईश्वरीय देन है।

मानव की मन मानसिक प्रतिभा की ही बलिहारी है कि वह शरीर के नकली अंग जिनका शल्यक्रिया के द्वारा शरीर में स्थापित किया जा सकता है। रोबोट कृत्रिम मानव पशु-पक्षी जिन्हें विद्युत करंट से सक्रिय बनाकर काम करा लिया जा सकता है। थल, जल, नभ यात्रा के साधनों का अविष्कार कर लिया है। विभिन्न प्रकार की मसीनों का निर्माण कर असंभव कार्य को संभव बना लिया है। केवल जन्म मृत्यु की प्रतिभा प्राप्ती ही शेष बची है।

उपरोक्त सभी विशेष विशेषताओं के कारण मानव को सर्वश्रेष्ठ मानव प्राणी कहा गया है। मानव महान तो है ही अतिमहान भी है। जिसकी बराबरी धरती पर कोई भी प्राणी नहीं कर सकता है। वर्तमान मानव अंतरिक्ष की खोज और ब्रह्माण्ड से परिचय में भी सफल होता जा रहा है। संभव है है अगले वर्षों वह सौर मंडल के अन्य ग्रहों तक जाने में भी सफल होने के आसार तो लग रहे हैं। वहाँ वह अपनी समष्टि की भी स्थापना कर सकता है। शक्ति सामर्थ्य विष विषेला आदि दृष्टि से मानव अन्य प्राणियों से कमजोर है। लेकिन बुद्धि बौद्धिक वह तेज है। जिससे उसने शक्तिशाली,हाथी, खूंखार शेर, विषेला सर्प, गोयरा, बिच्छु जैसे जीवों पर भी कब्जा कर अपनी सेवा में ले लिया है। वे मानव के सामने पूँछ हिलाते रह जाते हैं। तंत्र मंत्र झाड़ा फूँकी ओघड़विद्या, तांत्रिकी, सात्विकी, साधनाओं में सफल है। वह परकाया प्रवेश का जानकार है। उसके शरीर में विद्युत के ऐसे चमत्कार हैं कि खाद्य सामग्री को जुटाना, शरीर को साधे रखना भूख प्यास आदि जैसी जिज्ञासा उत्पन्न उसका समाधान वह स्वयं करने

में सक्षम है। शरीर के अंदर ऐसे अवशिष्ट पदार्थ तत्व जिनकी शरीर को आवश्यकता नहीं है उन्हें निकाल बाहर करना, पेट प्रजनन की क्रिया करना आदि आदि सभी ईश्वर प्रदत्त विशेषतायें उसे प्राप्त हैं।

विशेष विशेषता तो यह है कि असम्भव को सम्भव बनाने की प्रतिभायें विभूति जैसी विशेषतायें मानव में भली भांति पाई जाती है, विषय विशेष कलेवर को संक्षिप्त कर केवल हमने संकेतों को स्थान दिया है। विस्तार तो क्या कुछेक का उल्लेख भी नहीं कर पाए हैं मानव के लिए यह अति गौरव की बात है कि उपासना साधनाओं के द्वारा मानव ने आध्यात्म विद्या के कई क्षेत्रों असाधारण सफलता पा ली है। वह केवल ईश्वर नहीं बन पाया है। जन्म मृत्यु पर अपना अधिकार नहीं जमा पाया है। इसके अलावा तो वह हर क्षेत्र में सफल हो गया है। होता ही जा रहा है और तो क्या कहा जाय मानव को ईश्वरीय सत्ता के बाद का स्थान तो उसे प्राप्त हो ही गया कहा जा सकता है।

मानव के लिए यह कम गौरव की बात नहीं है कि वह उसे परमात्मा के बाद अपना ही अस्तित्व रखता है। वह ईश्वर का राजकुमार बन गया है। धरती पर वह उसका अवतारी है। मानव मानव के द्वारा संगठित, व्यवस्थित, शासक, प्रशासन, सुरक्षित रक्षित तो हो ही गया है। साथ ही मानव मानव से भी भयभीत होगया है, तब ही तो उसने बम जैसे मारण अस्त्र शास्त्रों का प्रयोग कर लिया है। राष्ट्रीय अंतरराष्ट्रीय संधि समझौता का सुख सुविधाओं के आदान प्रदान से सारी पृथ्वी का मानव अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में समर्थ हो चुका है। अच्छाइयों के साथ मानव में विकास के कारण कई ऐसी बुराईयाँ भी पैदा हो गई है कि वह मानव मानव से राष्ट्रीय स्तर पर से लेकर व्यक्तिगत रूप से भी एक दूसरे का दुश्मन संहारक भी हो गया है, जिसके छुटपुट उदाहरण भी सामने आते रहे हैं।

मानव मानसकिता यदि मानव के पास नहीं होती तो मानव भी दो पैर, दो हाथ वाला निरा प्राणी (पशु) ही बनकर रह जाता है, लेकिन मानसिक क्षमता ही का कारण है कि मानव सबसे निराला होकर सृष्टि पर मालिक का श्रेयधारी बन गया है। यदि मानव के पास मानसिक क्षमता बुद्धि ज्ञान, नहीं होता तो वह जो आज है कभी नहीं बन पाता। यह अटल अटूट सत्य है मानव सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। रहेगा भी। वह महान है। अतिमहान है। उसके समान सृष्टि पर कोई दूसरा नहीं है। अदृश्य ईश्वर का वह प्रत्यक्ष अवतारी दूत उत्तराधिकारी आदि सब कुछ कहा जाय तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। वह राष्ट्रीय अंतरराष्ट्रीय संगठक है। संगठित है। सक्षम है।

मानव के पास अपना स्वयं का मानव मन है। जहाँ इच्छा जिज्ञासा उत्पन्न होती रहती है। इस इच्छा जिज्ञासा ही के होते उसने सृष्टि के समानान्तर समष्टि का रचना कर सारी की सारी सृष्टी को श्रृंगारित कर लिया है। भवन निर्माण कला के ज्ञान से सृष्टि पर ग्राम नगर बसा लिए हैं। बड़ी बड़ी अट्टालिकायें बहु मंजिला भवनों का निर्माण कर घर के क्षेत्रफल से कहीं ज्यादा क्षेत्रफल का उपयोग करने में सफल हो गया है। खनिजों की खोज कर उन्हें पृथ्वी केअंदर से निकाल कर मशीनों के जरिये शुद्ध कर बड़ी-बड़ी मशीनों का निर्माण कर लिया है। जिससे जनशक्ति से कहीं अधिक शक्ति के काम करवाए जाकर अनेकों उपयोगी वस्तुओं का निर्माण कर लिया है। जो मानव के जीवन में उपयोग की दृष्टि से सभी काम करती है थल, जल, नभ में तीव्र चलने वाले साधन रेल, मोटर, जलपोत, जहाज, हवाई जहाज, हेलीकाप्टर, रॉकेट आदि बना लिए हैं। जिनसे जिससे थल, जल, नभ अंतरिक्ष में यात्रायें करने में सफल होता ही जा रहा है। जिससे दूरी को कम किर लिया गया है। आवागमन अति सुगम हो गया है। मानव में अपने उपयोग मौसम रक्षा के लिए ऐसे उपकरण साधनों को बना लिया है कि वह हर मौसम में अपने आपको सुरक्षित रख लेता है। एयर कंडीशन इसी प्रकार की सुविधा है। मानव ने मौसम नापने के ऐसे यंत्र

बना लिए हैं कि जिनके द्वारा मौसम विज्ञान का संकेत उसे पहिले से ही हो जाता है। चिकित्सा और शल्यक्रिया में असाधारण सफलता प्राप्त कर ली है। दिशा सूचक, मौसम सूचक, मृत्यु सूचक, दूरी सूचक, असली-नकली की परख सूचना आदि आदि सूचकयंत्रों के माध्यम से जीवन काफी सुरक्षित हो गया है। जन्म के पूर्व भ्रूण परीक्षण आसन हो गया है।

मानव को अपनी बौद्धिक मानसिक प्रतिभा ऐसी अभी तक नहीं मिल पाई है कि जिसके उपयोग से वह जीवनी शक्ति को नाप सके कि कितने वर्षों या समय का जीवन रहेगा। हृदय गति का कार्डियोग्राफी ग्राफ की लहरियों से मरने की रक्षा, आई.सी. (इन्सेन्टिव केयर) में रख कर यथा जीवित रखने (कोमा में) रखने के तरीके से कुछ समय अवश्य निकाल देता है, किंतु मौत से नहीं बचा पाया है। ना ही प्राण डालने में सफल हो पाया है। अर्थात जन्म मृत्यु पर उसका (ईश्वर) अपना अधिकार कायम है। जन्म मृत्यु पर विजय पाने केमान से मानव असहाय होकर चुप साध गया है। ईश्वर सर्वसत्तावान है, कहकर संतुष्ट हो लिया है। मानव शल्य क्रिया कक्ष में अवश्य प्रयत्न कर प्राण रक्षा के लिए कोशिश करता है, किंतु मौत से बचने की न तो दवा बना पाया है ना ही प्राण रक्षा कर पाया है।

उपरोक्त सांकेतिक विवरण से यह कहा जा सकता है कि मानव भी मानव की मानसिक दशा वास्तव में बड़ी निराली है। इस निरालेपन का ही परिणाम है कि मानव की मानसिक प्रतिभा केवल मानव ही को प्राप्त है। अन्य प्राणी इस प्रतिभा से वंचित हैं। यही कारण है कि मानव अपनी योग्यता, प्रतिभा, क्षमता के प्रभाव से अपने मन को ऐसा अग्रेशित बना कर इंद्रियों को कला कृति अपनाने को आदेशित कर देता है कि वह मन मानसिक क्रिया से सफल सिद्ध होता ही जा रहा है। सफल होता भी रहेगा। मानव मानस मानसिक निरालेपन की बलिहारी है।

१३. मन धारे सब सुधरे

मानव ने होनी नहीं होनी को करने सफल बनाने में कोई ढील ढिलाई, कमी-बेसी, कोर-कसर, भूल-भुलावा, गलती- त्रुटि कुछ भी शेष नहीं छोड़ा है। वह ऐसा इस प्रकार पीछे पड़ा हुआ है कि जो नहीं हो पा रहा है उसे वह कितने ज़ल्दी कर सफलता पा ले। फिर आगे की वह सोचे। उसका यह बस चल नहीं रहा है कि प्रकृति-प्राकृतिक हलचल को वह अपने वश में क्यों नहीं कर पा रहा है। उसने अपनी धारणा तो ऐसी बना रखी है कि वह असंभव को संभव बना कर ही छोड़ेगा। वह विषय विशेषज्ञ होता ही चला जा रहा है। नये-नये आविष्कार कर नये-नये करतब करता ही चला जा रहा है। उसने यह संकल्प ही कर लिया है कि वह जहाँ नहीं जा पाया है वहाँ पर जाकर ही पीछे छोड़ेगा। जहाँ वह नहीं बस पाया है, वहाँ वह अपनी बस्ती बना कर ही मानेगा। सूर्य, चंद्र में ऐसी कौन सी क्षमता है जिससे कि वे सृष्टि पर अपना अनवरत आते जाते प्रभाव जमाए हुये हैं। उसे मानव क्यों नहीं अपना पा रहा है। जब मानव के पास ईश्वर प्रदत्त प्राण शक्ति है तो वह उस प्राण शक्ति को अपने अनुसार क्यों नहीं चला पा रहा है। उद्देश्य लक्ष्य अभी तक सब प्रकार के बना लिये लेकिन उनमें उसे सफलता बराबर नहीं मिल पाई है। जो वह सफलता पाने के लिए बेसब्री से बराबर जुटा हुआ है। वह सफल होकर ही रहेगा। ऐसा उसका मानना है। यह उसकी प्रतिज्ञा है। प्रण है, वह सफल होकर ही रहेगा। चाहे वह कितने ही जीवन को इसके करने में खपा दे। उसे यह अच्छी तरह मालूम हो चुका है कि उसके पास मानव मन ऐसा है कि जो किसी के भी पास नहीं है। मन के ऊपर उसका अधिकार जमता ही जा रहा है। तब ही तो मन मर्जी से इंद्रियों को अपनीइच्छा के काम वह करवाता रहता है। वह अभी तक यह समझ नहीं पाया है कि मन को वह वश में क्यों नहीं कर पा रहा है। इतना।तो वह सफल हो चुका है कि मन में वह जो धारता है वह कर लेता है। फिर ऐसी कौन सी कमी रह जाती है जिससे वह उपरोक्त वर्णित नहीं कर पा रहा है। यह तो

वह मान चुका है कि वह जो मन में धार लेता है वह कर भी लेता है। कमी बैसी तो रहती आई है। बह यह भी जानता है कि मन के धारे ही सब प्रकार की सफलता उसे मिलेगी। इसलिए वह मन के उद्देश्य लक्ष्य संकल्प, प्रण, प्रतिक्षा, वृत, धारणा की योजना घोष घोषणा करता ही रहता है। सहयोग सहायता के लिए नये-नये अनुभवियों को अपने सहयोगी साथी भी वह बना रहा है। लेकिन मूल चेतन संकल्प की बात के इर्द-गिर्द ही वह काम करा रहा है। अर्थात सहायता से खुद असली को करने की मनोवृत्ति का श्रेय स्वयं ही लेना चाहता है। आदि आदि सब तरह से मानव जुटा हुआ है। उसकी धारणा यह परिपक्व है कि मन में धारण जो कर लिया है उसे सफल बना लिया तो सबका सब ठीक हो जायेगा। किसी प्रकार की कमी नहीं रहेगी। ना ही करने से कुछ शेष रह पायेगा मानव पीछे तो पड़ा हुआ है, लेकिन लक्ष्य तक वह पहुँच नहीं पा रहा है। उसने मन में यह धारण कर रखा है कि धारणा की अवधारणा उसे अवश्य सफल बना देगी। बस इतना ही है कि वह कब तक सफल नहीं हो पाता है। वह यह जानता है कि करते रहने पर ही उसे एक समय ऐसा आएगा कि वह सफल होकर ही रहेगा। इसीलिए न वह ढील ढिलाई कर रहा है ना ही हार मान कर चुप होना चाहता है। वह यह जानता है कि करने वाले को कठिनाइयाँ आती है। परेशानियाँ भयंकर से भयंकर उठाना पड़ती है, लेकिन कुछ न कुछ परिणाम अवश्य निकलते ही हैं और नहीं तो अपनी गलतियों काअहसास तो होता ही है। जिससे वह अपनी गलती में सुधार कर ले तो फिर सही होना ही है। जब कुछ सही होता है तो अधिक सही भी उसे थोड़े के बाद ज्यादा होता ही है। ठीक ही वह साहस नहीं हारा है। वह यह जानता है कि जो सफलतायें उसे या उससे पहिले करने वालों को मिली है वह सतत प्रयत्न प्रयास का ही फल है। यदि वे अनवरत जुटे नहीं रहते तो आज जो वह सब तो क्या थोड़ा भी नहीं होता। जो हुआ है वह क्या कम है। इतना सब कैसे क्या कब से हो रहा है। जानना मानना बुरा नहीं है, लेकिन जानकर मानकर भुलाया नहीं जाय, बल्कि उससे यह सीख सीखा जाय कि अब इस क्रम में हमारी ओर से ऐसी

कोई कमी न आ जाय कि क्रम ढीला पड़ जाय। रुक जाय। यदि ऐसा हुआ तो हम हमारे इस जनरेशन को दोषी बनना पड़ेगा। क्या कलंक इस जनरेशन पर ही लगेगा हम कलंक के भागीदार क्यों बने। बस इतना तो होगा कि हमारे समय की जनरेशन करते करते खपेगी, लेकिन प्रयास प्रयत्न करने वाले तो हम कहे जावेंगे। सुस्त, आलसी, नालायक, मंदबुद्धि जैसी धारणा के शिकार तो नहीं बनेंगे। हम यह अच्छी तरह जानते हैं कि और यह अच्छी बात भी है कि हम जो कर रहे हैं उससे क्रम टूट नहीं रहा है। यह निश्चित है कि क्रम चलता रहा तो इससे अगला क्रम जुड़ कर रहेगा। जंजीर में एक कड़ी भी निकाल दी जाय तो जंजीर टूट जाती है। लम्बई टुकड़ों में बट जाती है। ऐसा हम नहीं होने देना चाहते हैं। हमारे पहिले जिन्होंने जो मन धारकर क्रम चालू किया है उसे हम रुकने नहीं देंगे। हम उन्हीं के विश्वास का अनुसरण करते यह अपना विश्वास भी बना चुके हैं कि मन में जो कर लिया जाय सफल बना लिया जाय तो फिर हम तो क्या सबका सब सुधरने में आसान हो जावेगा। देर नहीं लगेगी। जब हमारे करने से सब सुधरने वाला है तो इससे अच्छा तो कुछ हो,भी नहीं सकता है। ठीक है। हम अपनी धारणा को और मजबूत बनाते हैं। जो मन में धारा है उसे और अच्छे तरह से धार लेते हैं। तो फिर सब सुधरने में भी उतनी ही मजबूती आ जावेगी।

उपरोक्त विवेचन से हमने अधिक से अधिक लगभग सभी दृष्टिकोण से यह देख लिया कि मन में धार लिए जाने पर ही सब का सब सुधर सकता है। तो हम ऐसा निश्चय और दृढ़ता के साथ करते हैं- अब हम अपने आप में इतना बदलाव करते हैं कि समय के साथ हो जाय। वर्तमान समय यह कहता है कि हमारे संकल्प, प्रण, प्रतिज्ञा, उद्देश्य, लक्ष्य सब के सब पुराने हो गये हैं। उन्हें संशोधित करें। पुननिरीक्षण कर फिर से उन्हें नया रूप दें। नये सिरे से फिर बनायें। जो रीति-रिवाज, परंपरा, प्रथा, रुढ़ियाँ चली चल रही है उन्हें छोड़े सुधार करें।

१. हम अपने आपको योग्य बनाने के लिए नई-नई टेक्नीक को सीखे। अपनाये, ज्ञान, वृद्धि करने के लिए जीवन जीने की बिताई उम्र से कोई मतलब नहीं है। अब जितना जीना है उतने में तो बहुत कुछ हो सकता है। शीखा जाय। अपनाया जाय धारणा बनाई जाय तो ही हम अग्रिम ज्ञान को पकड़ पायेंगे। नहीं तो पिछड़ जावेंगे। आने वाली पीढ़ी को पीछे वालों से जो लिंक प्रेरणा मिलती है। मिलना है वह नहीं मिल पायगी। आने वाली पीढ़ी पिछड़ी की पिछड़ी पिछड़ती चली जायगी। अतः वर्तमान के अनुकूल अपने आपको योग्य बनायें।

२. हम अपने अंध विश्वास को दूर करें। नॉलेज सबका सब लिया जाय। केवल दुरुपयोग से बचें। ज्ञान जानकारी होने पर तो उसके दुष्यपरिणामों से बचा जाता है।

३. अपने अभाव जो हैं उन्हें दूर करें। हम सम्पन्न नहीं है, लेकिन विपन्न तो हैं भी नहीं। फिर हमारे पास जो है उसी से अपने,तौर तरीको में बदलाव लावें। ऐसा तो कोई भी काम नहीं होता है। कि पूंजी लगाने पर लाभ होता ही नहीं हो। गुजारे की बात आती है तो जरूरतों को कम करो। नई को पैदा होने से रोको। जो है उतने में गुजारा करो। बचत ना भी हो, तो गुजारे में घाटा तो नहीं हो यह ध्यान तो रखना ही पड़ेगा।

४. हमारी क्षमता शक्ति कम पड़ती है तो उसमें वृद्धि के प्रयास करें। प्रयास से अधिक बुद्धि न भी हो तो कुछ तो भी वृद्धि होगी ही सही। संतोष करना तो सीखें अधीरता छोड़ें।

५. दूसरों को हम अपना बनायें। हम दूसरों के बने। तो ही एक रुपता आएगी। हमारी अपनी अकेले की क्षमता से अब काम नहीं चलेगा। साथ होना पड़ेगा। साथ लेना पड़ेगा। जब हमको लाभ होगा तो दूसरे को भी होगा। दूसरे

को होगा तो हमको भी होगा। परपस्पर दोनों को ही बल मिलेगा। एक ओर एक दो होता है। इसी प्रकार दो से दो चार तो होगा ही। बल मिलेगा।

६. हम अपनी ही कमी को दूर करें। दूसरे में जिसमें अच्छाई हो उससे सीखें। अपनायें। अपनी कॉंणी आँखे से देखें किंतु दो आँखे वाले के साथ हो जाय। ऐसा नहीं सोचे कि वह भी एक आँख का हो जाएगा तो हम एक और एक दो आँख के हो जावेंगे। सिद्धांत गलत है। सही सोचें, करे, अपनाएं गलती सुधारें।

उपरोक्त का आशय है कि अपने मनोभावों को ठीक करें। अपना मार्ग चुनें। लक्ष्य की ओर अपने प्रयास करें। मन में जो धारा है उसे पूरा करने के प्रयास करें। ढील ढिलाई आलस्य और कल पर छोड़ना ठीक नहीं है। कल की बात मन सोचेगा कि उसे कल क्या करना है। मन में की आज की धारणा आज और कल की कल पूरी की जाय। इसी में सार है। मन में धार लिया इससे भी काम चलने वाला नहीं है। मन में जो धारा है उसे करने पर ही तो सब,तरह का सुधार होगा। इसलिए मन में अवश्य धारा जाय। अब यह समझ में जाना चाहिए कि हम अपनी धारणा को लौट पलट फेर बदल कर देखें। उसे सुधार कर सुधरे तरीके से धारण करें तो सब ठीक हो जावेगा। बिना अपने धारण किये धारे हुए सब सुधरेंगे यह हमारी भूल है। भूल दूर करना होगी। हमारे अपने सुधरे ही सब सुधरेगा। सुधरता है। बस यही धारणा है। मन धारे सब सुधरे चरितार्थ होगा।

--- * ---* ---* ---

१४. प्रतिभा ! मन उत्साही

प्रतिभा उभर कर उत्साही रहती है कि उसका अधिकाधिक उपयोग किया जाय। फिर भी उसका उपयोग नहीं किया जाय तो मन धिक्कारेगा। प्रतिभा न छिपती हैं और ना ही छिपाकर रखी जा सकती है। सदा प्रकट होती रहती है। फिर भी उसे नहीं समझा जाय तो यह कमी समझने वालों की ही मानी जावेगी। खेल खिलाड़ी, कलाकार, पहलवान, नेता, अभिनेता, साहित्यकार, समाजसेवी आदि सभी प्रतिभावान अर्थात विशेष गुण सम्पन्न होते हैं। समय सदा परिवर्तन चाहता है। प्रतिभायें जीवन्त प्राणवान होती है। जो परिवर्तन के लिए उत्साही रहती है। उनसे सदा समाज को अपेक्षाएँ रहती हैं। व्यक्तिशः उनके निखार में आशा की जाती है। तब ही तो प्रतिभावान अपनी प्रतिभा के विकास के लिए लालायित प्रयत्नशील, आशावान रहते हुए प्रयत्नशील बने रहते हैं। प्रतिभावान कभी चुप नहीं बैठ सकता है। दूसरी ओर समय उसकी प्रतिक्षा, अपेक्षा दोनों ही करता है।

मानव सृष्टि का अग्रगण्य प्राणी है। उसकी सभ्यता और संस्कृति ब्रह्माण्डीय संचालन को प्रभावित करती है। आध्यात्म तंत्र सारे के सारे प्राणी जगत को प्रभावित करता है। ज्ञान, विज्ञान, दर्शन, धर्म, कला, विद्या, अर्थ, सत्ता यह सभी तंत्र मानवीय विभूतियाँ अर्थात विशेष गुण हैं, जिन्हें व्यक्ति की प्रतिभा के रूप में जाना जाता है। जिनका प्रगटीकरण मानवीय सभ्यता संस्कृति का मूल होता है। मानव मन इन विभूति अर्थात विशेष गुणों को व्यक्ति की क्षमता के अनुसार प्रकट करता उत्साही बना रहता है। पर्यावरण बनता है।

मानव मन गुण और विशेषताएँ इच्छा, जिज्ञासा, मस्तिष्क को देता है। मस्तिष्क बौद्धिकता से इस गुण विशेषताओं में विशेषविशेषताओं चिंतन, मनन की प्रतिभा को अग्रसर करते हुए नवीनता में आयामों को उत्पन्न करता है। परिष्कार कर विचारों को देता है। उधर मन में उत्साह बढ़ता है। हौसला पस्त

निराशा में सक्रियता आती है। मन उत्साह के स्वतंत्रता को सम्हाले रहता है। हौंसला पस्त नहीं होने देता है। मन सोच विचार को उत्साहित करता है। व्यक्ति का उत्साह बढ़ता है। उत्साह प्रगति तथा विकास का कारण बनता है। समाज में विभूतियाँ सामने आने लगती है। अपने अपने पक्ष में काम करने लगती है। यहाँ हमारा सुझाव यह भी है कि विभूतिवानों को अधिकाधिक सक्रिय होना भी चाहिए। अपने क्रिया पक्ष सक्रियता की ओर गति देना चाहिए। प्राय: यह कहते हुए देखा जाता है कि क्या करें हम यह भी कर सकते हैं। वह भी कर सकते हैं। यह सब ठीक है, लेकिन हमारा तो मन अब होता नहीं है। कारण में कुछ भी नहीं बताया जाता है। ऐसे में प्राय: यह देखा जाता है कि या तो फील्ड नहीं मिलता है, या अपने वाले निराशा पैदा करते रहते हैं। या झिझक भी पैदा होती है, या उत्साह तो है लेकिन साहस नहीं बंधता है आदि - आदि कारण हो सकते हैं।

मन कारणों की खोजबीन करता है। अगली पीढ़ी में निराशाजनककारण उत्पन्न ही नहीं हो विचार बनाता है। नई बौध अर्थात बच्चों को विद्या के अच्छे से अच्छे प्रतिमानों की प्राप्ति की ओर संस्थाओं का निर्माण गठन कर सक्रिय भी होता है। पीढ़ी दर पीढ़ी विचार, गुण विशेषताओं में अंतर भी दिखने लगता है। मन संतुष्ट होता है। अनुकूलता पाकर उत्साही भी होता है।

मानवीय जीवन में जन्म लेकर मनुष्य योग्य बनने के प्रयास करता है। घर परिवार बसाता है। धंधा व्यवसाय के साधन जुटाता है। अपने अर्थतंत्र को विकसित करता है। संतानोत्पादन, संतान के उन्नति के आयाम जुटाता है। विभिन्न प्रकार की संस्थाओं से संबंधजोड़ता है। मन उत्साही बना रहता है। शरीर अवस्था मानसे ढलने लगता है, फिर एक समय आता है। शरीर शान्त हो जाता है। व्यक्ति यह सब होते हुए देखता है। अपने जीवन में सावधानी बरतता है। सावधानी में आगे भी बढ़ जाता है। पिछड़ भी जाता है। यह उसकी प्रतिभा

पर ही निर्भर करता है। प्रकृति का विधान तो प्रबल ही सही जितना समय निर्धारित होता है उतना समय मिलता है। जब जितना वह कर सकता है जो समय मिलता है उतने वह (मानव या यूँ कहें कि विभूतिवान) उतना करता भी है। यह सब होता है। होना भी चाहिए। इस सबमे समय, काल, स्थिति, परिस्थिति, साधन, सुविधा आदि ऐसे फेक्टर्स होते हैं कि उत्साही मन को सीमान्त बनाए रखते हैं, लेकिन मन संतुष्ट होने वाला भी नहीं होता है। वह अग्रगण्य से अग्रगण्य और उससे भी अग्रगण्य होने के भाव, भावना, विचार उत्पन्न करता रहता है। लक्ष्य पर पहुँचने के प्रयास होते रहते हैं। इस स्वाभाविक गति से और आगे बढ़ने बढ़ाने की लालसा में और भी विभिन्न तौर तरीके आयाम मानव अपनाता है जो कहने कहलाने को अच्छे, बुरे भी कहे जाते हैं। होते भी हैं। लेकिन अपनाने वाला उन्हें अपने अनुकूल मानकर करता है। उसका मन भले यह जानता है कि यह जो किया जा रहा है उसमें कुछ गलत भी है। लेकिन परिस्थितिवश किया है। करना पड़ता है। आशय अपने स्थान पर सही भी होता है। मन सहमत भी हो जाता है, लेकिन जो गलत किया गलत तरीका अपनाया है इसकी वास्तविकता मन जानता है। मन यह भी चाहता है कि अब गलत नहीं करना है। प्रयत्न प्रयास करता है। सुधार की ओर अग्रसर भी होता है यह क्रम चलता रहता है।

व्यक्ति जितना बस में होता है या बस का होता है उतना सब कुछ करता है। इसके बाहर ऐसा भी होता है कि बस के बाहर काभी किया जाता है। सफलता असफलता का जोड़ा होता है। सफलता असफलता के उतार-चढ़ाव भी आया करते है। मन उत्साही होता है। वह कभी हार को पसंद भी नहीं करता है। तथा बरदास्त भी नहीं करता है। उत्साही बना ही रहता है।

उपरोक्त विवरण में हमने देखा है कि मानव में जो प्रतिमायें विशेषतायें होती हैं वे समाज विभूतियाँ होती है। समाज उन पर गौरव करता है। उनके अनुसार मन सदा उत्साही रहता है। प्रतिभा के विकास में वह सदा अच्छे से

अच्छे विचार उत्पन्न करता रहता है। मस्तिष्क को प्रेरित करता है। मस्तिष्क मन की जिज्ञासा में बौद्धिक क्षमता उत्पन्न करता रहता है। असाधारण सफलताओं की ओर मन में उत्साह उत्पन्न की जिज्ञासा में वृद्धि होने लगती है। खेल खिलाड़ी, पहलवान, कलाकार, विद्वान, वैज्ञानिक, दार्शनिक आदि आदि जो भी प्रतिभावान होते हैं उनके अपने नियम सिद्धांत सीमायें होती हैं, जिनके अंदर विकास की अन्तर्क्रियायें काम करती हैं। अतीन्द्रिय क्षमतावान प्रतिभा विकास में उसी मान से अग्रसर होते चले जाते हैं। उत्साह को देख यह लगता है कि क्या ऐसा ही सबमें होता है। हाँ, अपने अपने मन से सबमें होता है। जिसे अपनी अपनी क्षमता ओर स्तर से समझा जाता है।

प्रतिभावान विभूतिवान भीड़ में अलग ही चमकते हैं। उनका अपना वह व्यक्तित्व होता है। उनकी मौलिक मौलिकता कार्यकुशलता से मित्र-शत्रु सभी प्रभावित होते हैं। सही कहा जाय तो प्रतिभावान या यों कहें कि विभूतिवान समाज में गाडी के एंजिन की भाँति लगते हैं। समुदाय में उनका सामाजिक स्तरण उस प्रतिभा का द्योतक बनकर गौरवान्वित करता है। विभिन्न प्रकार से उन प्रतिभाओं को सम्मानित प्रशंसित, अभिवन्दित भी किया जाता है। विशेष स्थान देकर सत्ता पक्ष उनसे अपेक्षा करता है कि शासन प्रशासन केकार्य में सम्मिलित विभागों के माध्यम से सार्वजनिक लाभ के अवसर लाये जायें। समाज, समुदाय, सम्प्रदाय में उन्हें अग्रसर कर प्रेरणा का श्रोत बनाया जाता है। उनके सुयोग्य निर्देशन में प्रगति के कदम बढ़ाये जाते हैं। उनकी प्रशंसा में विभिन्न आयोजन आयोजित किये जाते हैं। इतिहास के पन्नों में उनका उल्लेख किया जाता है। प्रत्यक्ष प्रेरणाश्रोत वे बने रहे, उनके स्मारक बनाए जाते हैं। संस्थाओं का नामकरण किया जाता है। आदि आदि।

महान जागरण के लिए विभूतिवान प्रतिभावान सहायक होते हैं। उनमें सुधार लाने की सामर्थ्य होती है। क्योंकि उनके भीतर बैठा प्राण तत्व शाश्वत होता है जो प्रेरित करता है सनातनी प्रवृत्ति को बनाए रखता है। दूसरे शब्दों में

यह भी कहा जा सकता है कि नवसृजन के संकल्प में इतना भाव भावना, प्रदान सहयोग होता है जो मन को उत्साहित करता है। वे युग मनीषा के पुरोधा होते हैं। इतिहास में नई रचना के अध्यायों को आरंभ करवाते हैं। नवोन्मेष को गौरवशाली बनाते हैं। नियोजित करते हैं। आस्था संकट को दूर करते हैं। जीवट बनने के भाव पैदा करते हैं। समाज राष्ट्र की जीवन्त आत्माओं के संदेश देते हैं। अमरवाणी में उनके बताये मार्गदर्शन को सुना जाता है याद किया जाता है। प्रेरणा का श्रोत बनाया जाता है। कर्त्तव्य कर्म पूरा करने में मानव चलता है। सुनिश्चित जागरण के सपने पूरे होने लगते हैं। यह प्रतिभाओं अर्थात विभूतियों, अर्थात विशेषतावानों से अपेक्षायें हैं। उज्जवल भविष्य की महायात्रा में मन का उत्साह बना रहे। प्रतिभाओं, विभूतियों, विशेष विशेषतावानों का योगदान मन को मिलता रहे। अपेक्षा है। आशा है। उज्जवल भविष्य की ओर मन अग्रेषित है।

१५. अस्तित्व के लिए मन चिन्तन

अस्तित्व रक्षा के लिए हानि लाभ और खतरों को कोई नहीं देखता है। जिनमें थोड़ी बहुत सूझबूझ होती है वे अपनाए जाने वाले तरीकों में अवश्य सावधानी का मार्ग अपनाते हैं। किसी का भला बुरा आदि कुछ भी होता रहे कोई मतलब नहीं रखा जाता है। अपने अस्तित्व रक्षा के काम में कमी नहीं आना चाहिए। बस इस उद्देश्य की पूर्ति लक्ष्य की प्राप्ती चाहिए। शालीनता, मर्यादा, सभ्यता आदि की ऐसे में परवाह प्राय: कोई करता भी नहीं है।

जीवन जीने का चिन्तन मन में आता है। सोच बनता भी है कि हमको निश्चित होकर जीना है। निश्चित हुआ भी कैसे जा सकता है। जबकि मनुष्य जीवन में उपयोगिता की दृष्टि अनेक आवश्यकताओं को पूरा करना पड़ता है। कुछ विचारों को न करना भी पड़ता है। और कुछ में सुधार करना पड़ता है। तो कुछ को मजबूरी में मानना भी पड़ता है। यह सब कुछ होता है। कोई नया नवादा आज का सोच नहीं है। सदा से रहा है रहेगा।

जहाँ अस्तित्व की बात आती है तो हमें जरूरी हो जाता है कि सार्वभौमिक दृष्टिकोण से ही सोचा जाय। प्रकृति प्राकृतिक दृष्टि से सबका अस्तित्व चाहिए। ईश्वर की रचना ही ऐसी है कि वनस्पति, प्राणी, खनिज, तत्व, तत्विक सभी के अस्तित्व की आवश्यकता है। मनुष्य केवल अपना अस्तित्व के बल पर सबको नकार नहीं सकता। कम ज्यादा में तो क्या आवश्यकता के मान से सभी दृष्टि से सोचा जाना आवश्यक है। धरती की रचना ही इस प्रकार हुई कि व्यर्थ की कोई भी चीज नहीं है। सबकी सब किसी न किसी प्रकार सभी की उपयोगिता अपनी अपनी जगह है। यह मानने और अपनाने वाली बात है कि मानव जिसे अपने लिए आवश्यकसमझता है, वह इसी प्रकृति प्रदत्त की होती है। अतः प्रकृति का ध्यान तो सबसे ही ज्यादा रखना होगा।

मन का चिन्तन तो यह बतलाता है कि हम सब एक दूसरे पर है निर्भर हैं। हम अकेले चाहें कि केवल अपने भले करने में सबकुछ ठीक हो जाएगा पूरी तरह उचित नहीं है। वनस्पति को उजाड़ना नहीं है। जीव जीवों का भक्षण कर समाप्त नहीं करना है। उनको अपनी सेवा में लेकर असमर्थ अवस्था में भगाना भी नहीं है। खनिजों के खनन कर धरती को पोली भी नहीं करना है। नहीं तो धरती भार सम्हालेगी भी कैसे ? प्रदुषण बिगाड़ना नहीं है। वर्तमान में जो ऐसी वस्तुयें मानव बनाता है कि उपयोग किया ओर फेंका, लेकिन इस प्रकार फेंकने से धरती पर प्रकृति विरुद्ध गंदगी फैलती है। जिसे नहीं फेंकना है। नष्ट करते रहना है। कल कारखानों से उत्पन्न गैसों से वायु मण्डल की रक्षा करना है। विशैली गैसों को नष्ट करते ही जाना है। मानव मानव का सहयोगी बना रहे कोई किसी के अस्तित्व से खिलवाड़ कर हानिकारक समस्या उत्पन्न नहीं करें। आदि आदि सभी प्रकार से सोचा जाना चाहिये। यह अस्तित्व रक्षा के लिए मन में चिन्तन आना ही चाहिए।

मानव ने सृष्टि के समानान्तर समष्टि का कृत्रिम और भौतिकीय वस्तु, कल कारखाने, नगर, ग्रामों की बसावट, भवन का निर्माण, सड़कों आदि का निर्माण आदि आदि कर समष्टि का फैलाव सृष्टि की छाती पर कर लिया है। स्वाभाविक है कि सृष्टि के अस्तित्व पर यह अतिक्रमण है। मानव का अपने अस्तित्व के लिए यह सब कुछ है। मन में यह सोच आता अवश्य है कि मानव रक्षा में यह जो कुछ किया जा रहा है अनुचित को उचित मानकर किया जा रहा है। प्रकृति का दोहन, शोषण करना मानव की आदत में ही आ गया है। मन के चिन्तन की वह परवाह भी अब नहीं करता है।बल्कि वह (मानव) यही कहता है कि प्रकृति अपना अस्तित्व स्वयं ही रखना जानती है। मानव तो उस प्रकृति ता अशंमात्र है। उसको प्रकृति रक्षा के चिन्तन-मनन करने की आवश्यकता नहीं है। यह नहीं देखा है कि उर्वराशक्ति कम हो गई है। कृत्रिम साधनों से उसकी उर्वराशक्ति का शोषण होता चला जा रहा है। तापमान में

उलटफेर होता चला जा रहा है। यह जो कुछ हो रहा है, मानव ने अपने अस्तित्व रक्षा के जो उपाय कृतत्व किये हैं, उनकी बदौलत है। मानव मन का चिन्तन अब इस बात की ओर केन्द्रित होने लगा है कि इसी प्रकार की लापरवाही की गई तो मानव को अपना अस्तित्व भी बचाना कठिन हो सकता है।

मानव को अपने अस्तित्व के मन में होने वाले चिन्तन से यह पूरा भरोसा है कि वह जो कुछ प्रकृति का शोषण कर अपने अस्तित्व रक्षा के उपाय अपनाए हुए है। प्रकृति अपने अस्तित्व को कभी नष्ट नहीं होने देगी। क्योंकि ईश्वरीय चेतना उसका रक्षक है। मानव मन में यह चिन्तन उत्पन्न होता है। चलता है कि जब मानव अपने अस्तित्व के लिए निर्भर है तो वह प्रकृति का ध्यान रखकर भी क्या कर लेगा। बस इसलिए मानव मन में केवल अपने अस्तित्व का ही चिन्तन बसा हुआ है। वहीं वह कर भी रहा है। अपने अस्तित्व रक्षा के लिए मानव जो विभिन्न प्रकार के दिवस जैसे प्रकृति हरियाली दिवस, जीव रक्षा दिवस, अंन्तरराष्ट्रीय दिवस, मानव रक्षा दिवस, मातृदिवस आदि मनाने का दिखावा करता है। मन का चिन्तन प्रकट करते हुए कई प्रकार की होनी अनहोनी आदि बात अवश्य करता है, किंतु केवल दिवस मनाना कुछ दिखावा करना, फोटू लेकर सार्वजनिक करना यह सब मात्र दिखावा है। मानव मन चिन्तन से स्पष्ट है कि इससे होना जाना कुछ नहीं है। केवल दिखावा कर अपने आप को भ्रमित कर रहाहै।

मानव जो व्रत, उपवास, संकल्प, संयम, उपासना, साधना, आराधना के प्रण को नियमित अपनाता है यह ऐसे मन चिन्तन है कि वास्तव में मानव अपने अस्तित्व को प्रकृति प्राकृतिक के सहयोगात्मक अस्तित्व रक्षा में अस्तित्व के अच्छे प्रयास हैं। इनमें उसे अपने चिन्तन की गहराई की पहुँच बनाना चाहिए। इस पहुँच का प्रभाव होता है कि मानव स्वस्थ रह सकता है। दीर्घ जीवन का पा सकता है। हाँ, उसे मरना तो है, लेकिन दुर्गति से मरने की। सम्भावना से बच सकता है। मानव मानव के बीच उत्पन्न भय के चिन्तन में उसे

मानवीय यह सोच बनाना पड़ेगा कि यदि वह स्वार्थ से नहीं सोचे तो आपसी एक दूसरे के भय से छुटकारा पाया जा सकता है। यह अस्तित्व रक्षा का बड़ा महत्वपूर्ण मन का चिन्तन है। जिसे गति देना चाहिए मजबूत बनाना चाहिए। मानवीय स्वार्थ महत्वाकांक्षा ने मानव को इतना अंधा बना दिया है कि वह अपने अस्तित्व रक्षा में दूसरे के हितों को भुला देता है या यों कहे कि परवाह नहीं करता है। केवल अपने ही हित अहित को प्रधानता देता है। तब ही तो वह अपनी रक्षा नाम पर मारण साधनों का निर्माण करता है। जब मानव को अपने अस्तित्व को रखना है तो एक दूसरे से भयभीत होने का कोई प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है। खुद जिओ और जीने दो। यदि यह भाव रखा जाय तो मानव को मानव से भय होना ही नहीं चाहिए और मारण साधनों की फिर आवश्यकता भी क्या है। कुछ नहीं मानव मानव के बीच अपने आप को इस प्रकार रखना चाहता है कि उसके अस्तित्व को महत्व मिले। इसलिए दूसरों में भय पैदा करने के मान से यह सब मारण साधनों का वह अपने पास निर्माण कर जखीरा रखता है। जबकि मानव मानव में समानता है और सबको अपना अस्तित्व रखना हैतो इसकी आवश्यकता ही नहीं है।

मानवीय अस्तित्व में मन का चिंतन इतना सहयोगी बन चुका है कि वह अपने अस्तित्व के लिए अपने सोच में बहुत कुछ सफल है। वह अपने अस्तित्व रक्षा में किसी प्रकार से कमी नहीं ला पाया है। नये नये विधि प्रणालियों से सोच चिन्तन को बढ़ावा देते हुए मन पर अपनी पकड़ में योग साधन समाधि प्राणायाम, स्वास्थ्य रक्षा आदि से परिपक्वता लाया है। लायगा भी। उसके मन में यह चिन्तन गुणा दोष को देखते हुए बढ़ता ही जा रहा है कि स्वास्थ्य है रक्षा, जीवन निर्वाह की सामाजिकता उसके हित में है। इस चिन्तन की बदौलत है कि मानव अपने अस्तित्व रक्षा में चिंतित होता चल जा रहा है। अस्तित्व रक्षा में मनोवैज्ञानिक रूप से वृत्ति प्रवृत्ति को वह समझता जा रहा है। नैतिक स्वास्थ्य, आध्यात्म और सामाजिक इस हमसायापन को वह अब बहुत कुछ

समझ चुका है। तब ही तो वह संगठन, सहयोग, सरकार को महत्व देने लगा है। मन का यही अस्तित्व रक्षा में उचित और सही चिन्तन है। जिसे महत्व दिया जाना चहिए।

सारांश में यही कहना पर्याप्त है कि मानव मन केवल अपने अस्तित्व में दूसरे के अस्तित्वों के विषय में न भूले। ठीक है वह अपने अस्तित्व में सोचे समझे सीखे करे कि वह स्वयं रहे रहने दे, जिये जीने दे, करे करने दे के साथ अपने मन में चिन्तन में उदारता अवश्य लाये। सबके जीवन मात्र सहित प्रकृति प्राकृतिक कल्याण कामना को मन का चिन्तन सोच बनाये रखे। संघर्ष विनाश, अतिक्रमण आदि जैसों की अति नहीं करे। आपसी सहयोग सहकार अस्तित्व का तरीका है। संघर्ष विनाश का मार्ग है। मन का चिन्तन सुधार कर जिया जाय। सबसे अच्छा अस्तित्व के लिए मन का मानवीय यही चिन्तन उचित है।

१६. दूर दृष्टि ! मन तुष्टि

दूर दृष्टि, आगे का सोच भविष्य का विचार होता है। आज अर्थात वर्तमान जो है वह है, लेकिन भविष्य पर विचार वर्तमान में जो होता है उसे दूर दृष्टि कहा जाता है। इसकी आवश्यकता क्यों पड़ती है, क्योंकि भविष्य का सोच विचार आज के अनुकूल सोच के विरुद्ध नहीं होना चाहिए। आज का सोच परिणाम स्थिति परिस्थिति के अनुकूल अपनी इच्छा के अनुकूल है तो भविष्य भी इच्छा के ही अनुकूल हो। भूत के विषय में हो या भविष्य के विषय में हो जो विचार होता है वह होता तो वर्तमान में ही है। उस सोच को भले भूत या भविष्य के विषय में भले कहा जा सकता है। आध्यात्म क्षेत्र में दूरस्त परिणाम को देखना दूरदृष्टि के ही बस का काम होता है। आज अर्थात वर्तमान जैसा न हो, इसलिए भविष्य मान से विचार जैसा कि वर्तमान का आंकलन, निकलता है उसकी पुष्टि कारक हो इसलिए भविष्य मान से आंकलन अंदाज स्थिति परिस्थिति के विचार से वह इच्छित परिणाम देने वाला हो। उस समय की इच्छा विरुद्ध विचार परिणाम नहीं निकले। इस आधार पर सोच बनाया जाता है। वर्तमान का इच्छित सोच भविष्य मान इच्छित सोच ही बने इसलिए भविष्य सोच की आवश्यकता को दूरदृष्टि से सोचा समझा जाता है। इसका यह भी आशय होता है कि भविष्य में जब कभी वर्तमान जैसे विचार की परिस्थिति बने जैसा कि वर्तमान के सोच परिणाम निकला है। उसके विरुद्ध अर्थात अनुपयोगी न हो जाय। इसलिए वर्तमान सोच को उस मान से ही सोच समझ कर व्यवहार में लाया जाता है। इससे वर्तमान में जो शान्ति, संतोष तृप्ति, प्रसन्नता, अनुकूलता का भाव बनता है मन को वर्तमान और भविष्य में वह बना रहे। दूर दृष्टि सोच होता है। उसे भविष्य सोच भी कहा जा सकता है।

मन की शान्ति संतोष वर्तमान में है तो क्या भूतकाल में भी थी ? में यह तो नहीं कहा जा सकता है भी उस समय की ऐसा ही संतोष शान्ति था।

लेकिन उस समय की परिस्थिति जैसा जो कुछ किया, सोचा वह अगले समय के मान से हो सकता है। सोचा भी नहीं हो, इसलिए वर्तमान सोच को दूरदर्शिता के सोच की आवश्यकता पड़ रही है। वर्तमान में जो कुछ किया जाता है वह अपने विरुद्ध सोच सोच बनाकर नहीं किया जाता है, लेकिन उस सोच को इस प्रकार बनाया जाता है कि भविष्य में वह सोच विरुद्ध नहीं हो जाय। यह इसलिए भी हो सकता है कि वर्तमान का सोच या किया हुआ विरुद्ध हो गया हो तो भविष्य में तो विरुद्ध नहीं हो। इसी प्रकार यह भी है। वर्तमान का सोच और किया हुआ जब अनुकूल है तो भविष्य के सोच को क्यों विरुद्ध बनाया जाय। कभी कभी उलटवासी का भी प्रयोग किया जाता है। जिसके कि अन्तर्गत उल्टा करें तो सीधा होता है, क्योंकि कल जो हमारे अनुकूल हो वह आज यदि प्रतिकूलता अपनाये से किया जाय तो यह भी भविष्य का ही सोच है, क्योंकि वर्तमान तो विरुद्ध हुआ सो हुआ भविष्य में तो नहीं हो, इसलिए वर्तमान में सहन किया जाता है और भविष्य को सुधारा जाता है जो कुछ भविष्य मान से किया जाता है, वह आखिरकार वर्तमान ही में किया जाएगा। यह ठीक है कि भविष्य के अनुकूल उसे सोच कर किया जाता है।

दूरदर्शिता उस भविष्य के लिए संतोष का कारण बनेगा, अतः ऐसा किया जाता है। यहाँ हम हमारे भारतीय संविधान के प्रावधान पर से इस स्थिति के समझने का प्रयास करें तो बहुत अच्छा होगा। जब भारत का संविधान लिखा गया तब यह विचार सामने था कि दलित वर्ग को भविष्य में कैसे लाभ दिया जाय। इसी प्रकार एकविचार कुछेक विचारकों में यह भी हो सकता है कि जो दलित वर्ग के लिए विचार बन रहा है उसके विरुद्ध विचार रखने से कोई नतीजा नहीं है, क्योंकि कोई इस विचार को मानेगा ही नहीं। अतः सबसे अच्छा है यह हो लिया जाये तो इनको दिये चान्स प्रतिशत से शेष तो सवर्णों के लिए सुरक्षित अपने आप ही हो जावेगा। दोनों प्रकार के सोच में यहाँ अन्तर है। एक सोच दलित वर्ग को लाभ पहुँचाना है तब दूसरे का सोच यह है कि दलित को

कुछ लाभ निश्चित कर पृथक कर दिया जाये तो शेष बचा लाभ सवर्णों का ही होगा। अतः दलित के लाभ के सोच का समर्थन किया गया। इस सोच की उलटी स्थिति को समझा नहीं। यदि इसी समय दलित और सवर्ण भेद नहीं कर समान अधिकार दे दिये जाते और दलितों की हालत सुधार के लिए कुछ विशेष रूप से प्रावधान निश्चित करते रहने का मार्ग सुझा दिया गया होता तो रिजर्वेशन का बखेड़ा ही समाप्त हो जाता, लेकिन वहाँ तो यह था कि यदि उस समय दलितों को अन्य सुविधा देकर उनके हित में सोचा जाय तो सवर्णों को शेष बचा स्वत: रिजर्वेशन लाभ नहीं मिलता। सभी समान रूप से लाभ उठाते। दलितों की स्थिति सुधार के कार्य से उनकी स्थिति सुधरती चली जाती और समानता के अधिकार में वे आ जाते। दलितों को जो रिजर्वेशन देने से बड़ा हिस्सा शेष बचा उससे सवर्ण वंचित हो जाते। पर उस समय का भविष्य सोच तो था, लेकिन कूटनीति की चाल भरा सोच था। जिसे वर्तमान तक नहीं समझा गया है। तमाम तरह के नामों से रिजर्वेशन देने के बाद भी शेष बचा प्रतिशत लाभ सवर्णों को स्वतः ही बचा हुआ है। अब यदि यह रिजर्वेशन का फंडा समाप्त कर समानता दे दी जाय तो यह सभी के हित में भविष्य सोच ही होगा। अतः इस उदाहरण से दोनों ही प्रकार की दूरदृष्टि को समझा जा सकता है। यदि वर्तमान में भी सतर्कता पूर्वक विचार कर जिस वर्ग को रिजर्वेशन दिया गया है, उन्हें विशेष आर्थिक, सामाजिक, प्रगतिवादी सुविधायें देकर रिजर्वेशन समाप्त कर दिया जाय तो यह निश्चित है कि रिजर्वेशन सीट के अलावा भी दलित वर्ग प्रतियोगिता में आकर लाभ उठा सकता है। यहाँ सोच कर स्तर वर्तमान में भविष्य लाभ का सोच अधिक लाभकारी पात्र वर्ग जिसे लाभ दिया जाना है उसे ही होता है, जबकि सवर्णों के लिए रिजर्वेशन समाप्त करना भविष्य मान से विरुद्ध ही जाता है। यही तो उलटवॉसी भविष्य सोच है।

उपरोक्त से यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान सोच पर निर्णय लेने वाले को भविष्य मान से विरुद्ध नहीं हो ऐसा भविष्य के लिए सोच बनाकर

निर्णय लिया जाय जो दूरवर्ती दृष्टि है। ऐसी ही अन्य परिस्थितियों में भी भविष्य लाभ को दृष्टिगत रखकर भविष्य विचार किया जाता है। किया जाना चाहिए।

परिवार के लिए उद्योग धंधे कायम करना, मकान जायदाद बनाना, अच्छे सम्बन्ध स्थापित करना, परिवार को शिक्षित बनाना, अभावों से दूर स्थिति बनाना, स्वस्थ जीवन व्यतीत की व्यवस्था बनाना आदि यह सबके सब भविष्य को अनुकूल बनाने के ही कार्य हैं जो वर्तमान तो दुःख तकलीफ उठाकर किये जा रहे हैं। लेकिन इन कार्यों से भविष्य की संतति सुखी सम्पन्न रहकर शान्ति संतोष की जिंदगी बितायेगी। वर्तमान में इस प्रकार के कार्य भविष्य मान के सोच से पूर्ण ही किये जाते हैं।

उपरोक्त स्थिति परिस्थिति को हमने जो स्पष्ट किया है उससे मन का सोच दूरदर्शिता का ही है। यदि दूरदर्शिता के सोच को नकार कर वर्तमान को सब कुछ मानकर आरामी परिस्थिति को ही महत्व दिया जाय और भविष्य के लिए वर्तमान में दुःख तकलीफ को नहीं उठाया जाय तो भविष्य में मन को तुष्टि कभी नहीं मिल पायेगी।

प्रत्येक काम प्रारंभ के पूर्व योजना बनाई जाती है। विचार किया जाता है। बजट बनाया जाता है। बैंक में खाते खोले जाते हैं। ऋण लिया जाता है। व्यवहार निभाया जाता है। आदि आदि यह सब भविष्य मान से दूरदृष्टि के ही काम है। ठीक ऐसे दूरदर्शिता के कामों को करने में वर्तमान में परेशानी असुविधा होती हो, लेकिन इन दूरवर्ती कामों से वर्तमान को तो तुष्टि तुरंत ही मिल जाती है। भविष्य में तो जो होना हो वह होता ही रहता है।

मानव जीवन में जो कुछ वर्तमान में सोच बनाया जाता है, बनता आया है वह भविष्य के अच्छे सोच के लिए ही बनाया जाता रहा है। इसी प्रकार कुछ वर्तमान दैनिक काम ऐसे भी होते हैं जिनसे तुष्टि, संतोष, शान्ति, लाभ, उपलब्धि आदि वर्तमान ही में मिल जाते हैं। शराबी, सट्टेबाज, चरित्रहीन, चोर,

बदमाश के कार्यों पर विचार करें तो इनके कार्य भविष्य के लिए तुष्टिदायक सोच नहीं होता है। क्योंकि वर्तमान में वे जो कुछ करते हैं उनके परिणाम स्वास्थ्य खराबी पकड़े जाने पर सजा बदनामी आदि भविष्य में भुगतना पड़ता है। भविष्य का जीवन इस प्रकार सुधरने की अपेक्षा बिगड़ता ही तो है।

उपरोक्त विवेचनात्मक विचार से सोच का निष्कर्ष पर देखा जाय तो स्पष्ट समझ में आ जावेगा। वर्तमान के सोच और भविष्य के लिए बनाए सोच को निष्कर्षात्मक दृष्टि से समझा जाना आवश्यक है। वर्तमान तो जैसे तैसे सभी निबट लेते हैं, किंतु भविष्य बिगड़ने की परिस्थिति में जब जो वर्तमान मिलेगा, बिगड़ा मिलेगा। उस समय की स्थिति परिस्थिति को जब वर्तमान सोच से ही नहीं बनाया तो भविष्य में उत्पन्न वर्तमान को सुधारना असंभव हो जावेगा।निष्कर्ष यही है कि मन की तुष्टी के अनुसार ही दूरदृष्टि का सोच वर्तमान में होना आवश्यक है। यह बात अलग है कि समयसमय की स्थिति परिस्थिति का प्रभाव तो सदा पड़ता है, किंतु समान स्थिति परिस्थिति बनी रही तो दूरदृष्टि से भी तुष्टि की परिस्थिति अवश्य मिलती है। अज्ञानता, लापरवाही, अहंकार, शेखीखोरी की बात अलग है कि दूरदृष्टि का सोच भले उसे बता कर किया जाय, किंतु दूरवर्ती मन तुष्टि का वहाँ अभाव भी सामने आ सकता है। प्राय: यह अटल नियम है जो कुछ भी वर्तमान में होता है और किया जाता है दूरवर्ती विपरीत प्रभाव के लिए नहीं किया जाता है। ठीक है दो पक्ष में से किसी एक पक्ष को तो निश्चित लाभ होता ही यह भी हो सकता है कि दोनों ही पक्षों को तुष्टि भी मिल जाती हो। लेकिन यह निश्चित है कि मानव दूरवर्ती वर्तमान में भी मनकी तुष्टि के भाव ही रखा करता है। यह सोच दूरदृष्टि मन की तुष्टि दृष्टिकोण से होना भी चाहिए।

१७. मन की छूट मूड की लूट

सभ्यता की छूट से वर्तमान स्त्री पुरुष के मन में कितना हेरफेर आ गया है कि मानवता शर्माने लग गई है। सभ्यता में नित नए ऐसे परिवर्तन आते चले जा रहे हैं कि मन आकर्षित होकर उन्हें अपनाता ही जा रहा है। नई जनरेशन तो सभ्यता की आड़ में शालीनता ही भूल गई है। स्त्री और पुरुष के जीवन जीने के अपने अपने मार्ग होते हैं। जिनके पालन करने ही से मानव की परिवार संस्था का प्रचलन चला। विवाह प्रथा से वे एक दूसरे के हुए हैं। समाज सभ्यता से सामाजिकता मानव में आई है। वह सामाजिक जीवन जीने लगा है। वर्तमान मानव इतना बदल गया है कि सामाजिकता समझने समझाने के लिए ही रह गई है। को-एजुकेशन से विद्यार्थीकाल से स्त्री-पुरुष के बीच का पर्दा ही समाप्त हो जाता है। फिल्मी लाग लपेट, टी.वी. के द्वारा एडवरटाईजमेंट में अंग विन्यास, वॉकी टॉकी से आमने सामने की बात की छूट, मोबाईल से बातचीत आदि के चलन से मानवीय रिश्ते वासनापूर्ति तक सीमित होते चले जा रहे हैं। इसमें मन क्या कर सकता है। वह तो इच्छा, जिज्ञासा का हुकुमसार है। मस्तिष्क बुद्धि सोच-समझ का आज्ञाकारी है। पुरुष परिवार प्रथा में पुरुष जाये तो कहाँ जाय। महिला को मायका आबाद है। मन हुआ तो लव की छूट दूसरा तैयार है। शासन व्यवस्था ने कानून ही इस प्रकार के प्रभावशील कर दिए हैं कि पुरुष असहाय नजर आता है। पारिवारिक जीवन में मनभेद अटक अटकता रहता है। भले मतभेद चलता चलाता रहता हो, किंतु महिला मन पुरुष को रिझा कर अपना काम निकाल लेती है। लेकिन जब पुरुष का नम्बर आता है और महिला जब अपनी तारीफ सुनती है कि वह उम्मीद से ज्यादा अच्छी है तो अधिकार जताने में आगे दिखती है। पुरुष को मन मार चुप होने में ही भला लगता है। पुरुष को बताये गये काम करने ही पड़ते हैं, नहीं तो कलह का माहौल बन जाता है। व्यवहार से निकलकर माहौल इतना दृढ़ रूप ले चुका है कि स्त्री अपने मायके की प्राथमिकता के सामने ससुराल पक्ष के हर सदस्य को घटिया

व्यवहार का शिकार बनाने में कभी चूक नहीं करती है। मन मारकर जीवन गाड़ी चलाई जा रही है। परिवार तो क्या न्यायालय तक भी महिला के प्रश्नों के उत्तर देने में असमर्थ हो जाता है। प्रायः उनके पक्ष में ही निर्णय देना पड़ता है। यहाँ मानव मन की दुर्दशा ही कहना चाहिए। यह सब समय कालिक सभ्यता में उत्पन्न दोष का मन पर कुप्रभावों का ही एक मात्र कारण कहा जा सकता है।

स्त्री प्रधान परिवार में भी पुरुष की दशा कोई अच्छी नहीं है। घर जावाँई का उदाहरण इसका ज्वलंत प्रमाण है। समान अधिकार कोई बुरी प्रणाली नहीं है। प्रकृति प्राकृतिक और वृत्ति प्रवृत्ति की दृष्टि से स्त्री पुरुष के कार्यक्षेत्र, जवाबदारी में अंतर है। अधिकार समान हो सकते हैं, किंतु कर्त्तव्य में तो अन्तर होता है। अधिकार के साथ कर्त्तव्य निर्वाह पर ध्यान जाय तो मन की छूट मूड की शालीनता में काम करेगा।

तारीफ स्त्री पुरुष किसी की भी की जा सकती है, लेकिन हकीकत में तो कुछ और ही है। जिसे वर्तमान मन, अच्छी तरह समझ चुका है। विवाह संस्कार परंपरा से भले सम्पन्न होता हो,।लेकिन वह समझौता बन कर रह गया है। वह परंपरा तारीफ के योग्य है जो मूता निकाह को मान्यता देती है। इससे आगे वर्तमान परंपरा में लिव इन रिलेशनशिप में तो विवाह संस्कार के दिखावे की भी आवश्यकता नहीं होती है। जहाँ दिखता कुछ और होता कुछ और। मन में बसा धोखा कब निकल बाहर आ जाय। मौकापाकर हाथ साफ कर जाय। पुरुष पक्ष देखता रह जाता है।

पारिवारिक जीवन में मन का खेल नये नये तरीकों का अनुभव कराते हैं। परिवार व्यवस्था के लिए कमाने का जिम्मा पुरुष के पक्ष में है। भले अब महिलायें कमाने में भी अपना हक बना चुकी हैं। पुरुष की अपेक्षा अब महिला बचत को परिवार के खर्च लेने से अलग ही सुरक्षित रखने में होशियार हो चुकी

है। इस बचत को वह ससुराल की अपेक्षा मायके पक्ष को लाभान्वित करने के काम में लेती है। पुरुष मजबूर होकर मन मसोस कर रह जाता है। घोष घोषणा भले न हो, लेकिन अब नेतृत्व महिला का प्रभावक है। पुरुष दिल ठोक कर यह नहीं कह सकता है कि घर परिवार की व्यवस्था उसे सब याद है। वह इस बात से अनभिज्ञ ही रहता है कि उससे छिपाकर उसकी घरवाली क्या करती है। क्या नहीं करती है। क्या बताती है, क्या होता है। मन थाम कर जो हो रहा है उसे स्वीकारना पड़ता है। यही तो मन की छूट में झूठ की लूट है। मन समझौता नहीं कर रहे तो क्या करें ? समझना पड़ता है।

बच्चों का जीवन ईश्वर के सहारे भाग्य के भरोसे चलता है, जहाँ माता बच्चों को महत्व देकर लालन पालन करती थी। अब माता ने कमाने का जिम्मा ले लिया है तो बच्चे नौकरानी, आया या फिर होस्टल की व्यवस्था में पलते हैं। ऐसे में माता पिता परिवार जन से उनका लगाव ही नहीं रहता है। वे भी स्वतंत्र मन के नागरिक बनकर सामने आते हैं। ऐसे में धर्म की सीमा समाप्त और जातिका बंधन छिन्न-भिन्न हो चुका है। न उम्र की सीमा न कोई बंधन है तो किरदार को लेकर चलने वाली मनमानी। सफलता पाने के लिए पापुलर बनने के लिए जो कुछ करना पड़े वह सब किया जाता है। व्यक्तित्व संवारने की कौन कहे, परसनेलिटी बनाने और निखारने की जल्दबाजी दौड़ लगाती है। ऐसे में किसको क्याबतायें ? क्या नहीं बतायें? अवसर ही नहीं मिलता है। मिलता है तो अपनी ओर से पहिले कोई अपने मन से बताता ही नहीं है। प्यार का बन्धन दिखाने का रह जाता है। रिश्तों की डोर को मजबूती का जामा पहनाया जाता रहता है। फैमीली बजट में फ्रेडली रोल के नाम पर हसबैन्ड वाईफ की कमाई सब वाईफ के हाथ आकर थम जाती है। मायके वालों के स्वागत सम्मान में एटीकेट और मेनर्स दिखाने में बेटी की तारीफ होती है। दामाद को बुद्धु करार दे दिया जाता है। कुछ कहो तो मायके जाने की धौंस से डर कर दिल पर पत्थर रखकर मन मारकर रह जाना पड़ता है। बच्चों की आदत पेरेन्ट्स की परेशानी

बन जाती है। बड़े होकर वे खुद अपना आपा समेट कर रहने लग जाते हैं। माता पिता और बुजुर्ग जन मिलने को भी तरस जाते हैं। मूड ही इस प्रकार का बन कर काम करने लग जाता है। कि किसी को किसी से कोई वास्ता जैसा हो! लगता ही नहीं है। सभी अपनी अपनी मनमर्जी के मालिक बने नजर आते हैं। इसे ही तो मन छूट मूड की लूट नहीं कहें तो क्या कहें?

उपरोक्त हकीकत है जो आज जीवन में पाई जाती है। उस पर से क्या यह कहा जा सकता है कि बचपन ही से झूठ बोलने, छिपाने और अपनी मर्जी का काम पसंद की आदत बन जाती है। बड़े होने पर बाद वाले इसका अनुकरण करने लग जाते निर्णय लेने की क्षमता इतनी पक्की हो जाती है कि सलाह की आवश्यकता ही समप्त हो जाती है। ऐसे में सलाह न तो कोई देता है न ही कोई मानता है। मन मर्जी की छूट बरकरार हो जाती है। घर परिवार में बेटे बेटी विशिष्ट सुविधा प्राप्त जीव हो जाते हैं। मन की भूख खर्च की छूट फिर क्या है मूड की स्वतंत्रता आबाद हो जाती है।

यहाँ देखने में यह आता है कि प्राण जो आत्मा का पर्यायी हैक्या वर्तमान मानव बिना, बिना मिले, बिना दिखे उस आत्मा केपरमात्मा को मानेगा? नहीं। अपने आपको सबकुछ कहेगा। बुद्धि मस्तिष्क का पर्यायी है। क्या बुद्धि जनरेशन गेप कहने से इनकार करेगी। नहीं। मन जो इच्छा जिज्ञासा का पर्यायी है। मन की छूट को मूड की लूट करने से चूकेगा? नहीं। बस यही ! इसी प्रकार का मानवीय जीवन हो गया है। सभ्यता विकास की फेशन बाजी ने वह रूप ले लिया है कि जिसके सामने मानवीय व्यवहार आधार की शालीनता के दर्शन दुर्लभ होते जा रहे हैं। मन की बात में यह कहना ही अशोभनीय हो गया है कि मानवीय जीवन में मन अपना स्थान शालीनता का रखता है। अपितु मन का मूड जैसा होता है वह वैसा ही करके दिखा देता है। मन का मूड अब ऐसा पर्यायी बनकर काम करने लग गया है कि वह करते करते कभी भी किसी भी डायरेक्शन में जाकर अपना रंग दिखाने लग जाता

है। चरित्र की बात को मन व्यक्त करने से झिझक महसूस कर बैठता है। चरित्र की दाद जहाँ की तहाँ रह जाती है। मूड की लूट के सामने सब झूठे पड़ जाते हैं। यह मन की छूट नहीं उसकी मजबूरी है, कि वह बदले बदले मानवीय व्यवहार में वर्तमान को दोषी ठहराता है। जबकि दोषी वह स्वयं है। अब यही कहना ठीक है कि जैसा मानव वैसा उसका वर्तमान। जैसा वर्तमान वैसा भविष्य फिर वह निर्माण कैसा सामने आए। अगली पीढ़ी उसे देखेगी। समझेगी। हो सकता है पीढ़ी दर पीढ़ी मन की छूट में वृद्धि विकास होता जाय। मूड स्वतंत्र होकर बिना बंधन का जीवन बिताने का आदि हो जाय। शालीनता, आदर्श, चरित्र के गुण पुस्तकों में पढ़ने का विषय बन कर मानव को गौरवान्वित करता रहे। वर्तमान में विचार करने का यह गम्भीर विषय है।

--- * ---* ---* ---

१८. कल दुत्कारा मन फटकारा

यह कोई अनहोनी बात नहीं है कि आज आज है, कल कल है। सीधा साधा आशय यही है कि आज जो कुछ हम करेंगे उसका परिणाम आज मिल ही जावेगा और जो कल हमने जैसा भी किया है उसका परिणाम कल ही मिलेगा। इसका आशय यही है कि जो आज है वह आज का आधार है जो कल था या होगा वह कल का आधार है। इसको हम यों भी कह सकते हैं कि आज को आज की चिन्ता है तो कल को कल की होनी ही चाहिए

जिसको जन्म मिला है उसे कब तक जीवित रहना पड़ेगा। यह किसी को मालूम नहीं है। हाथ हथेली पर जीवन रेखा से अन्दाज लगाया करते हैं, लेकिन गारन्टी वहाँ है नहीं। इसलिए जीवन निर्वाह के कुछ सिद्धांत, नियम अर्थात नीति पालन कर लिया जाता है। नीति नियम सिद्धांत, पालन के कुछ तरीके अर्थात व्यवहार होता है। जिसे दैनिक जीवन में अपनाया जाता है। व्यवहार अपनी अपनी प्रकृति, स्वभाव के अनुसार होता है। इसी अनुसार आदत भी पड़ जाती है। व्यक्ति व्यक्ति की प्रकृति, स्वभाव, आदत में अन्तर मिलता है। जैसी जिसकी जो प्रकृति स्वभाव, आदत होती है वह उसी प्रकार का व्यवहार का तरीका अपनाये रहता है। कहने करने के लिए यह जरूर है कि सद्व्यवहार करना चाहिए, लेकिन सद्व्यवहार का क्या तरीका है। वह कैसे किया जाता है, क्या होता है ? आदि आदि। सबके लिए एक सा नहीं होता है। अंतर एक दूसरे तीसरे और इसी प्रकार देखने में आता है कि सभी में थोड़ा बहुत अंतर होता है। किसी में कोई से गुण दोष हैं तो किसी में कोई से सबके सब व्यवहार तरीके मन पसंद कहीं किसी में नहीं मिलते हैं। एक दूसरे से समायोजन चलता रहता है। जितना समायोजननहीं हो पाता है उनमें विरोधाभास की स्थिति बनी रहती है। स्वभावत: या यों कहें कि जिसकी जो प्रकृति में जन्मजात ही आदत का अंश है उसे बदला जाना कठिन होता है। यह

बात सही है कि आदत बनाई भी जाती है, लेकिन जन्मजात प्रकृति का असर सदा बना रहता है तरीके रीति सामने वाले से समायोजन के मान से अवश्य अपनाये जाते हैं, लेकिन स्वभाव की छाप उस व्यवहार में होती है।

कोई व्यवहार एकदम साफ सुथरा तरीके से करता है जिसमें सोच समझ की आवश्यकता ही नहीं पड़ती है। ऐसे कोखरा बोलना खरा करने वाला भी कहा जाता है. कोई व्यक्ति अपनी बात को घुमा फिरा कर कहता है। जिसे दुपड़ती दोहरे अर्थ वाली भी कहा जाता है। जिसे समझने में मस्तिष्क पर जोर देना पड़ता है। फिर यह भी निश्चित नहीं है कि बात व व्यवहार का सही मतलब समझ में आता है या नहीं आता है। व्यवहार करने वाला तो करता ही रहता है। उसकी यह कोशिश होती ही नहीं है कि उसकी बात का सामने वाला सीधा अर्थ समझ रहा है या नहीं। उसका लक्ष्य तो दुविधा में डाले रखने का होता है। कई व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो कहते कुछ हैं करते कुछ और हैं। ऐसे व्यक्ति के व्यवहार से प्रायः धोखा ही बना रहता है कि क्या मालूम यह जो कह रहा है इसके कहने का लक्ष्य क्या है? यदि समझ में आ गया तो ठीक नहीं तो दुविधा बनी रहती है कि पता नहीं यह व्यक्ति किस मतलब से ऐसा कर रहा है। कह रहा है। सामने वाला नहीं समझ पाता है। यह कहने वाले की सफलता है। तब ही वह अपने व्यवहार को दर्शा कर अपनी सिद्धि करता है। इस प्रकार मानव के स्वभावानुकूल भिन्नता की रीतिनीति में अंतर होते हैं। जब जो जितना समायोजन हो जो वह उतना ही ठीक है। सबका स्वभाव प्रकृति अर्थात नीति एक सा रीतिअर्थात व्यवहार भी नहीं होती है। यही कारण है कि आज और कल के व्यवहार में अंतर पाये जाते हैं।

व्यक्ति भी पीढ़ी दर पीढ़ी नीति में स्थानांतर होता है। अंतर होता है। इसमें बदलाव मनुष्य दैनिक व्यवहार के परिवर्तन ही से ला पाता है। यह कोई जरूरी नहीं है कि सब का सबको जैसा का तैसा समझ में आ ही जाये। यदि ऐसा हो तो बड़ा अच्छा है। नहीं तो शंका बनी रहती है। कल जो व्यवहार में

आया है उसका परिणाम आज नहीं तो कल आएगा ही। इसी प्रकार जो व्यवहार हुआ है उसका प्रभाव आज ही देखने को मिल गया। आगे के लिए उसमें शंका की गुन्जाइश होती ही नहीं है।

प्राय: परिवार में व्यवहार इसी प्रकार हुआ करते हैं। परिवार में चलती का नाम गाड़ी आधार पर व्यवहार होता है। जिसकी चलती है उसकी चलती है। जिसकी नहीं चलती है उसकी कोई चलाता भी नहीं है। परिवार में सदस्य की उम्र लिये व्यक्ति से इसको नहीं देखा जाता है। परिवार में प्रमुख कौन है और चलती किसकी है। इसी प्रकार से रीतिनीति सभी मुखिया के हाथ में भी केंद्रीभूत होती है आदि।

होता यह है कि जो देखा जाता है वैसा किया जाता है। यह भी होता है कि जैसा देखा जाता है वैसा नहीं किया जाता है। कुछ किया जाता है कुछ नहीं किया जाता है। ऐसा भी होता है। इसी आधार पर रीति और उसकी नीति, नीति और उसकी रीति का निर्धारण होता है। हमारे घर परिवार में अमूक रिवाज प्रथा रूढ़ी चली आई है। वह हमें पालन करना है। पालन की जाती है। अमूक प्रथा परंपरा को अमूक व्यवहार से माना जाता है। देखने में आता है कि जहाँ पुरुष प्रधान हो या जिस पुरुष की चलती है उसके व्यवहार को देख कर उस घर के लड़के सीखते हैं। जिस परिवार,में महिला की चलती है उस परिवार की लड़की जहाँ कहीं जाती है तो वह अपनी चलाती है। सुख शांति का माहौल समाप्त हो जाता है। या तो मन मारकर रहा जाता है या फिर क्लेश का सामना करना पड़ता है।

होता यह है कि यदि अनुकूल नीति को छोड़ दिया तो निश्चित है प्रतिकूल नीति से क्लेश होना ही है। यदि अनुकूल नीति के साथ अनुकूल व्यवहार को अपना लिया तो निश्चित है सुख शान्ति का ऐसा माहौल बन जायगा कि आज और आने वाला कल सब समान अर्थात अच्छा बना रहेगा। इस बात

को हम अपने अपने मान से उदाहरणों से समझ सकते हैं। हम अपना कोई उदाहरण देकर समझाना ठीक नहीं मानते हैं।

उपरोक्त विवेचन हो सकता है कि सैद्धान्तिक हो जिसे व्यवहारिक मानने में सोचना पड़ सकता है, लेकिन समझने के लिए सोचना तो पड़ेगा। तब ही समझ में आ पायेगा। फिर भी हमारा यह सुझाव है कि अर्थ का अनर्थ नहीं समझा जाय। अर्थ को अर्थ अनर्थ को अनर्थ ही समझा जाय। अर्थ को अनर्थ में नहीं ले जाया जाय। अनर्थ को अर्थ में अवश्य लाया जाय। इसी को हमने शीर्षक में सांकेतिक रूप से दर्शाया है।

कल को दुत्कारने से आशय यह है कि घर परिवार, खानदान, कुटुम्ब मर्यादा की सीमा होती है। उसका पालन किया जाता है। हमसे ज्यादा पहिले के लोग अधिक समझते थे। तब तो नीति रीति निर्धारित वे कर पाये हैं। वे वर्तमान वालों से ज्यादा बेवकूफ होते तो आज जैसी सुदृढ़ व्यवस्था देखने को नहीं मिलती है। हाँ, समय समय पर कुछ संशोधन अवश्य होते रहे हैं। उतना आज भी किया जा सकता है, लेकिन पूरा का पूरा उलट पलट कर देनेसे कल का दुत्कारना ही तो कहलायेगा। फिर कल (भविष्य) कैसे हमारेअनुकूल होगा। हो ही नहीं सकता। भविष्य सुधरे सब चाहते हैं। इसीलिए रीति की नीति बनाई जाती है। नीति में सुधार किये जाते हैं। तो रीति में सुधार हो ही जाते हैं। इस सिद्धांत को समझने की आवश्यकता है जो समझा जाना चाहिए। मानने को नहीं मानना। नहीं मानने को मानना। दुत्कारना अपनाना और अपनाना दुत्कारना दोनों ही अपने आप में सोचने-समझने की बात है। तभी वह सही माने में स्पष्ट हो जाता है। सबसे अच्छा है सोचे भी समझे भी। माने भी और मनवाने वाली बात को मनवायें भी। तब तो सब ठीक है और यदि सबको ठुकरा कर अपनी चलाना पूरी तरह से गलत ही है। समझे भी। सीखे भी माने भी मनवाय भी। सुने भी समझाये भी यही आज को स्वीकारना और कल को महत्व देना है। यदि ऐसा नहीं हो तो आज जब खराब कर दिया जायगा तो कल अपने

आप खराब ही देखने को मिलेगा। यह कल को दुत्कारना अर्थात मन मानसिकता को बिगाड़ना ही कहा जायगा। जो मन को फटकारना ही तो है उचित यही है कि जाने माने नहीं तो सीखें बस सभी ठीक हो जायगा। न कल को दुत्कारना होगा न मन को फटकारना होगा।

१९. धन तेरस मन चौदस

विरासत में युग युगों से परम्परात्मक वृत्त, विवाह, साधना, त्यौहार आदि के रूप में जिनका प्रचलन मुख्य है उनमें संवतसार चैत्र नवरात्रा, शारदी अश्विन नवरात्रा, बसंत पंचमी, अक्षय त्रतीय, मकर संक्रान्ति, गुरु पूर्णिमा, शरद पूर्णिमा, सर्वपितृ अमावस्या, देवशयनी, देव प्रबोधनी ग्यारस, होली, श्रावणी रक्षाबंधन, दशहरा, दीवाली का प्रचलन प्राय: सभी मानते हैं। धर्म, मत, सम्प्रदायों की दृष्टि से उनके मान्यता प्राप्त प्रचलन अपने अपने प्रकार के हैं। भारत एक ऐसा देश है। जिसकी बहुआयामी सभ्यता और संस्कृति है। सभी एक दूसरे की सांस्कृतिक मान्यता का आदर करते हैं। ऐसे भी अवसर आते हैं जब वे मिल जुलकर उन्हें मनाते हैं। आपसी भाई चारे को निभाते हैं। सांस्कृतिक के अलावा राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय, समय सामयिक दिवस आदि सार्वजनिक प्रचलन भी मान्यता में हैं।

मानव जीवन की यह विशषेता ही है कि वह किसी न किसी प्रकार से ईश्वरवादी अथवा प्रकृतिवादी होकर आस्था, श्रद्धा, विश्वास के साथ सनातनी परम्परा का निर्वाह करता चला आया है। अध्याय की शीर्षक से हमारी संकुचितता अवश्य लग सकती है। हमारा आशय इस संकुचितता से हटकर है। जिसेहमने संक्षिप्त रूप से स्पष्ट करने का प्रयास किया है। सब तो हमारे वर्णन से संतुष्ट नहीं हो पायेंगे। हमारा निवेदन है कि आप तो मूल आशय की ओर ही ध्यान दें। यही उत्तम है।

भारत में वर्णवाद, जातिवाद और सम्प्रदायवाद का फूहड़ प्रदर्शनात्मक प्रचलन है, जिसका ब्राह्मणों का रक्षाबंधन, क्षत्रियों का दशहरा, वैश्यों की दीवाली और शूद्रों की होली मान्यता दी जाती है। यह स्वार्थी, अहं, अहंकार, उत्तम अधम जैसी हल्की भाव भावना को दर्शाने वाला प्रदर्शन है। मान्यता और अच्छाइयों के पीछे यह प्रदर्शन नहीं होता है। होना भी नहीं

चाहिए। लेकिन समाज के कुछेक घटक ऐसे हो गये हैं कि अच्छाइयों के नाम पर फूहड़कारी मान्य मान्यतायें पैदा कर दी गई हैं। जिसके औचित्य के पीछे केवल उनकास्वार्थ ही जुड़ा हुआ है।

इसी प्रकार महिलाओं और पुरुषों तथा उभय पक्षीय मान्यता प्राप्त प्रचलन में हैं। धन दौलत सम्पत्ति को मानव ने सबकुछ मान लिया है। वर्ष में सभी प्रकार के त्यौहार आते हैं, लेकिन उन सबमें से उसने धनतेरस को इतना महत्व दिया है कि उसकी तुलना में सब पीछे ही नजर आते हैं। धनतेरस पूंजीवादी मान्यता वालोंका प्रमुख त्यौहार है। दीवाली अवसर त्यौहार का पहला दिन धनतेरस दूसरा जिसे हम रूपचौदस यम चतुर्दशी और तीसरा अमावस्या लक्ष्मपूजन का दिन होता है। यह तीसरा दिन दीवाली (दीपावली) का दिन होता है। जिसे गरीब अमीर सभी अपने वैभव (हैसियत) के अनुसार मनाते हैं। झोपड़ी से महल, महलात सभी की साफ सफाई लिपाई पुताई साज सजावठ आदि जैसा सब कुछ किया जाता है।

दीवाली दीपावली पर्व का प्रारंभ धनतेरस से होता है। इस धनतेरस के दिन जिनका जन्म हुआ हो वे तो बहुत ही भाग्यशाली तो क्या बड़भागी ही मानते हैं। कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी के इस दिन जिसे हम साधारण बोलचाल में धन तेरस कहते हैं मान्यता है कि इस दिन को आयुर्वेद प्रवर्तक धनवन्तरी जयंती मनाते हैं। इस दिन यमराज को दीपदान अशुभ को शुभ की कामना से करते हैं। दूसरे पक्ष में यह भी मान्यता है कि इस दिन जेवर बर्तन आदि वस्तुओं को क्रय किया जाता है। आधुनिकता में इस खरीद परम्परा को बहुत ज्यादा श्रेय देकर मनाया जाता है। इस दिन अपने यहाँ के धन दौलत का ढेर लगा कर पूजन किया जाता है। कामना की जाती हैं कि यह धन दौलत का ढेर दिन दूना रात चौगुना तो क्या अनगिनत अनातौल बढे। लक्ष्मीजी श्री जी गणेश जी का पूजन करते हैं। बही खाताकलम दवात की पूजा व्यापार वाणिज्य रोजगार धंधा वृद्धि विस्तार भाव से करते हैं। बही खातों पर मांगलिक स्वस्तिक चित्र अंकित

कर शुभ-लाभ भाव से कर्मकाण्ड किये जाते हैं। इस सांस्कृतिक परम्परा से हटकर इस दिन धन की देवी लक्ष्मी को मान्यता दी जाती है। लक्ष्मीजी के पति विष्णु को विश्राम करने के लिए छोड़ दिया जाता है। जैसा कि देखने में आता है। लक्ष्मीजी के सत्यकार (सतकार) में इस धनतेरस के दिन जो भी धन इच्छा के कार्य होते हैं किये जाते हैं। एक प्लस तीन चार पूर्णांक तथा तीन को तेरह मान कर मान्यता दे दी जाती है। यह हम जानते हैं कि अदला बदली (बारटर) से मुद्रा विनियम (क्रय-विक्रय) तक धन दौलत की किसी न किसी प्रकार मान्यता की प्रधानता रही है। जिसकी अधिष्टात्री लक्ष्मी है। व्यापार व्यवसाय का यह प्रमुख दिन मान्य है। धनतेरस से प्रारम्भ इस दिवाली वर्ष का अन्दाज कई लोग जुआ, सट्टा, बीसी आदि के माध्यम से अपने लिये शुभ-अभुश का अन्दाज लगाते हैं।

दूसरा दिन चतुर्दशी का होता है। इसदिन महिलायें अपने रुप को निखारती हैं। श्रृंगार करती हैं। मान्यता के आधार पर माता अंजना के गर्भ से हनुमान जी का जन्म हुआ था। हनुमान जयंती भी मनाई जाती है। हनुमानजी को सिन्दूर चौला श्रृंगार स्वरूप ही चढ़ाया जाता है यहाँ यह मान्यता भी है कि हनुमान जी को सिन्दूर का चौला भक्ति त्याग निष्काम, ब्रह्मचर्यपालन का जैसा मांगलिक गुणों के कारण चढ़ाया जाता है। सांस्कृतिक रूप से मान्यता में हनुमान जी को यह स्थान भी प्राप्त है। उधर इस चतुर्दशी को यम चतुर्दशी के साथ रूप चौदस भी कहा जाता है। जिस दिन महिलायें रूप निखार श्रृंगार भी करती हैं। इस दिन महिला भाव रूप निखार साज श्रृंगार प्रसन्नता से सराबोर रहता है। घर आंगन रसोई दरवाजे सजाये जाते हैं। दीपक रखे जाते हैं। मांगलिक चिन्ह अंकित किये जाते हैं। तिल तेल की मान्यता है कि निरोग जीवन की कामना व्यक्त की जाती है। महिला वर्ग के लिए यह दिन विशेष हितकारक माना जाता है, यों कहे कि घर गृहस्थी की लक्ष्मी प्रसन्नता से सराबोर रहती है।

लक्ष्मी को मनाने पूजने का तीसरे दिन अर्थात अमावस्या का आता है। व्यावसायिक स्थान कारखाना, घर, भवन आदि को सजाया जाता है। लक्ष्मीपूजन किया जाता है आतिशबाजी की जाती है। आदि आदि। फिर रामावतार का दिन का दीवाली जब रामचंद्रजी अयोध्या लौटे तो दीवाली त्यौहार मनाया था। उस परम्परात्मक स्मृति के साथ दीवाली त्यौहार का चौथा दिन द्वापर कृष्णकाल का गोवर्धन पूजन कर स्मृति को ताजा किया जाता है। फिर भैया दूज मनाया जाता है। परिवार प्रथा में भैय्या दूज का दिन पुरुष प्रधान दृष्टि से अपना मायका और मतृ दृष्टि से ससुराल अर्थात् दोनों परिवारों की कुशल कामला व्यक्त करने का आशय से मनाया जाता है।

यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि वर्तमान भौतिकवादी समय है। नारी अभ्योदय को मान्यता है। धन की दान, भोग और नशा तीन गति हैं। वर्तमान युग परिवर्तन युग निर्माणी समय में धन दान सदुपयोग भोग कुटुम्ब भरण पोषण अर्थात खान पान, रहन-सहन आदि अर्थात स्तरण सुधार में उपयोग किया जाय मन का भाव होता है। धन नाश की चोरी, डकैती तथा कालेधन का संग्रह रखरखाव अनैतिक कार्यों में खर्च आदि पर स्वतः नाश की ही तो दशा होती है। युग निर्माण प्रज्ञा अभियान के साये में इस धनतेरस के धन, रूप सौंदर्य वैभव का उपयोग स्वस्थ्य, तन, स्वच्छ मन, सभ्य परिवार, उन्नत राष्ट्र निर्माण में करें तो देशकाल समय समाज सभी गौरवान्वित होंगे।व्यक्ति से परिवार, परिवार से कुटुम्ब, समाज, अग्रसर होकर राष्ट्रोत्थान के हामी बनते हैं। हमने हमारी सांस्कृतिक इस मान्य मान्यता विचार धारा की श्रृंखला को यहाँ इस शीर्षक से प्रकट किया है।

मानव मन सम्पन्न, शालीन, सभ्य, नीति रीति का कारक नेक नियत प्रकृति का धारक, कुशल, हितैषी, प्रतिभावान, विभूतिवान, युग नेतृत्व का अग्रगामी आदि आदि बनता है तो ही हम हमारे सांस्कृतिक विरासत में मिले विचारों को नवीन जामा पहना कर समय सामायिक बना सकते हैं। यह क्रम

सृष्टि रचना से बराबर चला आया है। परिवर्तन काल क्रमानुसार होते रहे हैं जो अब भी होना है। होते रहेंगे भी। यह सब बुद्धिवादी युग के हवाले हो चुका है। जहाँ नारी की प्रधानता, धन को महत्व दिया गया है। इस शीर्ष विवरण में इस विचार आशय के संक्षिप्त सांकेतिक रूप से प्रस्तुत का प्रयास किया है। जिस पर हर व्यक्ति अपनी-अपनी मनोवृत्ति के अनुसार चिंतन, मनन, सोच विचार समझ, बुद्धि, बौद्धिक क्षमता, प्रतिभा, विभूति, स्तर पर अपना मन मंथन करने के लिए स्वतंत्र है। धन तेरस मन चौदस के शीर्ष के समान हम भी अपने प्रकार से विचार बनाने का कोई भी माध्यम बना सकते हैं। हमारा आशय तो स्पष्ट है कि भौतिकवादी युग में भौतिक सम्पन्नता मानवीय मान्यता के शालीन मर्यादा मय उपयोग, उपभोग से है। फिर अपनी अपनी इच्छा जिज्ञासा और मन मानसिकता के अनुकूल सोचा समझा जा सकता है। कुरीति, बुरी आदत, अनावश्यक चलन को त्यागने, संकल्पित होने के जो ऐसे विशेष अवसर आते हैं उन दिनों व्रत, प्रण, संकल्प, सदवत्ति के लेने ही चाहिए। मन चौदस से यह भी आशय समझना समझाना चाहिए। सार्थकता और सिद्ध होती है। यह सब मन मानसिकता पर बहुत कुछ निर्भर है कि हम स्वस्थ परम्पराओं को प्रचलन में लाये।

२०. अन्तर यात्रा मन उत्साह

परमात्मा को किसी स्थान विशेष पर स्थापित नहीं किया जा सकता है। नाही उसे निर्मित किया जा सकता है। वह अपने आप में सब कुछ है। उसके स्मरण मात्र से मनुष्य साधारण से उत्कृष्टभाव भावना विचार, सोच समझ, बुद्धि, बौद्धिक, ज्ञान, सूझबूझ आदि आदि दृष्टि से असाधारण प्रतिभा को प्राप्त कर लेता है। वह मोह माया, अहंकार, छळ, कपट, धूर्तता चालाकी आदि से ऊपर उठ जाता है। कर्मकाण्ड तो मन के लगाने के तौर तरीके हैं। परमात्मा थोड़े ही कर्मकाण्डों को पसंद करता है। कर्मकाण्ड, गीत, संगीत, पाठ, पूजा आरती यह सब मन बुद्धि की इन्द्रियों की एकता को आकर्षित करने के माध्यम है। जिससे एकाग्रता आती है। प्रयुक्त ली, चावल, हल्दी आदि स्वास्थ्यवर्धक स्फूर्ति दायक होते हैं। इनका रंग कल्याणकारी भावों को उत्पन्न करते हैं। पूर्वकालिक वैज्ञानिक गुरु होता था। वर्तमान का वैज्ञानिक शोधकर्ता है। वर्तमान वैज्ञानिक ने इंद्रियों को वश में करने की क्षमता नहीं है। यह ऐसा भी हुआ है कि जो शरीर आज हमारा है वह अनेकों संतति रूपों से निकलकर यहाँ तक आया है। ऐसे में उसका मूल रूप तो रहा ही नहीं है। अभी तक इस शरीर के कितनेही माता-पिता बन चुके होंगे। जो हमको याद भी नहीं है। वर्तमान मनुष्य ने अपने आपको आरामी बना लिया है। वह कितने ही आपाधापी में लगारहता है। आज का मानव मुक्ति नहीं माँगता है। वैभव चाहता है, इसलिए वह परेशान भी ज्यादा है। वह भागा फिर रहा है। सम्पत्ति अर्जित करने के पीछे पड़ा है। वह धनदौलत सम्पत्ति का चौकीदार बन गया है। नींद के लिए गोली को लेना पड़ता है। डॉक्टरों के चंगुल में वह फँसा ही रहता है। विभिन्न रोगों का इलाज चलता ही रहता है। आत्मा शरीर छोड़ती है तो प्रसन्न होती है, क्योंकि वर्तमान से मुक्ति पाकर भविष्य पाने की खुशी होती है। मिलन, भेंट, बातचीत, प्रेम, पूजा, भक्ति से सभी व्यवस्था के रिश्ते हैं जिन्हें निभाया जाता है। मन को बुद्धि के सहारे पहुँचाने पर बौद्धिक चेतना आती है। उचित अनुचित का निर्णय

मन बुद्धि के सहारे ही होता है। ज्ञान बौद्धिक क्षमता पर निर्भर है। ईश्वर तत्व की अनुभूति नैतिक रूप से मन की कसावट, मानसिक वृत्ति, प्रवृत्ति के निर्माण और फिर मनन चिंतन से एकाग्रता के बाद भक्ति उत्पन्न होती है। विश्वास दृढ़ होता है। यह सब क्या है? अपने आपा का नियंत्रण इससे मानव मैं के परे होता है।

खुद को ईश्वर के निकट अहसास करता है। ईश्वर साधारण मनुष्य की कल्पना शक्ति के परे है। उसे मन बुद्धि इन्द्रियों को एकाग्र कर अपने अंदर अहसास किया जाता है। यह स्मरण ही अन्तरयात्रा है। जब मन लीन हो जाता है तो लगता है कि उसका साक्षात्कार हो गया है। अंतर यात्रा इसी का नाम है। अंतरयात्रा में मनभाव विभोर हो जाता है। सुधबुध भूल जाता है। वह समाधिस्थ जैसा लगता है। इस स्थिति में आकर मन अति उत्साहित हो जाता है। उसकी वाणी से भविष्य कथन जैसे विचार मिलने लगते हैं। चरित्र से नैतिकता मिलती है। व्यवहार से माधुर्य प्रेम प्यास बुझती है। यह स्थिति अंतरयात्रा में अन्तरयात्री की होती है। आसानी से मानव का इस स्थिति में पहुँचना कठिन है।

अन्तरयात्रा की स्थिति में मनुष्य उस दिव्यपरमात्म शक्ति की कल्पना के दायरे में आ जाता है। जिसका कोई स्वरूप होता ही नहीं है। यह उसके सत्य होने का प्रमाण है। इस शाश्वतता का कोई असत्य नहीं है। वह एक से अनेक की कल्पना में विस्तार हो जाता है। इस सनातनी प्रवृत्ति का कोई विकल्प नहीं है। मन बुद्धि इन्द्रि एक होकर इस अन्तरयात्रा में लीन हो जाते हैं। हम तो अनुभव की बात यह भी बता देना चाहते हैं कि जब मन बुद्धि इन्द्रयों को एकाग्र कर ध्यान किया जाता है तो सुप्त अवस्था जैसी स्थिति हो जाती है। सांसारिक आपाधापी से बिलकुल मन दूर हो जाता है। अभ्यास के द्वारा इस स्थिति में वृद्धि की जा सकती है। इस स्थिति में जो अनुभूति होती है. सत्य होती है ईश्वरीय सत्ता का इस स्थिति में अनुभूति जन्य ज्ञान होता है जो जागृत होकर मनुष्य को विचार और गुणों से अवतारी का आभास कराता है। उसके

क्रिया कलाप अवतारी के समान लगते हैं। मन क्रिया प्रधान होकर भविष्य का उल्लेख करने लगता है। इसी अवस्था को ज्ञान का ब्रह्मा भक्ति का विष्णु और क्रिया का परिवर्तनकारी शिवत्व का प्रादुर्भाव जैसा लगने लगता है। इस अन्तरयात्रा में भ्रमण करने से मानव महामानव सूक्ष्म की कारण सत्ता जैसा आभास करने लगता है। यहाँ अन्तरयात्रा का यह स्वभाविक उल्लेख है। इसमें बनावटी को बिलकुल स्थान नहीं मानना चाहिए। मनकी इस अन्तरयात्रा में आने की क्षमता से योगी ध्यानी तपस्वी समाधिस्त हो पाते हैं। जो कोई साधारण स्थिति में यदि रहता भी है तो उसकी आत्मशक्ति इसी स्तर की होती है। इस आत्म स्थिति में आने के बाद ही व्यक्ति से असाधारण विचारभाव, भावना, प्रकट होती है हमारा तो यह भी मानना है कि इस ईश्वरीय अनुकम्पा होने पर ही व्यासजी ने आर्ष साहित्य का लेखन किया है। वाल्मीक ने वाल्मीक रामायण, तुलसीदास ने राम चरित्रमानस, सूरदास के पद, कबीर ने कबीरग्रंथावली के दोहे विचार दिये हैं। सम्भव है इसी प्रेरणा से ओतप्रोत जो भी हो अब युग प्रभावी अवतारी सत्ता का साहित्य भी निर्माण हो? सामने आने की तैयारी में भी हो सकता है। यहसब उस सत्ता की कृपा का ही खेल है। यह मन की बात जो आप हम कर रहे हैं, वह इसी श्रेणी की विचारधारा है। जो उस कृपा के मिलने पर ही प्रकट हो रहा है।

अन्तरयात्रा से मन उत्साही भी ऐसे ही पात्र का होता है जो उस स्तर के विचारवान और गुणी होते हैं। यह प्रतिभा भी तो ऐसे ही शरीर को मिलती है जिसे इस धरा पर उस काम के लिए वह सत्ता चुनकर कार्य निमित्त भेजती है। जिसका कोई किसी भी प्रकार से आभास नहीं कर पाता है। सम्बन्धित व्यक्ति को कुछेक अनुभूति अवश्य हुआ करती है। उसके कार्यकलाप इस स्तर के होते भी रहते हैं।

कल का मानव भले पढ़ा लिखा नहीं था। हो भी तो उसे वर्तमान के समान पढ़ा लिखा भी माना जाय तब वह वर्तमान जैसा सम्भव है व्यस्त भी

नहीं था। वह धार्मिक तो था। शान्त सुखी भी था। उसे तनाव भी नहीं थे. जबकि आज का मानव उसकी तुलना में व्यस्त, अशान्त, तनावग्रस्त बैचेन, धन का लोभी है। उसे अपने अस्तित्व रक्षा के साधन सामग्री जुटाने से ही फुरसत नहीं मिलती है। उसे संतोष नहीं है। मन लगता नहीं है। फिर वह आध्यात्म के नजदीक कैसे आयेगा। कठिन है। उसे पितर लोक द्वार बंद मिलता है। चिदानंद का अधिष्ठाता चंद्रमा की शीतलता उसे आभास नहीं हो पाता है। चंद्रमा की सोलह कलाओं का अमृत्तोपम स्वाद नहीं मिल पाता है। यह सब अन्तरयात्रा से ही संभव है।

अन्तरयात्रा में पहुँचने पर मानव को ईन्द्रादि स्थाई नित्य देवता का आभास होता है। समय समय उत्पन्न मान्य देव के नैमित्तिक की उसे आवश्यकता नहीं होती है।

उसके जीवन का प्रेम और सौन्दर्य एक ही तत्व ईश्वरीय विभूति हो जाता है। उसका जीवन प्रेम और सौन्दर्य एक ही तत्व लगता है। प्रेम ही जीवन में सुगन्ध वाला पुष्प भी स्थिति को बना देता है।

स्मरण भी अन्तरयात्रा में मनुष्य के पहुँचने पर जो आभास की स्थिति बनती है उसका हमने उपरोक्त वर्णन में बताने की कोशिश की है। इस दशा में मन की जो स्थिति बनती है वह उत्साही होती है। असंभव को संभव बनाने वाली जिज्ञासायें उत्पन्न होती हैं। मनुष्य समझ के अभाव में मन की भाव भावना से दूर रहता है। जबकि मन उत्साहित होकर तत्पर रहता है। लेकिन आध्यात्म विज्ञान से दूर मानव मानव स्थिति को समझ नहीं पाता है। क्योंकि भौतिक जगत के क्रिया कलाप उसे आध्यामत से दूर ले जाते हैं। हमारा सुझाव तो यह है कि अन्तरयात्रा में आने के लिए मानव को भौतिक जगत की आवश्कताओं को न्यूनतम कर सरल सादगी का जीवन बिताये तो उसे सफलता मिलने में बहुत आसानी होगी। मन की बात पुष्तक में अन्तरयात्रा को शामिल

करने का हमारा आशय भौतिक मानव को आध्यात्म का अहसास कराना है। चाहे जैसे प्रयोग कर देखा जा सकता है। हमारा तो यह भी मानना है और विश्वास भी दिलाना है कि मन आत्मिक दृष्टि से और आध्यात्म की दृष्टि से अन्तरयात्रा के अनुभवी का अधिक उत्साही होता है। बिना उत्साही हुए मन मानसिक विकास में प्रवेश उसे अति आसान हो जाता है। भौतिकवादी इस प्रकार के चिंतन में प्रायः आ भी नहीं पाते हैं। वे प्रयोगशाला के परिणामों तक अवश्य सीमित और संतुष्ट रहते हैं। अन्तरयात्रा से संबंधित होने पर मन निश्चित ही उत्साही होता है। यह अकाट्य तथ्य है। झूठलाया नहीं जा सकता है।

२१. देवी देवता मन देखते हैं

देवी देवता भोग प्रसाद के भूखे प्यासे नहीं होते हैं, उन्हें भेंट दक्षिणा, चढोतरी नहीं चाहिये। वे स्वागत सत्यकार, चापलूसी के लालची भी नहीं होते हैं। उनकी ओर से भेदभाव नहीं रखा जाता है। हाँ, कर्मकाण्डी को अपने भरण-पोषण का लोभ लालच अवश्य होता है। इसी निमित्त मेवा, फल, भोग वस्त्र, स्वर्णपात्र, रजत प्रतीक, गौदान, नकदी रुपया पैसा आदि आदि पूजा स्वागत विदाई के साथ दान दक्षिणा भेंट चढ़ावा अनुदान आदि अवश्य लिया दिया जाता है। इच्छुक भक्तों से सेवा ली जाती है होता यह सब उन्हीं के नाम पर है। यदि कर्मकाण्डी अपने नाम से चाहे और माँगे तो हो सकता कोई कुछ भी देने को तैयार नहीं हो।

अपने आत्मदेव के माध्यम से आध्यात्य स्तर की चढ़ाई चढ़ाने के लिए मन बुद्धि इन्द्रियों के एकाग्र कर भाव भावना विचार अवश्य उत्पन्न किये जाते हैं। इसके निमित्त देवी देवता बनाया मनाया जाता है। मन स्वयं सक्षम है कि हमको आध्यात्म के उच्च शिखर तक पहुँचा दें, लेकिन इन्द्रियाँ अपनी आदत से बाज आये जब। उन्हें नियंत्रित करने के लिए ग्यारहवीं इन्द्रि का स्थान मन को मिला हुआ है। इस मन को ही मनाना पड़ता है। चाहे देवी देवता का पूजा पाठ संकीर्तन, प्रवचन हो या हमें अपने शरीर की कोई किसी आवश्यकता का पूर्ति करना हो। बिना मन के सहमत हुए कुछ भी नहीं किया जा सकता है।

मानव की आस्तिकता, ईश्वर विश्वास, आध्यात्मिकता आत्मावलम्बन और धार्मिकता, कर्तव्य परायणता होती है। अद्भुत क्षमताओं की सिद्धि प्राप्ति के लिए आत्मदेव को साधना पड़ता है। जिसके लिए हमारी मनः स्थिति को इस प्रकार के गुण और विचारों से सराबोर करना पड़ता है। प्रगतिशीलता आत्मोत्कर्ष, संयमशीलता इंन्द्रिय निग्रह समरस्वता- मानसिक संतुलन, पारिवारिकता आत्मविस्तार प्रक्रिया सामाजिकता, नागरिकता, शालीनता,

स्वच्छता, सादगी, सरलता, नियमितता, समयश्रम का संतुलन प्रामाणिकता, ईमानदारी, जिम्मेदारी, समझदारी, विवेकशीलता, औचित्य की मान्यता, परमार्थ परायणता, अंशदान वस्तुदान, प्रखरता, साहस पराक्रम एवं भाव भावनाउचित की सार्थकता, भावना विचारणा और क्रियाशीलता मानवीय ऐसे पक्ष हैं कि मन की गति अपने लिए तत्पर बनी रहती है। इसके लिए मन को संकल्पी, संयमी, विश्वासी और श्रद्धालु बनाया जाता है। भूल चूक होने पर प्रायश्चित भी करना पड़ता है। दुष्कर्मों को सूचीबद्ध करें कि दूसरों को कितनी हानि पहुँचाई है। इसके लिए भारी प्रायश्चित करना पड़ेगा। दुष्कर्मों का आत्मचिंतन विज्ञजनों के समक्ष प्रकट संकल्पित होना पड़ेगा। आत्मस्वीकृति के साथ संकल्प पूर्ति से काम चल जायगा। पश्चाताप के रूप में वृत्त, उपवास, उपासना, साधना, अनुष्ठान, तीर्थ सेवन एवं परमार्थ परायणता के काम करना पड़ेगा। पश्चाताप का समाधान शान्ति का अहसास होगा। अन्तिम ओर के लिए विचार करने लायक यह है कि व्यक्ति अथवा समाज आदि जिस किसी को जो हमसे हानि हई है उसकी क्षतिपूर्ति करना। यह व्यवहारिकता में सबसे प्रभावशाली है। इस प्रकार से आत्मदेव के सानिध्य का अहसास किया जा सकता है। आधुनिक तरीका भी यही है।

उपरोक्त के लिए मन का संतुलन भी तो बनाना पड़ेगा। जिसके लिए धैर्य रखना, क्षमा करना, क्षमा माँगना, मन को वश में रखना, चोरी न करना, पवित्रता बनाए रखान, इन्द्रियों को वश में रखना, सात्विक बुद्धि रखी जाय, सत्य का पालन करना, क्रोध, ईर्ष्या नहीं करना। ये ऐसे लक्षण हैं कि मन का संतुलन सदा बना रह सकता है। दैनिक जीवन व्यवहार में मन कुछ ऐसे अनावश्यक प्रतिबंधित काम भी छिप कर कर बैठता है जैसे पाप, दुराचार, व्यसन, विधानभंजक आदि। इसके लिए मन को दृढ़ बनाया जाय। मन को यह माने कि अधिकारों के पीछे नहीं भाग कर्त्तव्यों का निर्वाह करे। समस्या का समाधान आसान होता चला जायगा। मन मस्तिष्क, दिल-दिमाग की सही बात

तो यह है कि मन का दिल से संबंध होता है। मस्तिष्क और दिमाक पर्यायवाची हैं। शरीर में आत्मा का संचालक मन है। मन ही को यहाँ देवी देवता कहा जा सकता है, क्योंकि मन आत्मा की विद्यमानता का संचालनक होता है। मन की इस स्थिति को स्पष्ट दर्शनशास्त्र द्वारा किया जाता है तत्वशास्त्र – ईश्वर भी विद्यमानता, मनोविज्ञान, मन मानसिक इन्द्रियों की विद्यमानता, नीतिशास्त्र – मन मानसिकता के सिद्धांतन व्यवहार और तर्क शास्त्र वाणी से स्पष्ट करना, दर्शनशास्त्र मन की कली खोल कर रख देता है शरीर-मन- मस्तिष्क- हृदय-आत्मा-प्राण कहने को भले अलग अलग हो, लेकिन इनमें मन का स्थान प्रमुख है। मन की आज्ञा बिना ये कोई कुछ भी नहीं कर सकते हैं। जिस प्रकार अन्न के बिना तन, ज्ञान के बिना मन, कर्म के बिना आत्मा जड़ है। दिशा निर्देशक के बिना जहाज दिशा में नहीं चल सकता है। इसी प्रकार मानव को मानवता के लिए मन है। मन की मानवता ही मनुष्य को देवी देवता का आभास कराता है। अनुकूल दिशा देता है। उपरोक्त गुण चेतना को विद्यमानता के कारण मानव को देव- देवी की संज्ञा दी जाती है।

प्राय: सभी त्यौहार और अवसरों पर शक्ति नाम पूजन, पाठ, आराधना, साधना आदि किया जाता है। नवरात्रा पर नवदुर्गा, दीवाली पर लक्ष्मी, बसंत पर सरस्वती, गायत्री जयंती पर गायत्री, निश्चित दिन और तिथि पर मनोकामना पूर्ति निमित्त स्थानीय और अपनी मान्यता के देवी देवता आदि आदि अवसरों पर शक्ति की पूजा होती है। की जाती है। यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि शक्ति (देवी) के साथ देव पक्ष को क्यों नहीं महत्व दिया जाता है। उत्तर यह है कि शक्ति आशय के साथ वे भी मान्य हैं। संलग्न हैं।

उपरोक्त विवेचना आध्यात्म, धरातल पर व्यावहारिकता को लेकर की गई है। तो यह स्पष्ट ही हो जाना चाहिये कि देवी देवता का स्वरूप होता कैसा है? इस धरातल पर देवी देवता मन की आराध्य क्षमता के स्वरूप को दर्शाने वाला होता है। जिसे प्रथक नामकरण कर मनुहार की जाती है। आत्मा के

स्वरूपाधिकृत मन को माना जाता है। इसी आधार पर वान्छीयता को देखकर उसे देवस्वरूप को निर्धारित कर वरण किया जाता है। उपासना साधना का उन्हें प्रतीक बनाया जाता है।

हमने अध्याय के शीर्षक के अनुसार विवेचना की है। यहाँ हमारा यह भी स्पष्ट विचार है कि जिस निमित्त देवी देवता का वरण किया जाता है उस कार्य की जवाबदारी उनसे पूरी होती है। ये निमित्त देव देवी होते हैं। माता-पिता क्या है? ये प्रत्यक्ष देवीदेवता होते हैं। यदि समझा जाय तो ये प्रत्यक्ष देवी-देवता। हमको हमारे जन्म से लेकर जब तक जीवित रहते हैं तब तक हमारे हर कष्ट कठिनाई को दूर करने में सहायक तो क्या पूरी जवाबदारी निभाते हैं। हमारी दुःख तकलीफ को दूर कर ही ये पीछा छोड़ते हैं। चाहिए तो यह कि इनको देवी देवता मानकर यदि दृष्टिकोण अपनाया जाय तो इनका आशीर्वाद अलभ्य सिद्ध भी होगा। कठिनाईयाँ टिकेंगी ही नहीं। लेकिन इस प्रकार की भाव भावना का मन भी तो होना चाहिए। मन की शक्ति क्षमता को हमने इस पुस्तक के सभी अध्यायों में अपने अपने दृष्टिकोण से देखा है। व्यक्त किया है। मन के माध्यम से हम हमारी आध्यात्मिक क्षमता यदि उनमें देते हैं तो उनकी शक्ति अपने आप जागृत हो उठती है और हमारी कठिनाई का हल वे निकाल देते हैं। दैविक शक्ति अनुभूति से अवगत कराती है। माता-पिता, दादा-दादी, नाना-नानी, आदरणीय बुजुर्ग और वरिष्ठगण तथा गुरु और मान्य आत्मशक्ति धारक साधक सभी हमारे लिए देवी देवता ही के समान जवाबदारी निभाते हैं। जिस प्रकार माता-पिता कभी विरुद्ध नहीं होते हैं, यही तो उनकी उदारता समानता है जो देवी देवताओं का गुण है। वे औझल देवी देवता होते हैं तो ये प्रत्यक्ष देवी देवता होते हैं। मातृ-पितृ चरण कमल को सम्बोधित इसी आधार पर किया जाता है। देखा यह जाता है कि हमारा मन वैसा और उस स्तर का श्रद्धावान, विश्वासदायक भी तो होना चाहिए। आशीष फलीभूत इसी भाव

संवेदना के होने से होते हैं। मन मानसिकता उनको देवी- देवता का स्थान देने लायक बनाना पड़ेगा। तब उनके अनुदान वरदान अवश्य ही बरसेंगे।

--- * ---* ---* ---

२२. धर्म मर्म मन कर्त्तव्य कर्म

मानव संगठन व्यवस्था शासन तंत्र के द्वारा बनाए कानून मानव को जीवन व्यतीत करने के लिए जो नियंत्रित स्वतंत्रता देते हैं। ठीक वैसा ही ईश्वरीय प्रकृति - प्राकृतिक विधान धर्म मर्म मानवीय मन मानसिकता पर नियंत्रण करता है। इस मानसिकता के नियंत्रण पर मन शरीर इन्द्रियों को उनके अधिकार क्षेत्र में काम करने की स्वतंत्रता देता है। यदि धर्म जैसा स्वतः नियंत्रण विधान नहीं हो तो मन नियंत्रण से मुक्त होकर इंन्द्रियों से काम कैसे कराता रहेगा? संभव नहीं होगा। धर्म मर्म मानव मन पर नियंत्रण है। साधारण बोलचाल व्यवहार में मानवीय कर्त्तव्य निर्वाह में धर्म धार्मिकता को देखा जाता है। मानवीयता के विरुद्ध मानव के धर्म को उचित अनुचित ठहराया जाता है। एक प्रकार से अघोषित कानून धर्म को कहा जा सकता है, लेकिन शासकीय नियम कानून में फिर भी धर्म मर्म आधारित प्रकृति प्राकृतिक आचार्य संहिता के रूप में मानव धर्म आधार पर मानव रक्षा कानून के द्वारा न्याय क्षेत्र में मान्य मान्यता के अनुसार स्थान दिया जाता है। भाषा शब्द लपेट कानून शब्दावली का होता है। सामान्य जीवन में धर्म धार्मिकता मानव जीवन में नैतिक नियंत्रण कहा जा सकता है। शासन कानून मानव को कर्त्तव्य निर्वाह के अधिकार देते हैं। तो धर्म धार्मिकता, मानव को अधिकार प्राप्ति की दौड़ छोड़ से हटकर कर्त्तव्य निर्वाह पर जोर देता है। कहा जाता है कि अधिकार छोड़ कर्त्तव्य पर ध्यान दो। कर्त्तव्य कर्म, अपने आप अधिकार प्राप्ति को अधिकृत कर देंगे। अतः धर्म धार्मिकता, अपनाई जाती है। पालन किया जाता है। शासकीय कानून में परम्परा को मान्यता भी दी जाती है। उसका यही कारण है।

धर्म का साधारण असाधारण दोनों दृष्टि से मर्म यही है कि व्यक्ति सदाचरण पूर्वक जीवन व्यतीत करे, यह सदाचरण धर्म,मर्म ही है। धर्म, मर्म के सदाचरण नहीं कहे तो क्या कहें हमारी आर्ष आचार संहिता के अनुसार जिन

कर्मों के पालन से लोक और परलोक दोनों सिद्ध होते हों उन्हें धर्म कहा जाता है। दूसरे शब्दों में दुष्यवृत्ति त्याग सद्वृत्ति धारण, ग्रहण विस्तार आदि शब्द वाक्यों का मूल आशाय धर्म धार्मिकता को महत्व देना है। दैनिक दिनचर्या धर्म पालन की दृष्टि से ही निर्धारित हुई है। वह स्वतः जीवन निर्वाह में स्वंय की रक्षा मानव धर्म का आधार है। मानव जीवन निर्वाह में धैर्य, क्षमा, मन पर नियंत्रण चोरी त्याग, पवित्रता, इन्द्रिय संयम, सात्विक बुद्धि ज्ञान प्राप्ति सत्याचरण, क्रोध न करना, ईष्या नहीं रखना अनैतिक कार्यों से दूर रहना, शालीनता का व्यवहार करना आदि आदि मन क्रिया धर्म पालन के लक्षण ही तो हैं। और नैतिक धर्म होता भी क्या है। ऐसे ही तो आचरण आते हैं। उधर शासकीय विधान का उल्लंघन करना अपराध होता है। साथ ही शासकीय कानून के अनुसार काम करने के ढंग के बाधारहित रखना कानून का पालन है। आदि आदि मन का कर्म धर्म कारण ही तो कहलाता है। धर्म अर्थात धारण किया जाना, धर्म कोई एक निश्चित क्रिया कलाप का ही नाम नहीं है। अपितु धर्म नाम का अर्थ उस सभ्यता और संस्कृति का नाम एवं अर्थ है जिसे जो कुछ नाम दिया वह है। धर्म मानव मूल्य परक धारणा है। जब विशेष सम्प्रदाय जिसकी बात की जाती हो तो उसके क्रिया कलापों को पालन करने वाला होने के व्यवहार को धर्म कहा जाता है। जो धर्म नहीं होकर मत है, क्योंकि वह तो साम्प्रदायिक अनुकरण है। इसके अतिरिक्त यह है कि धर्म मानव को मूल्य परक विचारवान से चरित्रवान और उसे व्यवहार में लाकर स्वयं से लेकर सर्वसाधारण के लिए उपयोगी हितैषी हो वह धर्म होता है। उसे ही सनातन कहते हैं। अन्यथा वह न तो धर्म है न सनातन है। वह केवल मत विशेष कहलाने लायक है। धर्म नहीं। इसी आधार पर यह भी देखा जाय कि जिसे धर्म कहा जा रहा है, उसके विचार गुण व्यवहार जब मानव मात्रा के लिए उपयोगी नहीं हैं और एक निश्चित समुदाय के लिए हैं तो वह सम्प्रदाय विशेष का ही मत हुआ। न वह सनातन है न जन सामान्य के उपयोगी का कोई विचार है। वह मत मात्र ही है। धर्म नहीं कहा जा सकता।

धर्म सार्वजनिक होता है सनातम होता है। वह धर्म है। नहीं तो संकुचितता है कथा, प्रवचन, यज्ञ, कर्मकाण्ड आदि धर्म धार्मिक के आयोजन कहे जा सकते हैं लेकिन उनमें पारम्परिक पारिवारिक के साथ प्रतिष्ठा का अहं भी तो छिपा हुआ होता है। आयोजन परमात्मा का अन्वेषण नहीं होता है, लेकिन उसके प्रति संकल्पित होना होता है कि हम धर्म धारक हैं। अपने जीवन में अच्छाइयों को उतारेंगे, धर्म धार्मिक आयोजनों को हम जीने की राह कह सकते हैं। धर्म तो अपने आप पालन होता है। समुद्र तैरता रहता है। भले वह कहीं नहीं जाय। उसमें लहरियाँ उठा करती हैं। लगता है वह आगे बढ़ता जा रहा है, लेकिन जब समझा जाय तो वे लहरियाँ है। इसी प्रकार तलाब की स्थिति होती है। लेकिन नदी की स्थिति अलग होती है। उसमें पानी बहतारहता है। इसी प्रकार से सनातन है जो समुद्र के समान हैं जो स्थिर सर्वहितकारी है। नदी की अपनी धारा है जो चलती रहती है। सम्प्रदाय विशेष चलते रहते हैं। जो समुद्र के समान अपने स्थान पर नहीं होते हैं। प्रकृति प्राकृतिक मौसम ऋतु जिनसे समुद्र जैसा समर्थन मिलता है अपने आप ही चलते रहते हैं। लहरियों के समान हमको दिखते हैं। समय सामयिक आयोजन हमको लहरियों जैसा आभास कराते रहते हैं। लहरियाँ समुद्र के स्थिर पानी को चलता हुआ बताती है। समुद्र की स्थिरता गंभीर है। सत्य गंभीरता है। मन की स्थिति भी ऐसी ही है। मन समुद्र और नदी दोनों का समर्थक है। सम्प्रदाय के रूप में मन की चंचलता और सनातन के रूप में वह समुद्र है। एक से जीवन में सत्यता की स्थिरता है तो दूसरे में चंचलता है। मन अपने अपने प्रकार का समर्थक है। मन का समर्थन धर्म का मर्म है। इससे उत्पन्न आस्था, श्रद्धा, विश्वास, उसके कर्त्तव्य कर्म परिणाम हैं। जिन्हें निर्वाह किया जाता है। पितृ ऋण समाज ऋण कर्त्तव्य कर्म से उऋण हुआ जाता है।

परिवार मानव का छोटा संगठन है तो व्यवस्था अर्थात शासन बड़ा संगठन है। मानव मन का कर्त्तव्य कर्म परिवार और शासन व्यवस्था दोनों में

अपने-अपने प्रकार से कर्त्तव्य कर्म का निर्वाह होता है। व्यक्ति के परिवार हितैषी काम पारिवारिक धर्म हैं। दूसरी ओर व्यक्ति के व्यवस्था अर्थात शासन तंत्र में योजना आदि से सार्वजनिक काम उसके कर्त्तव्य कर्म हैं। व्यवस्था संचालन परिवार और शासन दोनों ही की चाहिए। बिना परिवार के समाज और बिना समाजों के बिना शासन व्यवस्था नहीं होती है, लेकिन व्यक्ति दोनों ही जगह अपने कर्त्तव्य कर्म का निर्वाह करता है। धर्म मर्म में कर्त्तव्य कर्म अपने अपने प्रकार का है। मन का कर्त्तव्य धर्म जिसे साम्प्रदायिक और सनातनी कहा जाता है। आखिर कार मन अपने कर्त्तव्य कर्म के माध्यम से धर्म मर्म का निर्वाह करता है। फिर उसे संकुचित कहें या विशाल कुछ भी कहते रहे। यदि संकुचित भी है तो वह विशाल में शामिल होना ही है। विभिन्न संकुचितों के विशाल रूप से निर्वाह सनातनी हो ही जाता है। तब ही वह सार्वजनिक कहा जायगा। प्रकृति प्राकृतिक ईश्वरीय विधान समर्थन भी सार्वजनिक होने पर सनातन हो पाता है। अन्यथा समय सामयिक कर्त्तव्य पूर्ति समर्थक होकर सार्वजनिक दायरे से बाहर होकर संकुचित बना रह सकता है। धर्म कर्त्तव्य मर्म प्रकृति प्राकृतिक ईश्वरीय स्वरूप समर्थक होता है। जो सत्य सनातन कहलाता है। वही कायम भी रहता है। धर्म का मर्म मन कर्त्तव्य कर्म है, किंतु वह सार्वजनिक आशय से सनातनी है। यही धर्म का मर्म है। मन उस सनातनी कर्त्तव्य कर्म का श्रेयधारी होता है।

--- * ---* ---* ---

२३. रंग रंगीला मन प्रसन्न

मन मंथन अर्थात सोच विचार के समय मस्तिष्क पटल पर ऐसे चल चित्र चलने लगते हैं कि जो चित्र विचित्र रंग बिरंगे विभिन्न आशय को प्रकट करने के संकेत देते हैं। यहाँ समझने की जरूरत होना चाहिए। जिससे कि भूत की गलतियों का आभास, भविष्य के संकेत स्पष्ट होते हैं। वर्तमान में इतनी सजगता भी चाहिए कि संकेत सूचनायें संदेश समझे जा सकें. मनः स्मृति और कल्पनाओं के केंद्र में एकत्र कर रख लिया जाता है. धारण अवधारणाओं को इससे जोड़ा जाता है। चित्रण में रंगों का विश्लेषण किया जाता है। मनोवृत्ति से प्रज्ञा को जगाया जाता है। मन प्रज्ञा दोनों मिलकर चित्र चित्रण रंग विश्लेषण मन भावन को परखा जाता है।

वर्षा ऋतु में प्राय: इंद्र धनुष आकाश में दिखाई देता है। उसमें कितने रंग होते हैं। देखे होंगे गिने भी होंगे। वे किसके पास कौन से रंग के पास होते हैं। क्यों होते हैं। आदि कल्पनायें मन मस्तिष्क में आती ही होगी। समाधान मालूम कर सोचकर समझकर जैसे भी हो वैसे प्रयत्न किया जाता है। मानव मनोभूमि में भी रंगों का अपना आकर्षण प्रयोजन होता है। यहाँ हम संक्षिप्त में उन्हें पहचानने स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं---

मानव जीवन इन्द्र धनुषी अर्थात विभिन्न रंगयुक्त होता है। रंग रूप आँखों से देखे जाते हैं। जीवन लाली रंग बिरंगी लगती है। हर क्षण रंगों का प्रभाव परीक्षण होता है। मन बुद्धि की दशा स्पष्ट होती है। शरीर, हड्डी, माँस, मज्जा, रक्त, रस, शुक्र, वसा, सात होते हैं इनके अपने रंग होते हैं। इनसे ग्रहों का सम्बन्ध होता है। कौन से गृह के कुपित से कौन सी बीमारी होती है। उपचार के अमुक रंग के अमुक मणि भी होते हैं, जानकार इसको अच्छी तरह स्पष्ट करते हैं। इनका शरीर स्थापित चक्रों ऊर्जा आभामंडल, वातावरण प्रभावित होकर विलीन हो जाता है। स्वाधिष्ठान नारंगी, मणिपूरक पीला, अनाहत हरा,

विशुद्ध नीला, आज्ञा हल्का बैंगनी, सहस्रार बैंगनी रंग रंगीन ऊर्जा के स्थान होते हैं। ऊर्जा नाड़ियों के मार्ग से बहकर विचरण करती हैं। प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान, इनके स्वरूप होते हैं। जिनसे शरीर सधा रहता है। मन मस्तिष्क शरीर का सारा परिष्कार चक्र कार्यों के रंग से प्रभावित होता है। मन पर जिसके प्रभाव स्पष्ट दिखाई भी पड़ते हैं। वह रंग पसंदगी है। चहरे पर ओज शरीर अन्दर सम्पन्दन से मानस को स्पष्ट समझा जाता है। कौन सा रंग क्या कहता है। हमारी पसंद का कौन सा रंग है। यह हमारे वस्त्र वस्तु से स्पष्ट होता है। जो व्यक्तित्व, स्वभाव, प्रवृत्ति, गुण, व्यवहार को दर्शाते हैं- जैसे---

लाल- भड़कीला, उत्तेजक, आकर्षक रंग होता है। लाल ख्याती का उपयोग करने वाला रसिक, क्षमतावान, शासक, गुणवाला होता है।

पीला- रंग उन्नति प्रगति विकास दर्शक होता है। खुशी उत्साह भरा होता है। एनर्जी का रंग है। निर्णय क्षमता में इजाफा करने। वाला रंग है। स्मरण शक्ति एकाग्रता देने वाला होता है। आलस्य। उदासी दूर कर सही पसंदीदा, उदार, दयालु, करुणा, सोम्यता न्यायी होते हैं। चेतना प्रेरित सकारात्मक प्रभावी होते हैं।

नीला- भीतरी विकास दर्शक रंग है। रंग आध्यात्मिक विचार उत्पन्न करता है। शान्ति आरामदायक पसंद करने वाला, मेहनती, गतिशील, क्रियाशील, रहस्यवादी, खोजी, जादूटोना प्रवृत्ति वाले होते हैं। सामाजिक होते हैं।

हरा- रंग ताजगी, स्वच्छता पसंद है। बात प्रभावक होते हैं। हस्तक्षेप पसंद नहीं करते हैं। स्वभाव धर्म का कट्टर पंथी होता है। हरी श्याही का उपयोग करने वाले अधिक भाग्यशाली होते हैं।

काला- रंग रहस्यवादी, आत्मत्यागी, व्यवहार, प्रभाव, व्यक्तित्व, प्रभावशाली होता है। स्याही का उपयोग करने वाले बात को बढ़ावा देने वाले, अपने में मस्त रहने वाले होते हैं।

सफेद- रंग शान्ति, उमंग, जोश कोमलता का प्रतीक है। पसंद करने वाले शांत, संतुलित, आशावादी होते हैं। स्पष्ट विचार वाले होते हैं। जो लोग जब जो रंग की स्याही पल्ले पड़ जाय उसी से लिखते हैं. वे अस्थिर चित्त वाले स्वभाव में हरफन मौला दूसरों के सहायक, कमाऊपूत होते हैं। काली स्याही उपयोग करने वाले दार्शनिक होते हैं, उदासिन रहते हैं। बुध का उनके ऊपर प्रभाव होता है। लाल पर मंगल ग्रह प्रभाव होते हैं। प्रायः शासकीय अफसर अलग-अलग स्याही की कलम से आर्डर निर्देश देते हैं। जो उनके संकेत होते हैं।

कर्मकाण्ड- सर्वतोभद्र ३३ (तेंतीस) देवता ३३ (तेतीस) रंग- गणेश - पीला, गौरी - हरा, ब्रह्मा- लाल, विष्णु- सफेद, रुद्रलाल, गायत्री - पीला, सरस्वती - लाल, लक्ष्मी- सफेद, दुर्गा-लाल, पृथ्वी- सफेद, अग्नि - पीला, वायु- सफेद, आकाश-लाल, इंद्रसफेद, यम- काला, कुबेर - पीला, अश्विनीकुमार - काला, सूर्य-लाल, चंद्रमा- सफेद, मंगल-हरा, बुध - पीला, बृहस्पति - हरा, शुक्र- लाल, शनिश्चर-पीला, राहु-लाल, केतु- सफेद, गंगा - पीला, पितृ - सफेद, इन्द्राणी - काला, रुद्राणी- पीला, ब्रह्माणी - काला, सर्प- हरा, वास्तु- काला।

राशि रंग- मेष- गुलाबी, बृहस्पति लाल, वृषभ- तुला, व्हाइट, मिथुन, कन्या- हरा, कर्क- सफेद, सिंह- इन्द्रधनुषी, धनु, मीनपीला, मकर - नीला, कुम्भ- गहरा हरा होते हैं।

एक से नौ अंक रंग- १ गुलाबी, २ मिल्की व्हाईट, ३- सुनहरा नीला, ४- गहरा भूरा, ५ - हरा, ६ - सफेद, ७- ग्रे, ८- नीला और ९ - लाल यह १ से ९ अंक के अलग अलग रंग होते हैं।

रंग उत्पादक कलर चार्ट इसी आधार पर बनाते हैं। जो घर मकान, भवन, बंगले, कोठी, टावर, वाहन आदि पर किया जाता है। हमारा तो यह भी कहना है कि पसंदगी रंग का प्रभाव नकारा नहीं जा सकता है। यह बात दूसरी है कि विभिन्न लोग विभिन्न कलर पसंद करते हैं। उसके पीछे उनके भी कुछ विचार होते ही कुछ लोग ऐसे भी होते हैं। जिन्हें रंग कलर से कोई मंतव्य होता ही नहीं है। कुछ कलर रंग के पारखी होते हैं।

पशु पक्षी प्राणी के रंगों का भी परमात्मा ने उनकी वृत्ति के अनुसार ही दिये हैं। मोर को करीबन सभी रंग दे दिये हैं। क्योंकि वह पंख फैला कर सुन्दर नाच भी करती है, किंतु पैर उसके बे रंग के होते हैं। इसी प्रकार कई पक्षीयों के बड़े सुन्दर रंग होते हैं। वनस्पति, फल, फूल, पत्ते, कांटे आदि के रंग भी अपना प्रभाव रखते हैं। ईश्वर की माया भी इसी प्रकार की रंगीली होती है।

यहाँ मनुष्य की मानसिकता और उसके प्रभावक रंग को देखना है। उपरोक्त वर्णन में कुछेक रंगों के प्रभावों को ही बताया है। जिनका कि मन मस्तिष्क पर विशेष प्रभाव पड़ा करता है। जो मन मानसिकता को अपने अपने प्रकार से प्रभावित करते हैं। गृह नक्षत्र, तारे, के अपने अपने रंग होते हैं। गेलैक्सी में बड़े ही मन प्रभावी रंग होते हैं। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार राशि पर से मन मानसिकता की दृष्टि से प्रभाव अपने अपने प्रकार का पड़ता है। रंगों की सम्पूर्ण जानकारी मनोवृत्ति अपने आप आकर्षित करने से की जा सकती है।

मानव जन्म जात वृत्ति प्रवृत्ति लेकर आता है। संसार में आने के बाद उसकी वृत्ति प्रवृत्ति, प्रवृत्ति वृत्ति के परस्पर प्रभाव से परिवर्तन से भी विशेषतायें भी बदलती रहती हैं। अनुकूल प्रतिकूल का क्रम व्यक्ति, व्यक्ति पर अपने अपने प्रकार का होता है। यह स्वाभाविक है कि अनुकूल को साधा जाता है। प्रतिकूल को त्यागा जाता है। वर्तमान में मेचिंग कलर का फेशन ही चल पड़ा

है। मानव मन की खोज खबर प्रतिभा विभूति पसंद को दाद देनी ही पड़ेगी कि उसने अपने सतत प्रकाश से धीरे-धीरे कर हर क्षेत्र में सफलता पा ली है। पाता ही चला जा रहा है। यह ईश्वर रचना की बलिहारी है कि उसने मानव को क्षमतावान बना कर ही छोड़ा है। फेन्सी ड्रेस, डान्स आदि में कलरों के माध्यम से ही आकर्षण पैदा किया जाता है। यूनिफार्म में कलर को चुनना अपना अलग से विशेष प्रभाव पैदा होता है। योगी, त्यागी तप, तपस्यी, कर्मकाण्डी, साधु, सन्यासी के अपने कलर ही विशेष होते हैं जो उनकी पहचान बन गई है। प्रकृति में ऋतु मौसम में स्थान विशेष पर अपनी अपनी रंग रंगीली छटा निराली ही मन मानसिकता पर अपना प्रभाव डालती है।

हमने उपरोक्त वर्णन में विशेष कर रंगों का वर्णन किया है। मानव मन मस्तिष्क पर रंगों के प्रभाव पर कुछ विचार किया है। विशेष और व्यवहारिक जीवन में मन के विपरीत रंग को किसी न किसी कारण से छुटकारा अपने आप ही मिल जाता है और मन पसंद रंग की ओर झुकाव स्वतः बड़ जाता है। हमने तो यह भी देखा है कि रंग रंगीला हाथ में आते ही मनोवृत्ति अपने आप स्वीकार अस्वीकार कर देती है। प्रकृति दर्शन, अजन्ता, एलोरा के भ्रमण में मन भावन प्रसन्नता अपने आप झलक पड़ती है। ड्राइंग पेटिंग के शौकीनों का तो कहना ही क्या। वे रंगों का कैसा आकर्षण कॉम्बीनेशन देते हैं। भले ही स्वीकृति, अस्वीकृति को व्यक्त नहीं किया जाय लेकिन आभास तो हो ही जाता है। फिर दुबारा काम पड़ता है तो वह ध्यान रखकर ही व्यक्त होता है। मन पसंद रंगों के प्रभाव ही मानसिक शांति, संतोष आकर्षण पैदा करते ही रहते हैं। अंगूठी में नग के कलरों का यही कारण है। मानव मन मस्तिष्क इस विषय में काफी निर्णायक हो गया है कि वह पहनावा आदि से अपने भाव भावना के माध्यमसे कई अनुकूल प्रभाव पैदा भी करता है। वह अपने मन मस्तिष्क में शान्त संतोष प्रभावक और प्रफुल्ल रंग रंगीली पसंद से स्वयं को बनाये रखता है। नेल पॉलीस, टीकी, महावर की छटा बड़ी मन भावुक होती है।

--- * ---* ---* ---

२४. मन की मन जाने

अजी! कहने से क्या होगा ! मन की मन ही जानता है। और कौन जाने! सही बोलो तो कौन माने। मन की खोलो तो मुंह भी बंद होता है। यही सही है कि मन की मन जाने क्या करना ! मन मर्जी सब की अर्जी जो है वह ही सही। मन मानता कहाँ है। मन की किये बिना चूकता नहीं है। सही है कि मन की मन जाने। दूसरा क्या जाने। कर भी क्या सकता है। जो करता है भुगतना तो उसे ही पड़ता है। वजन थोड़े ही है जिसे बाँट कर उठा ले। चीज है क्या जो जाय मिल बाँट खा ले। धन सम्पत्ति थोड़े ही है जिसका वटवारा हो जाय। मन की करनी है जो करेगा उसे ही उसका परिणाम मिलेगा। अच्छे का अच्छा बुरे का बुरा, जैसे को तैसा, सब यही मालूम पड़ जाता है। जीवन जीने की राह में सब होता चला जाता है। देखेंगे। आदि-आदि विचार चलते ही रहते हैं।

देखने-दिखाने कहने-सुनने, समझने, समझाने जैसी कोई बात कहाँ है। मन तो मन की करे बिना मानने वाला नहीं है। वह तो अपने मन ही की करता है। कहा सुन लेता है। मनाओं तो हाँ कर लेता है। समझाओ समझ लेता है। लेकिन मन की करे बिना फिर भी नहीं मानता है। क्या मालूम मन में क्या बसा है। अरे जो करना हो। खुल कर करो। तुम्हें रोकने वाला कौन है ?मन तो मन ही की मानेगा। कहने से क्या होगा?अपने मन की अपुन जानते हैं। दूसरे के मन की अपन कैसे जानें क्या जाने। उसके मन में क्या है। पता भी कैसे लगे? मन की बात मन से बोलो। वह सुनेगा समझेगा मानने लायक होगा तो मानेगा। नहीं मानेगा तो अपना क्या बिगड़ा नहीं माने। उसके मन की तो वह करेगा। करने दो। ऐसा ही होता है। सुनाओ तो क्या सुनाओ। कितना सुनाओ। कब तक सुनाओ। एक समय होता है तब हम ही ठीक है। नहीं तो बुरा और लगता है। हम भी इसकी जगह होते तो क्या कर लेते करते तो वही जो करना

पड़ता है। वह भी तो करता है। करने दो। सब सामने आ जायगा कहाँ जायगा। धीरज धरो। सब मालूम पड़ जायगा। मानो नहीं। जानो नहीं। सीखो नहीं। तो सही होगा कैसे ? मन की करने वाला तो मन की ही करता है। उसे आगा-पीछा देखना ही नहीं है। यह सब समझ का फेर है। समझ होती तो मन की क्यों करने देता। अजी किसकी क्या कहें। चुप रहने में ही सार है। पर क्या करें। चुप भी तो नहीं रहा जाता है। जो करेगा वह तो भुगतेगा। जब अपने सामने करने वाला कर रहा है तो कहना पड़ेगा। बताना भी पड़ेगा कि क्या सही क्या गलत है। अपने को मतलब नहीं तो इसका क्या मतलब। हम कुछ करें भी नहीं। ऐसा क्या होता है ? नहीं होता है। करने वाला कहता है। कहने वाला करता ही है। फिर भला बुरा इसमें क्या ?

अरे किसकी किससे कहो। बुरे को बुरा कहना भी तो कोई सुनने वाला हो। उनसे लाख वादा करवा लो कि हम तुमको जो कह रहे हैं किसी को मत कहना। लेकिन उसने हाँ कर लिया और नहीं माना है। क्या कर लोगे। सबसे अच्छा सब जानते हैं कि बुराई बुरी होती है। लेकिन कहे बिना चूकता भी कोई नहीं। ठीक है मन के बोल मन सुनता है। उसके मन को क्या मन नहीं कहेंगे? वह भी तो मन है, फिर मन के बोल को वह क्यों कैसे कब तक नहीं मानेगा। मन की मन को तो कहना पड़ेगा। जो होगा वह हो जायगा।

यह सब जानते हैं कि किसको कितनी परेशानी है। यह भी सही है कि जिसकी परेशानी उसे ही तो सहना पड़ेगी। परेशानी बाँटी थोड़ी जाती है। सहायता भले ही की जा सकती है। वह भी जब पसंद की जाय। सहायता करने गये और बुरा मान लिया तो और परेशानी बढ़ जायगी। कम नहीं करो तो बढ़ाओ तो मत। सोचना पड़ता है। जिसकी परेशानी उसे ही भुगतने दो। मत कुछ सोचो। मत कुछ करो। होने दो। जो होना होगा वह होगा। परेशानी उसे है। हम परेशान क्यों हों। अलग हटो।

हाँ! यह वह जो सोचता है वह जाने कि हमको कुछ मान कर बता रहा है तो हमें सुनने में क्या आपत्ती है। उसकी बात कितनी गोपनीय है या नहीं। वह जब हमको बता रहा है तो गोपनीय रही कहाँ ! बात गोपनीय है तो क्या हम भी उसके लिए गोपनीय हैं। यह उसका सोचना है। ठीक है हम ध्यान देंगे। उसकी गोपनीयता उसके आउट की तो हम उस आउट को क्यों आउट करें। बस गोपनीय हो गई। फिर तो वह मान जायगा। हमारे साथ उसने ऐसा किया ही क्या है? जो जानता है उसने तो मन की बात बताई है। सुन लिया। हम क्यों बताये कि हमको क्या बताया। हमारे साथ उसने ऐसा किया ही क्या जिससे उसकी हम कहें। उसकी गोपनीयता है तो वह हमारी भी गोपनीयता हो गई। हम नहीं बतायेंगे। बात है न। वह भी मान लेगा कि हम भी गोपनीय ही हैं।

कहते हैं आदमी लाख दर्जे का है। आप क्या जानो हम जानते हैं। आप जानते हैं न। फिर हमें जानने की क्या जरूरत। मान लेते हैं ठीक हैं। वह जो करता है ठीक ही तो करता होगा। हम क्यों कहें कि वह अपने मन की ही करता है। ठीक भी तो है। आदमी सही है तो सही ही तो करता है। मन की करेगा नहीं तो क्या दूसरे के मन की करेगा। अपने मन की करता है तो सही करता है। करने दो। इसमें कहने की क्या जरूरत है कि मन की बात मन ही जाने न जाने कोय बोये पेड़ बमूल के आम कहाँ से होय। जब उसने मन की जानते ही नहीं हैं तो उक्ति का समर्थन भी क्यों करे। नहीं करेंगे। क्योंकि उसने मन की ही की है न। फिर गलती की सम्भावना नहीं होना चाहिए। कह दो अरे भाई तू करे तू भुगत। मैं करूं मैं भुगतू। न मैं तेरी भुगतू न तू मेरी भुगत। यह हो सकता है, फिर चिन्ता किस बात की कि तू मेरे मन की करता है। मैं मेरे मन की करता हूँ। एक दूसरे को कोई आपत्ती होना ही नहीं चाहिए।

उपरोक्त जो कुछ हमने व्यक्त किया वह सब जानते मानते हैं कि मन अपना है। वह अपने लिए जो करेगा वह अच्छा ही करेगा। अपना मन, अपने लिए गलत नहीं कर सकता। जिस डाली पर बैठ उसे काट रहे हैं तो समझ में

आना चाहिए। नहीं भी आया तो ऐसा तो है नहीं कि कभी भी समझ में नहीं आयगा। ठीक है जब आयगा आ जायगा। मन की करने तो दो। करने और होने के पहिले सम्हल जाय तो क्या बुरा है। अच्छा है तो सम्हलो मानो तो मानों नहीं मानो तो नहीं मानो। मन तुम्हारा है। जैसा चाहों वैसे मानो। हम सोचते हैं कि हमारे सही का थोड़ा बहुत असर पड़ जाय तो ठीक नहीं तो भुगतने के बाद तो समझ में आ ही जायगा। मन की करो। करना चाहिए, लेकिन मन इस लायक है क्या? यह तो समझना पड़ेगा। मन को संस्कारों से बनाया जाता है। तब ही वंशानुसंक्रमण प्रबल होता है। अच्छा पर्यावरण मिल गया तो क्या कहना मन और अच्छा हो जायगा। हमने जान लिया, मन अच्छा हो गया है। वह अपने मन की करने लायक हो गया है तो उसे उसके मन की कर दो। उसे मन की करना चाहिए। दूसरे के मन की मानने की जरूरत भी नहीं है। यह हम क्या जाने वह तो मन की मन ही जाने। इसमें वह और हम क्या कुछ नहीं मान सकते हैं। मानना चाहिए। मन को मन की करने का चान्स देना चाहिए। यह हम क्यों माने कि वह अपने मन की सही नहीं करेगा। अरे एक बार, दो बार, तीन बार कभी तो उसे अनुभव होगा। जब जैसा अनुभव होगा वैसे करेगा। लेकिन ऐसा होता नहीं है। हमारा सोच इस माने में गलत है यदि वह मन जो ठीक मान रहा है, कर रहा है। करने दो। जो जैसा होगा वह वहीं तो देखेगा। ठीक भी करेगा। स्वीकारेगा भी। बस इतनी सी ही तो बात है कि मन के ऊपर विश्वास तो रखना पड़ेगा। जिसके मन का तो उसे ही तो करना पड़ेगा। दूसरे का करना अपने मन का होता भी नहीं है। अपने मन का अपन करते हैं। करना चाहिए। मन का मन को ही करना है। अपने स्वयं के लिए यही सही है। मन की मन जाने क्या कैसा है।

मन मिला है तो मन की बात मन को कहने दो।
अपने मन की करता है तो मन की करने दो ॥
अपनापन है तो अपने मन की आँखों देखो।
मन की बात मन जाने अच्छा है अच्छा होने दो ॥

--- * ---* ---* ---

२५. सुने सबकी करें मन की

परिस्थिति ऐसी भी आ जाती है कि सबकी सुनते हुए भी मन अपनी वाली पर ऐसा अड़ जाता है कि मनाने के तरीके फैल हो जाते हैं। मन मानने से मना कर देता है। हटी पकड़ लेता है। शरीर खतरे में पड़ जाता है। शालीनता चुप हो जाती है। सत्य छिप जाता है। कर्त्तव्य एकतरफ हो जाता है। न्याय दूर चला जाता है। धर्म बोलता नहीं है। दया गरीब बन जाती है। आत्मा रो पड़ती है मन पसीजने को तैयार नहीं होता। मनाने के हथकंडे समाप्त हो जाते हैं। सहयोगी सलाहकार मिलते नहीं है। भीड़ छट जाती है। केवल अकेला मन योद्धा ही बच खड़ा हो जाता है। उसका मुकाबला करे कौन। किसी में दम हो। सामने आये। ऐसे में होता यही है कि मन जो चाहे वह होता है करना पड़ती है।

मन चंट चालाक इतना तेज होता है कि उसके हथकंडे के सामने किसी की भी नहीं चलती। वह चाहता है वही होता है। ऐसे में जो होगा होता है। सब उसी के मन का होगा। उसका खुला चेलेन्ज कि सब को देख लिया। पस्त हुए। बस अब किसकी चलेगी। समझा देता है। इस दृढ़ निश्चय के सामने किसकी हिम्मत है कि मन का मुकाबला करे। जो वह करेगा वह ठीक। बाकी जो जितना सब कुछ करे वह सब फैल ही रहता है। देखने में आता भी है कि समय वह नहीं है कि मन से पूछे बिना किया हुआ सही ही हो। यह मान्यता तो पता नहीं कितने पीछे छूट गई। अब तो यह है कि जो होता है, वह सबका सभी मन के कहे अनुसार होता है। ऐसे में भूतकाल का क्या मानना, भविष्य के निर्धारण करने के लिए वर्तमान तक खतरे में नजर आता है। भविष्य के लिए कुछ व्यवस्था बनाना असंभव हो गया है। जमाने को क्या दोष दें। मनोवृत्ति तो पूरी तरह ही बिगड़ चुकी है। अब आगे मनोवृत्ति ठीक हो जाय कोई आसार कहीं से कहीं तक नजर आते ही नहीं हैं। और जटिलता आने की ही संभावना है।

जब मन की मन जानता था तब तो फिर भी ठीक था कि मन किसी न किसी बात पर सहमत तो हो जाता था। उसकी अपनी मजबूरियाँ जरूर होती थी कि वह एकदम सहमत भले नहीं होता था, किंतु ऐसा कभी भी नहीं होता था कि वह सहमत होने से मना कर देता हो। अब देखो। तो बिलकुल ही अजीब स्थिति परिस्थिति की मन से मना कर दिया तो कर दिया। उसे मनाने वाला कोई नहीं होता है। अब मन की बात मन ही जाने कि स्थान पर यह है कि सबसे मनवा ले, किंतु खुद क्या कैसा माने यह मालूम तक नहीं हो पाता है। बल्कि यदि कुछ आसार लगते हो वह उन्हें भी ठुकरा देता है। एक दम दो टूक जवाब देकर मना ही कर देता है। सोचो समझो कल्पना करो कि क्या किया जाय।

सोचों दोष किसे दें। भूतकाल के पूर्वजों को नहीं। क्योंकि वे बेचारे कल्पना भी नहीं करते थे कि अगली पौध सम्पन्न हो जायगी। उस वर्तमान को कि जब भविष्य के विषय में सोचा भी नहीं जाता था। ऐसा विश्वास था कि जो होगा सब ठीक होगा। क्या मालूम कि ऐसा होगा जो कभी सोचा नहीं हो। अब आज क्या माना जाय। यही कि वर्तमान में चुप हो जाओ नहीं तो थोड़ी बहुत पूछ परक है वह भी नहीं रहेगी। भविष्य के बारे में बात करते ही क्यों हो। क्योंकि हो सकता है। भविष्य के विषय में सोच भी समाप्त कर दिया जाय। तो बचा क्या। बस यही कि मन को कुछ भी छेड़छाड़ कहने सुनने समझने, समझाने, मनाने मनवाने आदि किसी भी प्रकार की सम्भावना की आशा ही छोड़ देने में सार है। संभव- संभावना, आशा- विश्वास आदि तो दिखता ही नहीं है। सम्भव है जो आज इतना जो सोच लिया जाता है, अब आगे तो वह भी सोचने की स्थिति परिस्थिति बचेगी ही नहीं। फिर भी सोचेंगे, समझेंगे भी कैसे ? आशा ही छोड़ देना चाहिए। क्या ऐसा वास्तव में सही होगा भी कि यह मेरा विचार है। लगता तो यह है कि विचार कोरा ही रहेगा। उसमें आशा की लहर दिखना कठिन है।

खैर जो होना होगा वह तो होगा ही। अभी से घुट-घुट कर क्यों मरा जय। हमारे अपने समय में तो ऐसा स्थिति अभी आई नहीं है। वह तो अगली पीढ़ी के समय से ही होगा। अभी अगली पीढ़ी तो आने दो। इसमें अपना तो कल्याण ही हो जावेगा। यह तो इस प्रीति का नजरियाही है कि वह कितनी जीनियस है कि जो सबकी सुनने पर भी अपने मन की ही करती है। सोचे-समझे तो पता लगता है कि---

१. वह वर्तमान में भविष्य आशय को तेजी से समझ लेती है। अपनी क्रिया प्रतिक्रिया उसी दिशा में क्रियाशील होकर चल पड़ती है। जिसे विराम लगता ही नहीं है।

२. तुरंत के आसार से आये परिवर्तन को तुरत - फुरत आत्मसात कर लेती है। ज्ञान कला को तुरंत ग्रहण कर मानसिकता बना लेती है।

३. अपने रिश्तेदारों को ऐसे सजो लिया जाता है कि उनमें निर्णय लेने की क्षमता नये-नये आयामों के साथ उत्पन्न हो उठती है, जिसे वे इस्तेमाल कर लेते हैं।

यही कारण है कि जो छोटे बच्चे अब पैदा हो रहे हैं उन्हें यह जीनियसनेस घुट्टी प्रारंभ में ही मिल जाती है। उनका आईक्यू इतना तीव्र होता है कि शिक्षण प्रशिक्षण तो दूर पूत के पांव पालने नर्सरी कक्षा ही में दिख जाते हैं। उनके मस्तिष्क का फील्डेड आउट ले पानी अर्थात कान्टेक्स लेयर काफी पतली होती है जो कॉम्पलेक्स से जुड़ी हुई होती है। दिमाग विकास के साथ उसमें वृद्धि होती चली जाती है। जीनियसनेस झलक उठती है। इल्म के बिना ही उनका नजरिया उठान लेता चला जाता है। फिर परिवार की थोड़ी सी वाहवाह यदि मिल जाय तो फिर कहना ही क्या। वृद्धि की तीव्रता बढ़ती ही नजर आयेगी। तब ही तो सबके कहने सुनने की परवाह छोड़ मन का किया जाता है। यह छोटा सा आंकलन भले समझा जाय, किंतु छोटा नहीं यह

आंकलन तो असाधारण है जो स्थिति परिस्थिति को एकदम समझा देता है। अब यह समझ में आ जाना है कि अपने मन की करने को क्यों वर्तमान में मन अमादा रहता है। जैसा कि कभी सोचा भी नहीं था जो अब स्पष्ट देखने समझने और भुगतने तक को मिल रहा है।

अब ज्ञान, विज्ञान, दर्शन, प्रज्ञा में तीव्रता ओर आती जा रही है, जिससे मन की स्थिति ऐसी हो जाय तो कोई आश्चर्य नहीं है कि जैसी वायर कनक्शन के स्विच ऑन से बल्ब जल उठते हैं ठीक वैसे ही शरीर के ज्ञान तन्तुओं के स्विच भी तलाश लिए जा सकेंगे कि बुद्धि तीव्र काम करने लग जायगी। जो स्थिति एक निश्चित परिसर में ए. सी. प्रभाव कम ज्यादा पैदा कर लिया जाता है। उसी प्रकार जीनियस ग्रंथियों में भी उस स्तर की ऊर्जा काम करने लग जायगी।

उपरोक्त अति संक्षिप्त विवरण से यह स्पष्ट हो ही जाना चाहिए कि शरीर, मस्तिष्क (बुद्धि) मन आत्मा आदि ज्ञानेंद्रियों में मन का कार्यक्षेत्र बड़ा महत्वपूर्ण हो जावेगा। अब तो इन्द्रियाँ उतनी सक्रिय भी नहीं लग रही हैं जो आगे उनसे सम्भावना की जा रही हो। इसका अनुमान बीते समय से लगाया जा सकता है कि भूतकाल की तुलना में मेडिकल साइंस ने शरीर को कितना सक्षम ने बना दिया है कि मौत के समय को समझ लिया जाता है। बौद्धिक क्षमता तीव्र हो गई है। नई-नई शिक्षण पद्धतियाँ लागू हो चुकी हैं। इन्द्रियों को कितना सक्रिय बना लिया गया है कि जिनसे विभिन्न मशीनों को ऑपरेट कर असाधारण उत्पादन होता चला जा रहा है। मन की परिपक्वता से आत्मा की प्राणशक्ति, लिंग परिवर्तन, की छूट देने लग गई है। अब शेष शरीर का विद्युत संचार परकाया प्रवेश की भांति प्राणशक्ति से समझौता कर काम करने योग्य होना शेष है। जिसकी सम्भव संभावना आगे भले कैसी भी की जा सकती है, अभी वर्तमान में तो नहीं है। अभी वर्तमान में तो मन की सुने सबकी करें, मन की स्थिति परिस्थिति तक ही सीमित रहना पड़ेगा। वर्तमान की स्थिति में तो

मन इतना जो करके दिखा देता है वह भी गत समय की तुलना में बहुत कुछ प्रगतिशील कदम है। मन की हटकर्मी को अनुकूलता में उपयोग अधिकाधिक बनाया जाना है। ऐसे अनेको कारण भी तलाशे जा चुके हैं। तलाशे जा भी रहे हैं कि मन हठकर्मिता से हर उपयोगी दिशा में जल्द से जल्दी काम भी करने लग जावेगा।

--- * ---* ---* ---

२६. मन रुठा सब झूठा

वर्तमान का आज कल भूतकाल में चला जाता है। तो भविष्य का कल आज वर्तमान में आता है। क्रम चलता रहता है। जो कुछ भी किया जाता है वह सब वर्तमान के आज ही में किया जाता है। आज अब अर्थात वर्तमान में हम जिस किसी काम को करते हैं वह पिछले समय किये गये की तुलना में कुछ न कुछ विशेषतायें लिए हुए अवश्य होता है। इसी प्रकार जब कुछ समय जिसे किये बीत चुका है तब वही काम जब किया जाता है जिसे हमने वर्तमान में किया था, वह आज वर्तमान में पुराना लगने लगता है। ठीक भी है। प्रगतिशीलता का चक्र तो चलता चला जा रहा है आवश्यकता के समाधान के बाद फिर आवश्यकता के समाधान की आवश्यकता पड़ती ही रहती है। यह चक्र भी चलता रहता है। ठीक इसी प्रकार समाधान के पश्चात उत्पन्न जिज्ञासा, इच्छा, विचार का समाधान फिर निकालना ही पड़ता है। यह क्रम चलता रहता है थमने वाला भी नहीं है। इसी क्रमानुसार यह भी है कि आज जो मन की बात कही जा रही है पिछले दिनों में भी कही गई होगी ही। आगे भी कही भी जावेगी। हर वर्तमान में बात को नया ही कहा जाता है। इसी प्रकार आज वर्तमान में भी हमको अपने कहने का तरीका श्रेष्ठ अवश्य लग रहा होता है, क्योंकि उसे आज के माहौल के अनुसार अनुकूल दशा दिशा के अनुसार कहा जा रहा होता है। ज्ञान की शक्ति अच्छाई बुराई दोनों दिशा में लगाई जाती है। देखा यह जाता है कि मन की शक्ति किस ओर लग जाय। किस ओर से हट जाय यह बदल बदलाव प्रायः स्थिति परिस्थिति स्थान भिन्नता समय सामयिक व्यक्ति से व्यक्ति में बदलती रही है मन बदलकर कब किस ओर लग जाय अथवा हट जाय पहिले से कहना संभव नहीं होता है। अनुमान के आधार पर कुछ भी हाँ, ना जैसा कुछ अवश्य कहा जा सकता है लेकिन गारन्टी से कभी कुछ भी नहीं कहा जा सकता है।

सेवा, स्वार्थ, उन्नति, प्रगति, शोध, समाधान, अधिकार, कर्त्तव्य, जरुरत आदि भावों के अन्तर्गत मन संकल्प करता है कि निमित्त संकल्प किये हैं उन्हें प्रकट करें, मार्ग दर्शन लें। सहायता करें, क्षतिपूर्ति करे और समाधान करें। मन की यह बहुत बड़ी महत्वपूर्ण अच्छाई है कि अपनी त्रुटि व भूल निवारण के वह संकल्प लेकर पूरा करता है। इससे मन को शान्ति, संतोष मिलता है। निराशा दूर होती है। परिस्थिति सुधार कर काम करने की जिज्ञासा की पूर्ति में सहयोग देता है। ऐसी भी परिस्थिति आ जाती है कि भाव भावना के प्रकट करने का अवसर नहीं मिलता है। दूसरों के द्वारा आघातसा अहसास होता है। इस विषम अनचाही दशा में निराशा, आघात, तनाव, अशान्ति, अनइच्छा, उत्पन्न हो जाती है। जब सहशक्ति के बाहर परिस्थिति उत्पन्न हो जाती तो मन को कष्ट होता है जो अन्य प्रकार भावों के भावों द्वारा वह प्रकट होता है। जैसे सेवा कार्यों में रुचि नहीं लेना। स्वार्थसिद्धि में रुचि दिखाना। उन्नति हो या नहीं परवाह नहीं करना। प्रगति की ओर ध्यान नहीं देना। नई-नई खोज खबर जानकारी की आवश्यकता को नकारना, अपने कर्त्तव्यों के स्थान पर अधिकारों के लिए उत्सुकता रखना। आदि-आदि। यह सब मन की नाराजगी दिखाते हैं। इसी प्रकार से जो प्रायश्चित पूर्ति के संकल्प लिये हैं उनको पूरा नहीं करना। इसी प्रकार मन मानसिक क्रिया कलापों में अरुचि दिखाना। जबकि मन की अरुचि के स्थान पर रुचि की आवश्यकता होती है। स्नेह, सेवा, दया, श्रद्धा, विश्वास में रुचि के स्थान पर नाराजी, निष्ठुरता, तिरस्कार, अपमान, क्रोध, टालमटोल आदि उत्पन्न होते हैं। इनसे मन में तनाव अशान्ति बेचैनी, घृणा, भय, उत्पन्न होता है तो यह माना जाता कि मन की नाराजी है। ऐसे में मन मानसिक दशा बिगड़ती है। संवेदना, सम्मान, आशक्ति आदि के प्रति अरुचि स्वार्थ झूठ, द्वेष, अहंकार, भ्रान्ति, ईर्ष्या, उत्पन्न होती है। सम्प्रेषण, जागृति, माधुर्य, सत्संग, वैराग्य, निवृत्ति, संवाद, आकर्षण, अर्पण, आंकलन, आशक्ति अनइच्छा, अनुभूति, जागृति उपलब्धि, योग, प्रतिक्रिया, साक्षी के प्रति अरुचि उत्पन्न होती है तो समझा जाता है कि मन नाराज है। मन की

नाराजी दूर करने के भरसक प्रयत्न प्रयास में मन की पसंदगी के क्रिया कलाप किये जाते हैं। जैसे धैर्य, मौन, समानता का व्यवहार, सत्संग, प्रतिष्ठा देना, समीपता, सरलता, सहिष्णुता, सहयोगिता को दर्शाता जाता है। ईमान अर्थात जानना, मानना का भाव प्रकट करना। एकेश्वरवाद को स्थान देना। धर्म धार्मिक रुचि, कर्त्तव्यपालन, को बढ़ावा देना आदि किये जाते हैं। आदि की परिस्थिति बनाई जाती है, लेकिन जब यह देखते हैं कि मन अट-क जाता भटक जाता, कच्चा पड़ जाता, मन मैला हो जाता, मन खट्टा हो जाता, खराब हो जाता, टूट जाता, डोलता, फट जाता, उतर जाता, हार जाता, हीनता का अहसास करता, मन फिर जाता, आदि दशाओं में मन रुठा हुआ माना जाता है।

मन में नाराजी हो, घृणा हो, अशान्ति हो, असंतोष हो, अरुचि हो, शंका हो, भ्रम हो गया है। पसंदगी विरुद्ध कुछ हो गया हो, अनादर तिरस्कार हो गया हो, आदि ऐसी स्थिति परिस्थिति है कि जिनमें मन रुष्ट हो जाताहै नाराजी घाटा रूप होता है। रुष्ट विकट होता है। नाराजी में मनुहार आदि से सफलता मिल जाती है, लेकिन रुष्ट होने की दशा में मन को मनाना कठिन हो जाता है। साधारण स्थिति परिस्थिति में मन सदा प्रसन्न रहता है, किंतु जितनी गम्भीरता की नाराजी अशान्ति होती है मन उतनी स्थिति में अधिक नाराज अर्थात रुष्ठ हो जाता है। जिसका प्रगटीकरण इन्कारी से प्रकट होता है। होता यह है कि मन रुठा अवस्था में इंद्रियों के काम उलटपलट के होते हैं। हानि, अपमान से संलग्न स्थिति के कृत्य उनसे होते हैं। थोड़े में यही कहा जाता है कि मन के रुठने पर शरीर में बैचेनी, इन्द्रियों में शिथिलता, मस्तिष्क की विचारशक्ति में शिथिलता, आत्मा में घृणा कष्ट जैसे भाव उत्पन्न होते हैं। ऐसी सभी विपरीत स्थिति परिस्थिति में मन रुठा हुआ माना जाता है। जहाँ स्नेह सौहार्द्र जैसे अच्छाइयाँ प्रकट होना रुक जाती है, अर्थात मन रुठा कि सब झूठा लगता है।

उपरोक्त से यह स्पष्ट हो जाता है कि साधारण स्थिति में मन कब अनुकूल कब प्रतिकूल होता है इसका आभास हो जाता है, लेकिन जब असाधारण स्थिति परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है तो मन कब लौट पलट कर रुष्ट, बैचेन असंतुष्ट हो जाता है कि पता भी नहीं लगता है। यह भी नहीं कहा जा सकता है कि उसकी ये स्थिति परिस्थिति कब कैसे क्या कितनी कितने समय के लिए होती है। पता लगाना कठिन हो जाता है। मन के रुठ जाने परशरीर सुस्त इन्द्रियाँ निष्क्रिय, मस्तिष्क शान्त, आत्मा स्थिर की स्थिति में आ जाते हैं। यह स्थिति परिस्थिति ऐसी हो जाती है कि जिसमें मन में तनाव, रोष, अशान्ति, पैदा हो जाते हैं। इससे शरीर तंत्र के सभी कार्य स्तब्ध, शिथिल, शान्त, क्रियाहीन, निष्क्रिय तो हो ही जाते हैं। इससे अधिक मन में रुष्टता, इतनी बढ़ जाती है कि क्रोध, गुस्सा, उत्पन्न हो जाता है। जिसमें कई हानि कारक काम हो जाते हैं जैसे हत्या, तोड़फोड़, अग्निकांड, हड़ताल, अंगभंग की घटना हो जाती है। ऐसे में मन को शान्त करना कठिन हो जाता है। सामान्य स्थिति के आने में काफी समय लग जाता है। जो कुछ किया कराया, धराया सब बेकार हो जाता है। मन का मनाना सामान्य स्थिति में लाना कठिन हो जाता है। मन रुठा सब रुठा यही तो स्थिति परिस्थिति होती है। अलग से और कुछ नहीं है। मन रुष्ठ की अवस्था में आतंकित स्थिति होती है। जिसके होते कोई भी अच्छे अनुकूल जैसा कुछ भी होना असंभव हो जाता है। यही कारण है है कि उक्ति मन रुठा सब झूठा सिद्ध दृष्टिगत होता है। स्थिति परिस्थिति सभी विपरीत हो जाती है। भाव भँगिता भंग हो जाती है। शान्ति, संतोष के प्रयत्न असफल लगते हैं।

--- * ---* ---* ---

२७. मन झूम झलक लोक कला

भारतवर्ष सृष्टि का अति प्राचीन देश है, जिसकी अति प्राचीन कला और कला साहित्य है। लोककला अनगढ़ और रुढ़िवादी किसी एक व्यक्ति की देन नहीं है। अपितु इसमें अनेकों पीढ़ियों से अनेक कलाकारों के जीवन खपे होंगे। कला और कलाकारों का प्रारंभ से कोई इतिहास नहीं है। कारण कि वे अनाम कला के अनामि कलाकार रहे हैं। ऐसी लोककला लोक साहित्य कला, गीत, संगीत, लोकगीत, लोक वाद्य कला में संगीत। लोक नृत्य कला में लोक नृत्य जो विविध संस्कार, त्यौहार, उत्सव आयोजनों के समय होते थे। लोक चित्रकला में भाव-भावना, कल्पना, स्मृति, प्रकृति, अलंकारिक, छाया, प्रतिकृति, वास्तु और भित्ति चित्रण है। चित्रकला में रंग रंगीन रांगोली, कार्विंग, मोजाइक और वास्तु कला के विभिन्न प्रयोज्यनीय शामिल हैं। हमारा यह कहना कोई अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं होगा कि लोककला में मिट्टी, काष्ट, धातु, की कलाकृति भी शामिल है। कला क्षेत्र के विस्तार विषय में हम छोटा आकार कलेवर होने के कारण नहीं जा पायेंगे। केवल नाम परिचय के इस सांकेतिक से संतोष व्यक्त करते हैं। कला क्षेत्र को एक एक खासा पुस्तकाकार में भी समेटा जाना संभव नहीं होगा। हमारा तो आकार प्रकार पुस्तक का मात्र पन्ना ही है। फिर देश काल, भाषा, बोली, सभ्यता, संस्कृति की दृष्टि से तो क्षेत्र विस्तार, समेटना भी संभव नहीं है। हम यही केवल मन मानसिक, मनोभाव, भावना के मान से केवल लोक कला ही का सांकेतिक स्वरूप ले रहे हैं।

कलाकारों ने इस लोककला को अपनी सूझबूझ, समझ व्यवहार विचार - भाव, भावना-गुण, उपयोग- उपयोगी, मनमोहक - रंग रंगीन संगीत - लय, वाद्यथाप, झंकार, नृत्य थिरकन- अंग प्रत्यंग, संगीत स्वर, लहरियों के विभिन्न स्वरूप प्रकारों को व्यक्त किया है। उन्हें हमने मन भावन, मन की झलक, झूम-झंकार, भाव-भावना के प्रति आभास कराने के आशय से अपने

इस मन की बात पुस्तक कलेवर में लिया है जो व्यत्तिशः से सामूहिक सामूहिकता को संकेत करवाया है। जो संवेदन शालिनता की दृष्टि से केवल बिन्दु के अंशमात्र ही हैं। सार्थकता इसी में समाहित है कि मन भाववान लोककला इस शीर्षक का स्थान ले रही है। लोककला के चित्र चित्रण, बोली भाषा, स्वर, लहरियों को यहाँ उद्धृत करना तो संभव नहीं है। केवल सांकेतिक वर्णन ही मन भावना की दृष्टि से लेखनी में लिया जा रहा है। जिसकी इन्द्रि अनुभूति मन को रसास्वादन कराती है। मन भाव भावना अनुभूति से जिनको हम इस प्रकार दृष्टिकोण से अनुभूत करते हैं---

१. मूर्तिकला - आकार, प्रकार, कलाकृति का चित्रण, प्रदर्शन दर्शान का स्वरूप।

२. चित्रकला - स्वरूपाकृति, रंग रोगन से उभार, पटल (भित्ती, भीत प्लेट कागज पर)

३. कार्विग- खोद, खुदाई, काष्ट पाषाण धातु पर।

४. साहित्य कला- पद्य, गद्य, मिश्रित पद्य गद्य जिसमें बोली भाषा पहनावा, अंग विन्यास की कथा, कहानी, रेखाचित्र, वर्णन, संस्मरण, इतिहास, प्रकृति, चित्रण, सांस्कृतिक वर्णन आदि प्रकार प्रकारित अलंकार, रस, पिंगल, भाव भंगिमा, शब्द शाब्दिक, लोकोक्ति, मुहावरा, उलटवासी, साखी, विभिन्न प्रकार के छन्द, पद आदि के रूप में।

५. चित्र चित्रण मिश्रित कला-कार्टून, टेटू, पुतला आदि का हास्य, व्यंग, प्रदर्शन, कलर उभार चित्र छाया झलक, संकेत सांकेतिक दृष्य प्रदर्शन आदि। संकेत आदि आदि प्रकार से भाव भंगिमा, परिणाम दर्शन प्रदर्शन चित्रण

उपरोक्त प्रकार से कला क्षेत्र विभाजन में यह देखा, समझा जाता है कि दर्शन, प्रदर्शन, चित्रण, श्रवण, उच्चारण, थिरकन, अंग विन्यास, मनन,

चिंतन, भाव भावना, भावातिरेक, अनुभूति, वर्णन, वर्णनात्मक, प्रकृति, प्राकृतिक, कृत्रिम, कृतत्व, महत्व - महात्म्य आदि आदि मन मानसिक मनोवृत्ति, जिज्ञासा, इच्छा, विचार, अनुभव, व्यवहार का आभास कलात्मक रूप से होता है। जिसे शहर, ग्राम वनवासी, सभ्यता, संस्कृति का अटा, अट्टालिका, कारखाना, फैक्ट्री, सड़क,, उद्यान, वाहन, जल, थल, नभ, खेत, खलिहान, मैदान, पर्वत, नदी, स्त्रोत, वृक्ष, प्राणी, कीट पतंगे, मानव आदि आकारों पर वर्णन वर्णानात्मक के रूप में विभिन्न कलात्मक दृष्टि से व्यक्त किया जाता है।

कला को कलाकार एकल समूह रूप से व्यक्त करते हैं। जिसमें बाध्य यंत्र उपकरण, केसियो, ढोल-ढोलक, हारमोनियम, तबला, मंजीरे, घुंघरू, ताल, ढपली आदि-आदि का उपयोग किया जाता है जो विभिन्न भाषा भाषी शैली बोली की गीत, नृत्य, अंगथिरकन, वेशभूषा से प्रदर्शित, दर्शित व्यक्त किया जाता है। जो कला लोककला के स्वरूप का हाल हवाला व्यक्त होता है। इस सबका प्राणि जलचर, थलचर, नभचर, भूगर्भ गर्भिक वनस्पति आदि सभी अनुभूत कर आनंद सान्त्वना से तृप्त होते हैं। इन सब में मानव जो कलाकार होता है। कला का प्रदर्शन करता है, वह स्वयं अपनी पाँचों ज्ञानेंद्रि पाँचो कमेद्रि और ग्यारवी इन्द्रि मन आनन्दाभूति का रसास्वादन करता है। वह अपनी कला कलात्मक पकड़ से वनस्पति को प्रसन्न कर फलफूल में परिवर्तन व्यक्त कराता है। संगीत लहरियों की लहराई पशु से दूध की मात्रा में वृद्धि करवाता है और तो और मानव की कला का ही परिणाम है कि जीवन जीने का आनंद, ज्ञान, विज्ञान, कला के विभिन्न उपकरणों का अपनी इंन्द्रियों को उपयोग करा कर संतुष्ट, संतुष्टि, आनंद का अनुभव कराता है। इस प्रकार मानवीय जीवन यापन में कला कलात्मक खेल खिलाड़ी, व्यवहार व्यावहारिक, लेखक-कवि, साहित्यकार, बलवान, पहलवान, कला - कलाकार, टेकनीक टेक्नीशियन, शिक्षक प्रशिक्षण, धनाड्यधनवान, व्यापार वाणिज्य, कृषि -

कृषक, श्रम- श्रमिक आदि आदि सभी भांति-विभांति से कला की कलात्मक अनुभूति से शान्ति, अनुभव का आनंद - आनंदित होकर जीवन जीने का लोक परलोक कृत संतुष्ट संतुष्टि ले रहा है।

हम तो स्पष्ट रूप से यह कह सकते हैं कि कला यदि नहीं होती तो जीवन नीरस दूभर ही बना रहता। जिसे जीने की इच्छा तो उल्टी घृणा ही बनी रहती। इस नीरसता को घृणा को दूरकर जीवन जीना ही मानव कतई पसंद भी नहीं करता। कला के माध्यम से मानव तत्व तात्विक, प्रकृति, प्राकृतिक कृत्रिम, कृत्रिमता का भरपूर कला के विभिन्न आयामों के माध्यम से ले रहा है। यह बहुत बड़ी बात है कि मानव की सूझबूझ की क्षमता ही का प्रभाव व कारण है कि कला का उसने अपने जीवन यापन के प्रारंभ से ही प्रयोग उपयोग प्रारंभ कर दिया था। अन्यथा वर्तमान में मानव कलाविहीन धरती का प्राणीमात्र ही जीवनयापन बड़ी अनमनस्वतासे नीरस जीवन बिताता।

हम हमारी विवेक बौद्धिक, दार्शनिक, सामाजिक, विरासती सोच समझ ज्ञान जितना भी है उस आधार पर यही कह सकते हैं कि जीवन कला और कलात्मक प्रकार प्रकारित विधिसे सम्पन्न होने के फलस्वरूप ही भूतकाल से वर्तमान को जी पाये हैं। आशा है भविष्य के जीवन में संतुष्टि के साथ भी जीते रहेंगे।

उपरोक्त विवेचन विवेचना से कलापक्ष का खाका कलात्मक दार्शनिक, वैज्ञानिकीय, सांस्कृतिक, आत्मिक, अनुभूति, जन्य मानव व्यक्त करने में पूर्णतःसफल हुआ है। कला कलात्मक प्रभाव का ही कारण निमित्त बनता है कि मानव अपनी इन्द्रियों को संतुष्ट कर पाया है। इन्द्रियों की सन्तुष्टि मानव जीवन की असाधारण सफलसफलता कहने में कोई संकोच नहीं है। ना ही होना भी चाहिए। मानव कला पक्ष को जीवन में जितना अहसासेगा, प्रगति की चर्मोत्कर्ष सीमा तक ले जावेगा वह उतना ही संतोष व्यवहारिक, भौतिक,

आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक, नागरिक, समाज-सामाजिक स्वरूप का जीवन जी पायेगा। सम्पन्न जीवन की इस आशा में मानव अपना सर्वस्व उस परमात्म शक्ति को अर्पित भी कर दे तो कम है। जिसने उसे इस योग्य, योग्यता, विभूति, प्रभाव से सराबोर का जीवन दिया है। हमने अपनी कलम से जो समाज को दिया है वह सब कला की कलात्मक पकड़ ही है। जो विधाता ने हमको दी है। तब ही तो पुस्तक मन की बात में कला की इस झूम झलक को व्यक्त किया जा सका है। निश्चित ही हमारा सबका मानवीय, प्राणीशास्त्री, वनस्पति जन्य आदि धरा का प्रत्येक क्षेत्र कला से मन मानसिक, संतुष्टि को अनुभव कर जीवन सफल समझ रहा है। परमात्मा तेरी दी हुई कला का हम सदुपयोग कर संतुष्ट जीवन जियें। हमें ऐसी अनुभूति देते रहना।

२८. मन रोग आरोग्य

मानव प्रारंभ ही से यह कामना करता आ रहा है कि हे! परमात्मा तूने हमें जो जीवन दिया है, वह भले क्षण, पल, मिनिट, घंटा, दिन, महीना, वर्ष कितना भी हो, लेकिन निरोग दे। निश्चिंत दें, जिससे क्रियाशील रहकर हम अपने कर्त्तव्यों को निभा सकें। तेरे बिना हम चाहे जितने प्रयत्न, प्रयास, खोज, आविष्कार, इलाज के विधि-विधान, रीतिनीति अपना लें निरोग कभी नहीं रह सकते हैं। तू हमें दया का पात्र बना, कि जिससे हमारा तन, मन, बुद्धि, आत्मा सब तेरे अर्पण रहे। निरोग जीवन जिये।

यह स्वभाविक है कि जितना लापरवाही, व्यसनी, चरित्रहीनता मानवीय मनोवृत्ति प्रवृत्ति विरुद्ध असामाजिक, उदण्ड, असंयमित, कर्त्तव्यहीन जीवन जिया जाएगा। उसके दुष्परिणाम तो निश्चित भुगतने ही पड़ेंगे। निरोगी शरीर में आत्मा सन्तुष्ट मन प्रसन्न, इन्द्रियाँ क्रियाशील, मस्तिष्क बुद्धि- बौद्धिक सम्पन्न रह सकता है। रोगारोग आरोग्य निरोग की कामना का एक मात्र आशय यही है। रोग शारीरिक, मानसिक कैसे भी हो प्रकृति प्राकृतिक प्रभाव व्यक्ति के कर्मकृत्य ईश्वरीय कृपा पर ही निर्भर होते हैं, जिनमें मनुष्य की दिनचर्या, रहन-सहन, खानपान, संयम ऐसे प्रमुख कारण है कि रोग उत्पन्न होते हैं, निदान मिलता है। अनुकूल होने से मुक्त भी रहते हैं। संयमित रहकर रोग मुक्त रहना सबसे अच्छा होता है। असंयमी जीवन यापित कर इलाज से रोग निदान कर भी जिया जा सकता है। अधिकाधिक चिकित्सा प्रणालियों की खोज कर ली जाय, उपकरण बना लिए जाय, दवाईयाँ बना ली जाय और तो और चिकित्सा में निपुण हस्त भी हो लिया जाय यह सभी रोग चिकित्सा से मुक्ति के उपाय ही है कि जिससे स्वस्थ रहा जा सकता है। रोग आरोग्य के साधन सुविधा के साथ रहने का यह मतलब कतई नहीं है कि इनके उपयोग की सुविधा जब है तो स्वास्थ्य की परवाह क्यों की जाय। ठीक है यह असाध्य रोगों को नियंत्रित

करना ही हुआ। समय सामयिक मौसम प्रभाव। अंग रोग त्रुटि भूल लापरवाही से उत्पन्न रोग व्यसन विकृति से उत्पन्न रोग, अंध विश्वास के कारण पनपे रोग अभक्ष-भक्षण से उत्पन्न रोग, मेल-मिलावटी अनुपयुक्त वस्तु उपयोग से उत्पन्न रोग, प्रकृतिप्राकृतिक घटना परिवर्तन प्रत्यावर्तन-प्रतिवर्तन के वशीभूत उत्पन्न रोग और तो और मानव के अपने कुकृत्यों से उत्पन्न रोग आदि आदि श्रेणी प्रकार के रोग प्रायः हुआ करते हैं, जिनसे तन-मन आत्मा तीनों दुखी परेशान होते हैं। समय सामयिक ऐसे भी साध्य – असाध्य रोग होते रहते हैं, जिन पर चिकित्सा का प्रभाव पड़ना नहीं पड़ना कोई मायने नहीं रखता है कि इस दौरान मृत्यु ही हो जाती है। यह बात अटल सत्य है कि जब जन्म हुआ है तो मृत्यु निश्चित है। यह भी तो सत्य है कि जीवन मिला है जीने के लिए। पेट प्रजनन के लिए, तो यह भूला भी क्यों नहीं जाय कि प्रजनन भर के लिए ही जिया जाय। प्रयोज्य प्रयोजन सभी भुला दिए जाय। यह तो और भी अनुचित है। बस अब समझने मैं आ जाना चाहिए कि रोग उत्पन्न क्यों होते हैं? कि चिकित्सा की जरूरत पड़ी है। प्रकृति-प्राकृतिक ऋतु मौसम के अनुकूल संयम नियम आचरण और आवश्यक – आवश्यकता के अनुसार आहार विहार आदि को संतुलित कर भी हो तो जीवन जिया जा सकता है। फिर क्या पड़ी है कि प्रकृति प्राकृतिक के विरुद्ध आचरण, असंयमी, लापरवाही का जीवन जिया जाय। आदि-आदि सब रोग रोगी के ही तो लक्षण हैं। कि इलाज कराते कराते रोगों का आना-जाना रुकता ही नहीं है। जब विभिन्न रोगों से पीड़ित होते हैं, इलाज कराते-कराते आर्थिक भार से लद जाते हैं, नये-नये रोगों से ग्रसित रहकर पीड़ित रहते हैं तो जीवन जीने से घृणा उत्पन्न होती है, लेकिन कुछ ऐसे भी जीवन जीने के उत्साही होते हैं कि सभी तरह अभाव परेशानी उठा लेंगे, लेकिन मरना बिल्कुल नहीं चाहते हैं। भले वे बिस्तर पर पड़े यातनाएँ सहते रहे, लेकिन प्राणान्त नहीं हो प्रयत्न प्रयास से कभी हार नहीं चाहते है। तो रोग ग्रस्तता से पीड़ित तो रहना ही पड़ेगा। निरोग रहने की आशा करना व्यर्थ है। इसके अतिरिक्त चिकित्सा के एलोपैथिक, आयुर्वेदिक, होम्योपैथिक, नेचुरलपैथी,

विभिन्न प्रकार की कल्प चिकित्सा देशी घरेलू इलाज आदि कराते ही रहते हैं। इतने से के अलावा झाड़ा – फूंकी, तंत्र-मंत्र, देवी-देवता का पूजन, पाठ, बलि, मान मनोति संकल्प, वृत्त उपवास, तीज-त्योहार आदि आदि सभी प्रकार से यही प्रयास जीवनभर किए जाते रहते हैं कि रोग ग्रसित हुआ ही नहीं जाय. हो भी गए तो रोग निवारण कर निरोग्य ही बने रहे, लेकिन यह असंभव है। कारण कि जीवन यात्रा का भी क्रम होता है। भ्रूण, शिशु, बालक, तरुण, जवान, अधेड़, बुढ़ापा। इसके पश्चात समाप्ति अर्थात् मृत्यु जरूरी है ही, तो एक।बार जन्म लेकर सदा के लिए जिन्दा नहीं रहा जा सकता है, हुआ भी नहीं है, ना ही होने वाला है।

उपरोक्त रोग आरोग्य की भूल मान्यता की वास्तविकता से नकारा नहीं जा सकता है। हाँ हत्या, आत्महत्या, घटना, दुर्घटना, मारपीट, दवाओं के रिएक्शन, महामारी, भुखमरी, अतिवर्षा, सर्दीगर्मी आदि आदि अनेक ऐसे कारण है कि जीवन रक्षा की सावधानी। के पश्चात भी मौत हो जाती है। यहाँ ऐसी अपेक्षा की विषम स्थिति परिस्थिति के आने से रक्षा सुरक्षा के प्रयास रेल, सड़क, मार्ग, ट्रैफिक कंट्रोल, हेलमेट, लाइसेंस, एकांगी मार्ग, रुकने चलने के सिग्नल, रक्षा सुरक्षा के उपाय पुलिस थाना चौकी चलित चिकित्सालय, एक्बूलेंस, फर्स्ट एड बॉक्स आदि आदि सुविधा व्यवस्था तो जुटाई जाकर स्थाई की जा चुकी हैं। जिससे जीवन रक्षा हो सके। इन सबकी शिक्षण संस्थाओं को पृथक-पृथक शाखाओं के मान से भी व्यवस्था की गई है। डॉक्टर, मेल नर्स फीमेल नर्स, शोधशाला, प्रयोगशाला, लेबोरेटरी, सहायक प्रबंधक, व्यवस्थापक आदि सभी सुविधा व्यवस्था भी की जाती है। कृषि वनस्पति पशु चिकित्सालय, चिकित्सालयों की व्यवस्था भी की गई है। विशेष विशेषता के मान से चेकअप, जांच, एक्सरे, सोनोग्राफी, आईसी, ब्लड बैंक आदि की व्यवस्था भी की गई है। जनसंख्या निरोध वंशवृद्धि आदि के उपायों की व्यवस्था होती है। अब तो केवल प्राण डालने और मौत को पकड़ने की व्यवस्था शेष

बची है। बाकी हर प्रकार की चिकित्सा व्यवस्था उपलब्ध है। यह व्यवस्था प्रकृति के बाद समष्टि गत मानव की बड़ी सूझ-बूझ पूर्वक कायम की गई है कि मन मानसिक, पागलपन, तनाव, मूकबधिर आदि तक की चिकित्सा सम्भव हो चुकी है।

उपरोक्त संक्षिप्त विवेचन के साथ हम इस बात को भी प्रकट कर रहे हैं कि अधिकाधिक मन मानसिक, शंका, तिरस्कार, तनाव, अविश्वास आदि कारणों से मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं, जिनका इलाज आध्यात्मिक वृत्त उपवास, संकस्य योग साधना अनुष्ठान, मनोरंजन केन्द्र क्लब, खेल, टीबी सीरियल आदि विधियाँ अपनाई जाती है। हंसी-खुशी का माहौल आदि बनाया जाता है। रोगी को मन मानसिकता के परिवर्तन के लिए विभिन्न प्रकार के चलचित्र, सर्कल, खेलकूद आदि मनोरंजन एवं मानसिक क्रियाओं में परिवर्तन के प्रयास वाले विभिन्न प्रयास सुलभ किए जा चुके हैं।

यह सब क्या है मन रोग आरोग्य के उपाय, जिनके सहारे मानव-जीवन जीने के आशय से व्यवस्थित व्यवस्था बन चुकी है। मन मानसिक दृष्टि से जीवन जीने की कला के मान से मन रोग आरोग्य के आधुनिक सभी उपाय बराबर सुलभ बनाये जा चुके हैं। मन मानसिक दृष्टि से स्वस्थ, स्वास्थ्य, निरोगी जीवन के जो उपाय सुलभ किये जा चुके हैं, दृष्टिगत कम नहीं है और भी प्रयोग परीक्षण, खोज जारी है। शासकीय, अर्धशासकीय, व्यक्तिगत समाजसेवी संस्थाओं के माध्यम से काफी व्यवस्था की जा चुकी है। वृद्धि भी होती जा रही है। यह सब ऐसी व्यवस्था है कि मन मस्तिष्क, आत्मा सभी सुखी सम्पन्न की अधिक तो क्या आवश्यक आवश्यकता की सभी व्यवस्था वर्तमान में उपलब्ध हो चुकी है। ताकि मन रोग निरोग बना रहे। रोगी मन अशान्त रहता है। कई कठिनाई मन के रोगी रहने से भी उत्पन्न होती है। निरोग की अवस्था मन को बेफिक्री देती है। मन प्रसन्न है तो सहयोगी जन भी जीवन जीने का लुत्फ उठाने भागीदार बने रहते हैं। जहाँ मन मानसिक रोग हैं तो अब उनके इलाज का भी

मानसिकता के ही आधार पर समस्या का समाधान मानव मन मानसिकता द्वारा होने पर मानव मन जीवन का विशेष आनंद लेने लग गया है। यह सब मानव मन मानसिकता की विशेषता का ही परिणाम है।

--- * ---* ---* ---

२९. मन युवा क्या हुआ?

वर्तमान प्रबल होता है, जहाँ सम्हला जाता है। जो कुछ किया जाता है उसे परिणाम की सम्भावना को समझ बूझकर अपनाया जाता है। यहाँ भूल भी होती है। सुधारी भी जा सकती है, जीने की राह बनाई जाती है। पूछा भी जाता है, मानना भी पड़ता है, सीखना भी पड़ता, मनमानी भी करना पड़ती है। यह सब सक्षमता प्रतिभा और योग्यता पर निर्भर है, कि कौन सा मार्ग पकड़ा जाता है। मन न मौन रह सकता है और न उसे चुप बैठना है, बोलना भी है, चलना भी है, कुछ गोपनीय भी रखना है तो कुछ बताना भी है, लेकिन आकर्षण और बहाव में आकर भटकने से बचना भी है। यह सब होता कब है, जब निर्णय के बिन्दु पर आ खड़े होते है, तब कितनी जागरूकता है। स्वयं निर्णय ले लेता है। कहा जाता है कि वर्तमान में सब जानते है कि उन्हें क्या करना है। इस पर आकर यौवन लौट आता है, मन युवा बनकर निर्णय लेकर चल पड़ता है। यह अवस्था १३ से १९ वर्ष की उम्र, जहाँ शारीरिक मानसिक बदलाव आते हैं। समझदार और सतर्क अभिभावक का मार्ग पकड़ना होता है। परवरिश का बहुत कुछ असर पड़ता है। दिल की बात उत्पन्न होती है। मन करना चाहता है। बस निर्णय की राह देखी जाती है। कुछ छिपाया भी जाता है। कुछ बताया भी जाता है, ऐसी भी स्थिति होती है कि बताया कुछ जाता है, लेकिन किया कुछ और ही जाता है। मन युवा है तो क्या हुआ, क्या करेगा? करेगा वहीं जो इस समय मन करेगा। करवाएगा। इसके अतिरिक्त सब गौण हो जाता है, रिलेशनशिप का निर्णय ले लिया जाता है। क्या हुआ, वहीं जो मन ने कहा चाहा और कुछ नहीं हुआ। जीवन भी राह अकेले से काटना भी कठिन हो जाता है। संग साथ हो भी जाता है, करना भी पड़ता है। संग साथ से राह चलने में नीरसता को स्थान नहीं मिलता है। मार्ग पूरा हो जाता है। गंतव्य को आने पर ही पता चलेगा कि क्या हुआ?

लिव इन रिलेशन और यंगस्टर एक ठीक ऐसी ही अंधी पकड़ है, जहाँ कुछ नहीं सूझता है। परिणाम पर नहीं सोचा जाता है, मान प्रतिष्ठा कहाँ है, रह जाती है। अभी क्या है। हो जाता है। मन लग जाता है, संबंध जुड़ जाते हैं। विश्वास हो या नहीं हो, हो जाता है। होता आया है, समय-समय पर रूप तरीके उसे देखने के नजरिए बदलते रहे हैं। यहाँ मन शंका से हट जाता है।

समानता सबको चाहिए, लाई जाती है, परिवार में स्त्री-पुरुष लड़के-लड़की सब होते हैं। जीवन बीतता है तो फिर असमानता लाना बेकार है। स्कूल में सह शिक्षा (को एजूकेशन)। धन्धा, व्यापार, राजनैतिक और तो और सामाजिकता में भी समानता होना ही चाहिए। एकांगी से कोई काम चलता नहीं है। यह है स्वतंत्रता का आलम। जिसके आधार पर वर्तमान चल पड़ा है। क्यों? क्या?कैसा?कब?कितना?कब तक?आदि प्रश्न ही समाप्त हो गए। हैं। वर्तमान है यह याद रह गया है। वर्तमान क्या है? वहीं जो हो जाय। कर लिया जाय। इसके अलावा वर्तमान होता ही नहीं है। वर्तमान कभी समाप्त भी नहीं होता है। वह एक प्रकार से स्थाई है। जब वर्तमान ऐसा है तो वर्तमान में किया भी वर्तमान अनुसार ही तो होता है। यहाँ किसी और प्रकार का घालमेल किया भी क्यों जाता है। ठीक है न। अब स्वयं पर आ जाती है किसे की उसका वह वर्तमान कैसा है ? स्वयं से बातचीत करे कि स्वीकृति मिल गई भूख आवरण मुक्त हुई। इच्छा कामना में सोच आया क्या अच्छा हुआ। ठीक छोड़ो। जो होगा हो जाने दो। देखा जाएगा। अटल हो गये। निश्चिंतता अभी चुप हो गई इंतजार रहा। अब क्या होगा। परवाह मिटी। सिलसिला चला है तो चलाना है। बस सोच बना। नियम कानून क्या है? जो होगे सामने आ जावेंगे। क्या करेंगे। अपने मालिक अपन खुद ढर्रे का सोच छोड़ो। लीक से हटो लव तो सब जगह करना पड़ता है। इस लव के चक्कर पर सोचने ही से तो विवाह की रस्म नहीं बनी है। जिसकी इतनी लम्बी लिस्ट बन गई है कि सोचो तो सबका मतलब है लव। देख भी लो कि यह सही है कि नहीं। क्या देखना है विवाह माने विवाह। प्रकार

पद्धति तौर तरीके, विश्लेषण पर क्यों समय खराब किया जाय। कोई आवश्यकता नहीं। सब जानते हैं। तरीका कोई सा फिट कर दो। विवाह की मान्यता मिल ही जाती है। रिलेशनशिप रेस्पेक्ट से चालती है। रेस्पेक्ट समाप्त रिलेशन समाप्त दूसरा रास्ता पकड़ो तो फिर उसे जो कहो। रिलेशनशिप ही तो होगा। उसमें भी रेस्पेक्ट चाहिए।

नाबालिग का रिलेशन कोई रिलेशन नहीं है। शादी पूर्व रिलेशन कोई रिलेशन नहीं है और है भी। और तो और अब तो शादीशुदा के रिलेशन भी कोई मायने नहीं रखते है। हवाई यात्रा में मेरिड, विदआउट मेरिज, बेचलर विद मेरिड, बेचलर विदआउट मेरिड आदि आदि फॉर्मलिटी क्या है? यही तो है जिस पर सोचा समझा जा रहा है। ठीक है। समाज में रहना ही तो हैं। आखिर अपना निर्णय ही तो लेना है। विचार आता है। अपने निर्णय में भी तो भूल हो सकती है। भूल पर एकदम विचार गया। मन सोच मैं पड़ गया। सोच समझ का चिन्तन मनन चल पड़ा। विचार बना कि हमारे पहिले वाले ने भी तो सभी स्थिति परिस्थितियों का सामना किया है। तब ही इस लिव इन रिलेशन को विवाह के प्रकार तौर-तरीकों को माना। निर्धारित किया। चला। वर्तमान में वर्तमान तरीके से तो सोचा समझा जा सकता है। मन ने स्वीकृति दे दी। ठीक है। मन युवा है। अपने बारे में वह भी तो सोचेगा। सोच समझ लेना चाहिए। फिर जो होगा वह सही होगा। नियम कानून बाद में बनते हैं। जैसा कि होता भी आया है। समाज जैसा स्वीकार करेगा वैसा प्रचलन में आ जावेगा।

वर्तमान सदा एडवांस में चलता है। वह चलते वक्त आगा पीछा, बगल झांक कर चलता है। जरूरी है। युवा में कहो या टीन एज कहो यह सब एक ही एज ग्रुप की बात है। लिव इन रिलेशन देशकाल, समय-सामयिक, सामाजिक स्तरण आदि सब कुछ जागृति पर निर्भर होकर ही निर्णयित होता है। हमको अपनी सभ्यता-संस्कृति, देशकाल मर्यादा, ख्याति, मान्यता आदि अपना आपा देखकर ही तो निर्णय लेना है मन युवा हुआ तो क्या हुआ? क्या उसे यह सब

कुछ भुलाकर अपनी मर्जी का करना उचित है ? नहीं। जीवन जीवनी कोई एक दिन दो दिन की थोड़े ही है। वह वर्षों की है बिताने की स्थिति - परिस्थिति को ही देखकर निर्णय लेना पड़ेगा। लेते हैं। कुछ कंडीशन में ही स्वीकृति दी जा सकती है। वही केवल वर्तमान से लेकर भविष्य में होने वाली संभव सम्भावना, अकेले को समय व्यतीत करने की व्यवस्था। इसके लिए शादी पूर्व शादी बाद वर्तमान की दृष्टि से सोचना है। भविष्य भी तो वर्तमान ही बनेगा। अतः रक्षा सुरक्षा की दृष्टि से सोचना है। गोद लेना, गोद जाना, विधवा विवाह, विधुर विवाह, तलाकशुदा पर पुनर्विचार कर सम्बन्ध स्थापित करना। आदि आदि। और नहीं तो यह तो देखना ही पड़ेगा कि लिव इन रिलेशन का सम्बन्ध केवल क्षुधा सन्तुष्टि के लिए नहीं होना चाहिए। लेकिन भविष्य सुविधा, मर्यादा, नैतिकता, सामाजिकता और मानवीय व मानवता के मानदण्डों पर भी देखकर, समझकर निर्णय लेना है। मानव पशु तो है नहीं जो केवल पेट प्रजनन की क्षुधा ही शान्त कर सन्तुष्ट हो लेगा। उसका क्षेत्र सृष्टि के सभी प्राणियों से भिन्न है। वह पशुवत जीवन व्यतीत कर समाज में नहीं रह सकता है। उसे मानव की मानवीय मर्यादा में रहना है। जीना है। समाज उसे तब ही स्वीकारेगा। इस सोच को ध्यान में रखना है। लिव इन रिलेशन के जागरूक होकर वर्तमान में ऐसे संबंधों को कायम करना है जहाँ अंधे, भूखे बहेरे, बुद्धिहीन की भूमिका नहीं निभाना है। मानवीय समाज मर्यादा के प्रगतिशील आयाम-कायम करना है, जिससे मानवता का गौरव से सिर ऊँचा रहे। शालीनता, नैतिकता, मानवता, हर वर्तमान की नितान्त अति आवश्यकता है। लिव इन रिलेशन में कुछ भी करना मानवता स्वीकार नहीं करती है। मानव सामाजिक प्राणी है। सामाजिकता के आधार पर आकर्षण, प्रेम, विश्वास, सम्बन्ध, सौहार्द आदि सब होता है। होना भी चाहिए, लेकिन मर्यादा खोकर नहीं होता है। अपनी अपने नामों की सामाजिक प्रतिष्ठा तो रखनी पड़ेगी। तब ही मानव की मानवीयता गौरवान्वित होगी। बस इसी में सोचना है। मन युवा है क्या हुआ वर्तमान को तो बनाकर रखना ही है। भविष्य का भला इसी में है।

३०. मन ठाने भ्रष्टाचार माने

इन्द्रियाँ मन की आज्ञाकारी होती है। अपने आप में चंट चालाक भी होती है। तब ही तो वे मन से काम करवाने में सफल रहती है। मन सरल सादा सहयोगी तो होता ही है। साथ में लोभी, लालची, अय्यासी, हिंसक आदि आदि भी होता है। तब ही तो वह इन्द्रियों पर नियंत्रण कर पाता है। प्रायः मन वही करता है जो मानवता को सुहाता है। मन के सामने वर्तमान को झुकना पड़ता है। जमाने को क्या दोष देना। करते तो हम और हमारा मन है। मन की थाह पाना कठिन है। इन्द्रियाँ मन के विरुद्ध नहीं जा सकती है। मन की आज्ञा से सब कुछ होता है। शरीर चलता है हृदय मानता है। मस्तिष्क के विचार व्यक्त करता है। सब होता रहता है। मन घृष्टता भ्रष्टता, नैतिक-अनैतिक, भ्रष्टाचार, बलात्कार, हिंसा आदि आदि जैसे जघन्य काम भी करने की चूक नहीं करता है। इन्द्रियाँ तो आज्ञा मिलने का इंतजार करती रही है। दूसरों को भी अपना बनाना, उनके विरुद्ध अपनी इच्छा स्थिति परिस्थिति को देखते क्या करना क्या नहीं करना करता रहता है।

घृष्टता- भ्रष्टता, अनैतिकता, चोरी, धोकेबाजी, बलात्कार, हिंसा, भ्रष्टाचार आदि जीवन की विकृतियाँ हैं। जो मानव को अपने मार्ग से भटकाकर ऐसे रास्ते ले जाकर पहुँचा देती है कि वह अपने आप में मनोवैज्ञानिक रूप से दोषी, अपराधी बन जाता है। उसे यह भय बना रहता है कि उसकी गलती कही पता नहीं लग जाय। नहीं तो वह अपराधी बन जाएगा। अतः वह अपने आपको छिपाये रहता है कि वह मानवीय सम्बन्धों को भी निभा नहीं पाता है। क्रमिकता समझ में आ भी जाती है। किन्तु भ्रष्टाचार ऐसा आत्मघाती अपराध है कि वह दूसरों को तो क्या स्वयं को भी धोखा देता है। विश्वास खो बैठता है। अपनी भ्रष्टता घृष्टता को छिपाते हुए मूक पाषण जैसा बनकर नकली हंसी खुशी दिखाता रहता है कि भ्रष्टाचार मान जाएगा।

यह शर्मिन्दगी भ्रष्टता तो क्या मन सराहना कर स्वीकारेगा नहीं. लेकिन मन लोभी, लालची, स्वार्थी, चापलूस और न जाने क्या क्या है जो दबाकर रहता है। यह सत्य है कि यदि मन ठान ले तो वह इस दुर्गुणों को निकाल बाहर फेंक भी सकता हैं। वह भ्रष्टाचार की स्वीकृति ही नहीं देगा। परिस्थिति बदल जाएगी। भ्राष्टाचार नहीं होगा। लेकिन स्तर का सोच बनना भी तो चाहिए। सोच नहीं बनता है तो भ्रष्टाचार जैसे गलत काम होते रहते हैं। मानवता मन को झकझोरा करती है। धिक्कारा करती है। यह सही है कि मानव अपने मन के दुर्गुणों को कितना भी छिपाये वे एक न एक उसके व्यवहार से शनैः शनैः आभास होते होते प्रकट हो ही जाते हैं। इस निम्न स्तर की घृष्टता को मानना पड़ेगा कि उसने जो कुछ किया है। वह अच्छा नहीं किया है। हमने यह भी देखा है और होता भी है कि इस प्रकार भ्रष्ट, भ्रष्टाचारी अपने आसपास ऐसे सम्बन्ध बनाकर रखते हैं कि जो उन्हें खतरे की आशंकाओं से सचेत रहने की सूचना से अवगत कराते हैं। यहाँ तक भी अपने मध्यस्तों से वे भ्रष्टाचार के काम कराते है जो होते रहते हैं। भ्रष्टाचारी इस बात से भी बहुत कुछ अंश में निर्भर रहता है कि उस भ्रष्टाचार में हिस्सेदारी सम्बन्धित अफसर, कर्मचारी, नेता, व्यापारी आदि सबकी रहती है। यह भ्रष्टाचार, भ्रष्ट आदि काम ऐसी लिंक बद्ध रीति नीति। तौर तरीके समय बद्ध होते हैं कि पता भी नहीं लग पाता है। तब ही तो अपराध शोध शाखा के कर्मचारी पता भी नहीं लगा पाते हैं। अपराध होते रहते हैं। संरक्षण में पनपते भी रहते हैं। भ्रष्टाचारी अपनी काली कमाई से अकूत सम्पत्ति के मालिक बन जाते हैं। उसे छिपाये रखने के विभिन्न तरीके अपनाते हैं। अपने परिवारजन, परिचितजन आदि के नाम सम्पत्ति को करते रहते हैं। देश-विदेश के बैंकों में विभिन्न नामों के टोकन खाते खोलकर जमा रखते हैं। अपने मालिकाना के टोकन चिह्न, घड़ी, अंगूठी, मोबाइल आदि में उनके बैंक से ईशू होते हैं। जमीन जायदाद विभिन्न नामों से खरीदकर रखते हैं। घर परिवार में आवश्यक आवश्यकताओं से हटकर आरामदायक तो क्या विलासिता की वस्तुओं का उपयोग बड़े आसानी से करते रहते हैं। भवन, बंगला, मकान के

निर्माण में अधिक पूंजी लगाते हैं। दर्शाते कम हैं। वाहन आदि सुविधा सामग्री का अधिकाधिक उपयोग वे करते हैं। अनैतिकता के उपभोग में वे खर्च करने में बड़े माहिर होते हैं। माँस मदिरा का सेवन करते हैं। अनैतिक जो भी सम्भव हो वे सभी काम करते हैं। क्योंकि उनके पास खर्च करने की कमी तो होती नहीं है। फिर चूके भी क्यों।

हवाला भ्रष्टाचार भी इतना सुधरा हुआ तरीका है कि कही से कही का हेराफेरी किया जा सकता है। भ्रष्टाचार ऐसा छिपकर किया हुए लेन-देन होता है कि जिसे कुर्सी नीचे छिपा हुआ कहा जाता है। भ्रष्टाचारियों में आपस में प्रेमभाव एक-दूसरे पर विश्वास बहुत होता है। वे एक दूसरे की लीक आउट बिल्कुल भी नहीं होने देते हैं। इसके बदले भले उनके प्राण संकट भी सहना पड़े तो सहने को तैयार रहते हैं। दण्ड को वे अपराध का मुआवजा मानते हैं। भ्रष्टाचार से कमाई के हक के वे मालिक अपने आपको समझकर निर्दोष जैसे अपने आप को मान लेते हैं। क्योंकि सजा आर्थिक दण्ड शारीरिक सजा से मुआवजा चुकारा हो ही जाता है। भ्रष्टाचार इतने गोपनीय तरीकों से होता है कि जल्द से जल्द त्वरित गति से कर लिया जाता है जिसकी हवा फैल नहीं पाती है। आवाज हो नहीं पाती है। पैसा रोटेशन और हवाला से अपने मुकाम पर पहुँच जाता हैं। उसकी भनक भी नहीं लग पाती है। अरबों-खरबों का कालाधन देश-विदेश के गोपनीय संस्थाओं संस्थानों में छिपाकर रखा रहता है। इस भ्रष्टाचार के परिणाम स्वरूप अनेकों बुराईयाँ पैदा होती रहती है। महंगाई बढ़ती है। गरीबी बढ़ती है। प्रतिव्यक्ति आय अनुपात कम होती चली जाती है। देश के विकास धीमी गति से कार्य होते है। कर्जदारी बढ़ती है। मुद्रा का अवमूल्यन होता है। भ्रष्टाचार ऐसी बला होती है कि भ्रष्टाचारी में धन खाते लूटने छिपाने की ऐसी आदत पड़ जाती है कि वह हजम करता ही चला जाता है। मन इसमें परिपक्व हो जाता है।

भ्रष्टाचार की तैयारी ऊपर स्तर से नीचे तक उतरती है। जो ऊपर से प्रारंभ होकर निचले स्तर तक बड़े आसानी से पहुँच जाता है। क्योंकि श्रृंखला तो नीचे से बनती है। सफलता ऊपर के तबके को मिलती है। सभी को अपने आपके मान के अनुपात का लाभ होने से सभी बढ़ावा देने में भागीदार बने रहते हैं। यहाँ तक कि परिवार वालों को भी भनक नहीं रहती है।

भ्रष्टाचार पनप जाने के पश्चात रोक पाना बड़ा कठिन हो जाता है। क्योंकि लोभी लालची स्वार्थी मन रोक लगाने के पक्ष में नहीं। होता है। रोक नैतिक भाव भावना उत्पन्न होने पर ही लग सकती है जैसे स्वयं को घृणा, अविश्वास आदि। असाध्य रोग उत्पन्न होने से कर्म कोसे जाते हैं। आउट होने पर अपराधी बनाये जाने से अपमानित दण्ड का भागीदार होना पड़ता है। बदनामी, बेइज्जती, निन्दा, बुराई आदि होती है। अपमान सहना पड़ता है। आवश्यकता से अधिक हर काम में खर्च भार उठाना पड़ता है। अपने हिस्से में आई रकम राशि कम होने लगती है। खर्च के सहारे हर काम होते हैं। आदि। खर्च करना पड़ता है। सबसे अच्छे उपाय है कि परिवार में जो सदस्य होते हैं उनमें से बहुत कम को भ्रष्टाचारी के भ्रष्टाचार का मालूम रहता है। वह भी आधा अधूरा, लेकिन आभास सभी को रहता है कि भ्रष्टाचार से आय होने पर ही तो इतने ऐशो आराम से रहा जा रहा है। तो सदस्यों को सरल सादगी की ओर अपना रुख रखना चाहिए। मौके मौके पर ऐशोआराम की निन्दा करना चाहिए। यह भी किया जा सकता है कि सीधे सीधे विरोध नहीं कर पाते हैं तो परिवार के सदस्यों से मना करना चाहिए। सबसे अच्छा तो यह है कि बच्चे इस बात को सीधे कहें कि पापा, चाचा, मम्मी आदि जो भी है सम्बोधन कर कहे कि आप भ्रष्टाचार का पैसा घर में नहीं लाये। विभिन्न प्रकार के उपयोग करने से मना करें आदि आदि। इस संक्रामक बीमारी व रोग का इलाज इस प्रकार परिवार में ही किया जाना बहुत आसान तरीका है और रोक लग सकती है। मन को भ्रष्टाचार न करने की ठान ली जाय तो सभी समस्या दूर हो सकती है।

फिर यह कहना कि मन माने जब न। अरे मन मान जाय, मन में ठान लिया जाय तो भ्रष्टाचार भी मान जायगा। उसे करने वाला मन ही साथ छोड़ देगा तो फिर रखा भी क्या है। भ्रष्टाचार होगा ही नहीं। भ्रष्टाचार समाप्ति के लिए मन को तो मनाना ही पड़ेगा। मन माना कि भ्रष्टाचार का खेल समाप्त होगा। बिना मन के मनाए या मन द्वारा मना किये बिना भ्रष्टाचार समाप्त होने वाला नहीं है। दूसरे शासन कठोर हो जाय तो भी भ्रष्टाचार मिट सकता है।

३१. सरल सादगी मन सन्तुष्ट

सुखी उन्नत जीवन मन सन्तुष्ट, सन्तोष शान्ति का श्रेष्ठ और सर्वोत्तम उपाय सरल सादगी के जीवन यापन में अहसास होता है। इसके बाद ही आनन्द अनुभव होता है। जिसमें अभाव लगता नहीं है और किसी विशेष योग्यता शक्ति क्षमता आदि की कोई सी आवश्यकता भी नहीं सताती है। सुख चैन का जीवन प्रसन्न मन से जीने को मिलता है। इससे और ज्यादा चाहिए भी क्या। एक-एक व्यक्ति को सरल सादगी से जीवन जीना आता ही नहीं है। तब ही तो उनको मन मैं शान्ति भी नहीं मिल पाती है। वह परमात्मा सादा जीवन जीने वाले और अन्य प्रकार से जीवन जीने वालों में कोई भेदभाव रखता है। नहीं। उसकी दृष्टि में सब एक से होते हैं। वह कोई किसी से किसी प्रकार की खुशायद, चापलूसी भी नहीं चाहता है। वह तो सन्तुष्ट जीवन का हामी है। भ्रष्ट, व्यसनी, अनैतिक आचरण करने वाला, हेराफेरी करने वाला आदि प्रकार के मानव सन्तुष्ट जीवन से बहुत दूर असन्तुष्ट, चिन्तित भयावही जीवन ही उनका होता है। वे सरल सादगी अपना भी नहीं सकते हैं। क्योंकि उन्हें ऐसा जीवन जीना आता ही नहीं है। शान्ति, सन्तोष तृप्ति निश्चितता का जीवन जीने के भी कुछ मानदण्ड होते हैं, जिनके अपनाने पर ही वह जीवन मिलता है। संक्षिप्त में ऐसे उपाय इस प्रकार हो सकते हैं कि अहसास कर अपना मार्ग भी चुने।

वर्तमान का मानव ज्ञानी, होशियार, साधन सम्पन्न, सोच समझ का धनी है। वह कुरीतियों को पसन्द नहीं करता है। अन्ध विश्वासी भी नहीं है। सत्य वृत्तियों के साथ ही जीना चाहता है। अनैतिक आचरण, दुष्टचा, भ्रष्टता, कटुता, दुश्मनी पसन्द नहीं करता है। मिल-जुल कर रहना भी चाहता है। सद्वृत्ति धारण का पक्षपाती हैं।

कुटेवों के कारण भले वह व्यसनी हो सकता है। अन्यथा मादक वस्तुओं के सेवन का विरोधी है। व्यसनी वह होना भी नहीं चाहता। अभक्षी

वस्तुओं का भक्षण तथा बुरी आदतों को बिलकुल पसन्द भी नहीं करता है। उसकी नजर में शान शोकत दिखावा व्यर्थ है। इनमें होने वाले खर्च से बचता है। आय से अधिक खर्च के लिए भ्रष्ट तरीकों से धन संग्रह के बुरे परिणाम वह भुगतना पसन्द नहीं करता है। अपने बीच दखलंदाजी वह नहीं चाहता है। यह फिर अलग है कि मनुष्य चाहता कुछ है। कहता कुछ है और करता कुछ और ही है।

होना तो यह चाहिए कि चरित्रवानों की कद्र की जाय। उनसे दिली मोहब्बत भी रखी जाय। उन्हें सम्मान दिया जाय। अभिनन्दन किया जाय। उनके जीवन का अनुकरण किया जाय। इससे व्यर्थ का अहंकारी अपराधी जीवन जीने वाले अपने आप आत्म प्रताड़ित होंगे।

प्रेस मीडिया सचरित्रवानों का प्रशंकित बने। उनके जीवन के अच्छे कामों को उजागर करे। उनके प्रशंकित कामों को अपने प्रेस मीडिया के समाचार पत्रों के माध्यम से सार्वजनिक जीवन में प्रेरणादायी बनाये। फूहड विज्ञापन व्यर्थ के समाचारों को बढ़ावा देने से रोके। सुधारात्मक, शिक्षाप्रद विज्ञापन सीरियल की नियमितता अपनायी जाय। सार्वजनिक मंच पर अच्छे व्यक्तियों को लाया जाय। उन्हें विचार व्यक्त करने का अवसर अधिक दिया जाय। फालतू की हुल्लडवाजी को समाचार पत्र स्थान न दे। विज्ञापनों में शालीनता बरती जाय।

समाज सुधार साहित्य निर्माण, प्रकाशन, उपलब्धि को महत्व दिया जाय। जन सहयोग से ऐसा साहित्य प्रकाशित और वितरित किया जाय। सभ्यता सांस्कृतिक के अच्छे आयोजन और टीवी सीरियल बराबर चलते रहे। कुप्रचलन के केन्द्र कायम नहीं होने दिये जाय। अपमानित, बहिष्कार कर उन्हें स्वस्थ समाज विरोधी सिद्ध किया जाय।

केन्द्रीय, प्रान्तीय स्थानीय शासन व्यवस्था जन हितैषी प्रगतिशीलता नीति अपनाये लागू करे। अपराधियों को ऐसे दण्ड दें कि सार्वजनिक जीवन में उनका जीना भी कठिन हो जाय। गलत कामों से लोगों को भय, घृणा होने लगे।

समाज सुधार संस्थायें सम्पत्ति बटोरने की अपेक्षा सुधार कार्य करे जन समर्थन जुटायें अच्छे सेवाभावी प्रतिभाओं को चुनाव जिताकर संसद, विधानसभा, पंचायत में भेजे। भ्रष्ट परिवारवाद, जनविरोधी नेताओं को चुनावों में जीतने का अवसर ही नहीं दें।

आय से अधिक संग्रहित सम्पत्ति को जप्त कर सार्वजनिक कामों में लगाई जाय। सर्व सुविधा को सार्वजनिक जीवन में हर सम्भव तरीकों से लाया जाय। सर्वसाधारण से लेकर विशेष तबकों और विशेष व्यक्ति से नीचे वाले सभीजनों को यह चाहिए कि मर्यादानात्मक जीवन जीने के लिए हर स्तर पर शालीनता अपनाई जाय। स्वच्छ मन, सभ्य व्यवहार तो हर व्यक्ति अपने आप ही अपना सकता है। अपनाये।

हमारा यह अटूट विश्वास और मानना है कि उपरोक्त पर विचारा जाय। सरल सादगी को समझा जाय। सरल सादगी किसी को अपने स्तर से गिराकर जीवन जीने के आशय से नहीं अपितु प्रभावक और आडम्बर पूर्ण कुप्रचलनों के साथ हावी न होकर जीवन जीने से आशय है। प्रगतिशीलता के उन सभी तौर तरीकों को शालीन ही माना जावेगा जिनसे मानव को मानव बनकर जीवन जीने की प्रेरणा मिले। पशुवृत्ति की प्रेरणा उन्माद तो वृत्ति प्रकृति से अपने आप ही आती है। जब हम मानव है तो इस पशु वृत्ति को मानवीय जीवन में आने भी नहीं दे। इसमें हमारी रुचि और समर्थन दोनों ही होना चाहिए।

सरल सादगी जीवन जीने की सामान्य स्तर की वह स्थिति है कि जिसमें धनवान, गरीब, प्रतिभावान, सामान्य सभी अपने अपने रहन-सहन के

स्तर में यह तो कर ही सकते हैं कि अपने आप को जन समर्थन नीति से गिरकर हावी होने का फूहड तरीका नहीं आपनायें। यहाँ हमारा यह मानना है कि सांस्कृतिक पारिवारिक संस्कार कला ज्ञान विज्ञान की उच्चतम सद शिक्षा परिवार, समाज और शासन सभी स्तर पर अच्छी से अच्छी व्यवस्था के प्रचलन चलाये जाय। इनसे अच्छे प्रचलन व्यवहार में आयेंगे। रुचि पैदा होगी। होती है। मनौवैज्ञानिक अच्छे प्रभाव पड़ते हैं। व्यक्ति स्वतः ही अच्छे-अच्छाई की ओर वृत्ति प्रवृत्ति को अपनाने लगते हैं।

व्यवस्थित, शक्ति, सन्तुष्ट तृप्त जीवन सभी चाहते हैं नियम कानूनों के दायरे में आकर दंडित, प्रताड़ित होना कोई भी पसन्द नहीं करता है। किन्तु मन संतुष्ट नहीं हो पाता है। कारण यही है कि मन को सरल सादगी से दूर रखा जाकर ऐशो आराम की आदत में डालने के तौर-तरीकों का सिलसिला बनाये रखा जाता है। औसतन जीवन निर्वाह के तरीकों से संतुष्ट रहने का प्रयत्न ही नहीं किये जाते हैं।

व्यक्ति आत्म संतोषी बने। आदतों में सुधार करें। मन को लुभाये नहीं। स्टेण्डर नाम से शौक शौकिया नहीं बने। अतिरिक्त खर्च की ओर नहीं जाये। न्यूनतम में गुजारे की सोचे देखा-देखी में ऐसे तौर-तरीके नहीं अपनाये कि स्वयं की मनोवृत्ति बिगड़े सम्पन्न है तो वह व्यसनी नहीं बने। विज्ञान वैज्ञानिकी साधनों का उपयोग भले करे किन्तु मानवीय शालीनता बनाये रखे। व्यर्थ के ऋणि बनकर उपयोग की आदत नहीं बने। बड़ी-बड़ी उम्मीद अवश्य रखे किन्तु वहाँ खर्च को उसी सीमा में रखे उससे जोड़ कर अन्य फालतू खर्च नहीं बढ़ाये नहीं तो खर्च के लिए अतिरिक्त आय के उचित तो ठीक अनुचित तरीके अपनाने पड़ते हैं। आयोजन अपने स्तर के भले हो किन्तु उनमें भी फिजूल खर्ची रोकें।

उपरोक्त विवेचन से यह सांकेतिक स्पष्ट तो हो ही चुका है कि सरल सादगी का जीवनयापन व्यवस्था बहुत अच्छी तरह से बन सकती है। इससे अच्छी सूझ-बूझ कोई हो तो उसे भी स्वीकार किया जा सकता है। समाज में सभी प्रकार के सम्पन्न प्रतिभावान, गरीब, अज्ञानी व्यक्ति होते हैं, लेकिन सरल सादगी से रहना किसी के स्तर को गिराना नहीं होता है बल्कि सभी के समर्थन का भागीदार अवश्य बनाता है। वह स्वयं भी तत्व, संतुष्ट, शक्ति से सराबोर होकर अपने जीवन में आनन्द का अनुभव करता है। सन्तुष्ट मन से प्रगति के सभी मार्ग अपने आप समझ में आने लग जाते हैं। सरल सादगी सन्तुष्ट जीवन का आनन्द अपने आप में अलग ही है। असंतुष्ट के मन में तमाम विकार आए बिना कभी नहीं रुकते हैं। आते ही रहते हैं। संतुष्ट मन ही इन्द्रियों की व्यवसनी उछाल पर नियंत्रण कर सकता है। सरल सादगी मन सन्तुष्ट की वृत्ति प्रवृत्ति श्रेष्ठ है। वृत्ति को प्रवृत्त किया जाय। प्रवृत्त प्रवृत्ति को वृत्ति में ढाला जाय। मन सन्तुष्ट जीवन में शान्ति आनन्द से भरा पूरा सदा बना रहेगा। सरल सादगी जीवन का सबसे बड़ा मन संतुष्टि का लक्षण है। जितना चाहो उतना अपना लो। इसी में सार है।

३२. मन चुस्त दिन मस्त

तृप्ति – संतोष, संतुष्टि – शान्ति, मस्ती – मस्त, स्फूर्ति- फुर्ती, निश्चिंतबेफिक्र और स्वस्थ – तंदुरुस्त आदि से जब मन भरपूर होता है, तब। बात ही अलग बन जाती है। दिन तो क्या घन्टा मिनिट और सेकंड तक का सदुपयोग होने लगता है। सुस्ती- आलस्य, थकान, हरारत आदि का कोई पता भी नहीं लगता है। मस्ती – मस्त बनी रहती है। काम बनते चले जाते है। उन्नति के रास्ते खुल जाते हैं। प्रगतिशीलता की आशा में मंजिल पास आती लगती है। लगता है समय अपना बन रहा है। तो वह भी हमें अपना बना ही लेगा। मन क्या से क्या सोच पकड़ में लग जाता है। इस दौरान कुछ ऐसे कारण अपना असर दिखाने लग जाते हैं कि जिनके होते सोचे समझे योजना बद्ध कार्य भी होने से रुक जाते हैं। उत्साह ठंडा पड़ने लगता है। उन्नति रुकती सी लगती है। समय यों ही बिना कुछ पाये नष्ट न हो जाय सुधार के प्रयत्न प्रयास किए जाते हैं।

मस्त-मस्ती में दिन कब पूरा हो गया कुछ ऐसा लगता है कि और इतने जल्दी दिन बीत गया है। काम भी व्यस्तता के साथ हमारे प्रयत्न यह होना चाहिए कि सोच समझ, सूझ-बूझ, कौशलकुशलता, होशियार – होशियारी, सहयोग – सहकार, अकेले- दुकेले आदि सभी प्रकार से जानकारी जानकार आदि से अपने अज्ञान को दूर कर ज्ञान के प्रकाश वृद्धि करे। अभावों की पूर्ति के लिए क्षमता जुटाने के लिए श्रम साधन, व्यापार-धंधे में उन्नति कर आय से अभाव मिटाये। आलस्य बर्बादी की निशानी है। तुरत – फुरत काम निपटाये। कार्य में कोई शर्म नहीं होती है। अपने अहं को सामने न लाकर सरल सादगी अपनाई जाय। अनादर, तिरस्कार, बहिष्कार जैसी स्थिति बने ऐसे कामों को न करें तथा किसी तिरस्कार नहीं करे असंतुष्ट होकर रहना आत्मघात है। सदा हर फन में संतुष्ट रहने का प्रयास हो। आतंकों से घबराकर अपना आपा नहीं

खोये आदि ऐसी बातें हैं कि मन चुस्त रखा जाय। अपने अन्दर की कमियों को दूर किया जाय, तो निनिश्चत है कि उस दिन के कोई के भी काम न छूटेंगे न अधूरे रह पायेंगे। सभी काम होते चले जायेंगे। मन-मस्ती दिन मस्त का अहसास होगा।

अज्ञान, अभाव, आलस्य, असमंजस, अहंकार, अनादर, असंतोष और आतंक से मन टूटा – टूटा सा हो जाने पर उस दिन के काम करने में काफी रुकावट होती है। अतः मन को चुस्त दुरुस्त रखा जाय। शान्ति रखी जाय। मन असंतुष्ट रहता है तो लगता भी नहीं है। उत्प्रेरणा भी नहीं आती है। मन की ग्लानि बनी रहती है। समय नष्ट होता चला जाता है। जो समय बीत जाता है वह वापिस आने वाला नहीं होता है। इसलिए शान्ति, संतोष, धैर्य, धीरज सबूरी के साथ मन लगाने की कोशिश सदा बनी रहे, तो दिन व्यस्तता के साथ भी खुशहाली से बीतेगा। सभी काम पूरे होते चले जायेंगे। दिन अच्छा निकलेगा। किसी प्रकार का पश्चात फिर होगा ही नहीं।

मन को तनाव, असंतोष से फ्री रखा जाय। काम योजनाबद्ध किये जाय। प्रत्येक काम के लिए दिन समय की सुविधा को देखते हुए निश्चित किया जाय। दिन प्रारंभ होने के साथ उस दिन के काम जो करना है निश्चित हो ही जाना चाहिए। आधे अधूरे काम समय रहते पूरा कर ही लेना चाहिए। जानकारी अनुभव की दशा में काम की गुणवत्ता अपने आप बनी रहने से मन को श्रजनात्मक आनंद का अनुभव अपने आप ही होता रहता है।

उपरोक्त बातों को ध्यान से सोचा समझा जाय तो हमारा विश्वास है कि वह दिन सही बीतेगा। गत अधूरे काम पूरे होकर भविष्य के लिए किये कार्यों में मदद मिलेगी। आने वाला समय सुधरेगा। इससे यह स्पष्ट ही समझ में आ जायगा कि मन मस्तिष्क के काम बिना रुकावटों की परवाह किए जाते हैं तो समय अपने अनुकूल अवश्य हो जाता है। यह सुधरा हुआ समय फिर मनुष्य

की सफलता का कारण बनकर हौसला बढ़ाता है। इस स्थिति परिस्थिति में सिद्ध होता है कि मनुष्य को अपने प्रयासों से समय का उपयोग किया, सभी काम हुए। अर्थात् मनुष्य ने समय का निर्माण किया। इसी प्रकार समय अनुकूल हो जाता है तो फिर मनुष्य की उन्नति होती है। जिसे यह कहा जा सकता है कि समय ने मनुष्य को बना दिया। मनुष्य ने समय को पहले बनाया तब समय ने मनुष्य को बनाया। इस आदान-प्रदान प्रक्रिया से स्पष्ट है कि दिया जाने पर ही मिलता है। जो रोके से नहीं रुकता है। इससे मन को शक्ति मिलती है। आध्यात्मिक उपलब्धि से राग द्वेष समाप्त होते हैं आदि भौतिक उपलब्धि शत्रु बाधा नहीं सता पाती है। आधिदैविक उपलब्धि से पीड़ा निवारण होकर मन को शान्ति मिलती है। मन मानस मनुष्य ज्ञानी ध्यानी, वीर बहादुर, साहसी-हिम्मतवाला सेवक तो क्या सहायक जैसे हौसले वाला बन जाता है। स्थूल सूक्ष्म कारण और महाकारण तक उसके मन की झंकार पहुँचती है। पाँचों कोष, अच्छी तरह काम में व्यस्त रहते हैं। घंटों चक्रों का चक्र अनुकूल दिशा में काम कर अवश्य सफल होंगे। ऐसी कोई स्थिति परिस्थिति बनेगी ही नहीं कि अपने किये पर पश्चाताप ही नहीं करना पड़े। ऐसे मन के पवित्र, नम्र, सदा अच्छे, गंभीर, निश्चित, मधुर और प्रभाव और प्रभाव बने बिना कभी नहीं रह सकते हैं, जिससे इनके गुणों में असाधारण वृद्धि से मन नहीं घबराता है। अच्छाई के गुणों से मोह से वियोग, लोभ से हानि, अहं से अपमान, कामना से अभाव, क्रोध से अशान्ति, भोग से रोग, ईर्षा से असंतोष और अन्याय से भय दुख दोषों से मन कभी दुखी नहीं हो पाता है। जिससे समय का सदुपयोग हमेशा होता रहता है। जो मानव के हित में ही उपलब्धि जाती है। इससे जीवन सम्पदा इन्द्रिय, समय, विचार और साधन चारों क्षेत्र की सम्पदा मानव के हित में बनी रहती है, जिससे मनुष्य का सुख साधन उपयोग का बाह्य जगत अनुकूल प्रभावित होता है। इसी प्रकार आत्मिक सम्पदा अन्तःकरण अपने अनुकूल बनता है। आत्मिक स्तर पर मन प्रभावित होता है, जिससे आत्म निर्माण से व्यक्ति निर्माण तक की सफलता मिलती है। मन के भाव – सदभाव, सदज्ञान

और सदकर्म के पक्षपाती प्रभावी भाव पैदा होते हैं, जिससे परिश्रम – पुरुषार्थ, आत्म विश्वास-आत्मनिर्भरता और प्रसन्नता-मानसिक संतुलन के सूत्रबद्ध सुधार जीवन में मिलते हैं। मन मानसिक स्थिति उत्कृष्ट बनती है। ऐसे में मानव मन श्रम, समय, चिन्तन, कौशल, प्रभाव और परामर्श के उपयोग की सलाह देने में सदा तत्पर बना रहता है। तो मन के निर्धारित सूत्र उद्देश्य तौर-तरीके, इच्छा शक्ति, प्रयास, प्रयत्न सकारात्मक दृष्टिकोण और ईश्वर विश्वास की दृढ़ता आती है। मन समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी जीवन सुधार के अच्छे कामों में लगा रहता है। घर परिवार में सत्य, धर्म, प्रेम, शान्ति, अहिंसा, सहयोग, सहकार के संस्कार मिलते हैं। मन गौरवान्वित होता है। मन भूतकालिक सुधार आधार का अनुकरण कर भविष्य मान सुधार भाव से वर्तमान में अपने अनुकूल परिवर्तन के आयामों से परिवर्तन में आशातीत सफलता प्राप्त करता है।

उपरोक्त विवेचना में हमने मानव मन मानसिकता चुस्त रहने के विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार किया है। हमारा तो पक्का यह विश्वास है कि मन मानसिकता परिपुष्ट होती है। फिर ऐसे सदा अच्छे अच्छाई की ओर मन मानसिकता सदा सहायक, उत्प्रेरक बनी रहेगी। जो मानव को सचिन्तन के लिए अमादा बनकर मन संतुष्टि उत्पन्न करती रहेगी। जीवनकाल का आज अर्थात् वर्तमान सदा उपयोगी कामों में काम आयेगा। गलत काम हमारा यह सुनहरा समय मन को उस ओर भी जाना तो दूर झुकने तक नहीं देगा। मन मानसिकता के सुधरने पर ही तो जीवन जीने का रसास्वादन, आनंद मिलता है। इस आनन्दानुभूति के लिए हर मानव मन तरसता रहता है। जो यहाँ इस स्थिति में आसानी से प्राप्त हो जाती है। ऐसे कभी मानव को ऐसा अहसास कि जीवन का स्वर्णिम काल बर्बाद हुआ अहसास ही नहीं होगा। अपितु लगेगा कि हमने अपने जीवन को जीने के लिए स्वर्णिम काल का निर्माण कर लिया है। तो फिर क्यों नहीं स्वर्णिम काल हमारे मानवीय स्तर को भी आदर्श की उस

चरम सीमा जहाँ नैतिकता की दुहाई दी जाती है गुणों से भर देता है। मानव अपने समय के निर्माता से समय द्वारा निर्माण किया जीवन बिताने का भागीदार बन जाता है। क्या यह हम हमारे जीवन के लिए आवश्यक नहीं है? इंकार कभी नहीं किया जा सकता है। तो अब यह आशा (अपेक्षा) जिज्ञासा (इच्छा) के अनुकूल विश्वास पैदा हो ही जाना चाहिए कि मन के चुस्त रहने पर ही दिन मस्त हो पाता है। जो जीवनकाल की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि होती है। दूसरे शब्दों में यो भी कहा जा सकता है कि मन के चुस्त, सक्रिय, क्रियाशील रहने पर ही मस्त मस्ती के दिन व्यतीत कर जीवन जिया जा सकने का आनंद ही कुछ ओर ही अर्थात आशातीत आनंददायी सफलता का अहसास होता है। यही तो मन चुस्त मन मस्त का अहसास है। दिन मस्त, मस्ती, सफलता से बीते जीवन की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि ही तो हैं।

३३. मन की दौड़ रास्ता खोज

मन चंचल है। भागता फिरता है। भाव विचार, इच्छा, जिज्ञासा जैसा कुछ न कुछ अन्दर ही अन्दर हुआ ही करता है। उधर आशा बाट देखती रहती है कि कब आये और अपनी इच्छा व्यक्त करे परमात्मा ने आत्मा स्वरूप का प्रभारी बना छोड़ दिया। उसने प्रवृत्ति निवृत्ति के दो मार्ग पकड़े। बाल्य, यौवन, वृद्ध तीन अवस्था के मार्ग से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चार का मार्ग चौराहा पहुँचा। जहाँ उसे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश पाँच तत्व ज्ञान हुआ। काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद, अहंकार, छः दोषों का पता लगा। एक दो होने के चक्कर में सात फेरा लेकर षडज (स), ऋषभ (रे) गांधार (ग) मध्यम (म) प्रकृति (प) धैवल (ध) और निषाद (न) सात स्वर अलाप। रवि, सोम, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, आठ दिन में शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघन्टा, कूष्माण्डा, स्कन्दमाता, कालरात्रि, महागौरी, सिद्धिदात्री, दुर्गा नौ देवी शरण जा पहुँचा। यहाँ उसे पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, ईशान, आग्नेय, नैत्रमृत्य, वायव्य, आकाश और पाताल दस दिशा ज्ञान हुआ। अपान, प्राण, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और जीवात्मा, ग्यारह प्राण से परिचित हुआ। मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ, मीन, बारह राशियों में बंट गया। फिर तेरह की छलांग मारकर तल, अतल, मित्तल, सुतल, तलातल, रसातल, पाताल, भूलोक, स्वर्गलोक, महलोक, जानलोक, तपलोक, और सत्यलोक चौदह भवन मालिक हो गया ॥ प्रतिपदा से पूर्णिमा पन्द्रह तिथियों में रमण कर सोलह श्राद्ध सर्वपितृ अमावस्या को पूजा गया। विदा हो लिया। इस यात्रा में मन को जीवन जीने का ज्ञान मानवीय जीवन की विशेषता से वह परिचित हो गया। जीवन यापन के साथ उसकी खोज चलती रही। ज्ञान होता गया, जीवन के विविध आयामों कई मोड़ से निकलता गया। यात्रा के विभिन्न बिन्दु पर चिन्तन मनन चलता रहा। उसने पाया कि शब्द में शक्ति है। बिना शब्द के जीवन व्यवहार में आदान-प्रदान सीमित हो जाता है। प्रश्नोत्तर

का क्रम बन जाताहै। सामान्य ज्ञान हो जाता है। चिन्तन मनन के प्रश्नोत्तर में शब्द सह प्रकट शब्द शक्ति ज्ञान हुआ। शक्ति शाब्दिक शब्द अक्षरों से टकराने लग गये। सर्वप्रथम भाषा ज्ञान के अनुसार बैखरी वर्णमाला में आ गये उरकंठ शिर जिव्हा, दन्त, नासिका, ओष्ट और तालु आठ भेदों में बंट गये। फिर ध्वनि में आकर वर्णमाला के अक्षर स्थान ग्रहण करते हुए विभिन्न भाषा की वर्णमाला में बदलते चले गये, जिन्होंने अध्ययन को सरल बना दिया। मुद्रण कला के सहयोग से भाषा अध्ययन चल निकला। अध्ययन की पहुँच सीमा विस्तार लेकर विषयों का ज्ञान कराने में लीन हो गई। मानव सुनियोजित जीवन बिताने लगा। रुचि के काम चुने। चुनौती भरे काल में मानसिक तैयारी की। परिणाम निकले। जोखिम उठाने तैयार हुआ। सामर्थ्य को आँका। स्पर्धा में कूद पड़ा। परमात्मा को अवगत कराने के लिए उपासना में माला पकड़ा। उसमें १०८ दाने को सीताराम बोला। तो उसमें अक्षर मात्रा के स्थानों की गिनती १०८ ज्ञात हुई- स-३२, -९ -४, त -१६, १ - २, र-२७, १-२, म – २५ = १०८ अर्थात सीताराम सिद्ध हुआ, वर्णमाला में उनके स्थान की गिनती भी १०८ होने से विश्वास हो गया। फिर भी ४ नाम ३६, १२तिया ३६, १८ दूना ३६ के तीनों ३६ का योग १०८ आया पहचाना। इस प्रकार मन की दौड़ खोज करती रही। प्रगतिशीलता आती गई। खोज तो जारी हैं। जारी रहेगी भी।

कहते हैं मन ने अपनी रास्ता खोज दौड़ गुरु को दिए हुए ज्ञान से सफल बनाई। उसने ज्ञान और कला के लिए अवलम्बन तलाशा। अवलम्बन शब्द गुरु मिला। जिसका स्वरूप तलाश किया। पता लगा। विश्व ब्रह्माण्ड रचयिता ब्रह्मा गुरु स्वरूप माने जाते हैं। प्रत्येक मांगलिक कार्यों से सर्वप्रथम ब्रह्मकलश इसी निमित्त होता है। ब्रह्मा द्वारा दिया गायत्री महामंत्र गुरुमंत्र होता है। जन्मदात्री माता प्रथम गुरु होता है। गुरु मंत्र देने वाले गुरु द्वितीय गुरु होते हैं। तृतीय में पिता (ब्रह्म स्वरूप) गुरु होते हैं। गुरु शिष्य को दीक्षा में अपने पुण्य प्राण और तप का अंश शिष्य को देते हैं। शिष्य निहाल हो जाता है। कहते हैं समय से पूर्व

और भाग्य से ज्यादा नहीं मिलता है। गुरु अवलम्बन मिल जाने पर सब कुछ सुलभ हो जाता है। ऐसी मान्यता है कि गुरु आशीष अर्थात् संरक्षण मिल जाने पर तो शिष्य के मन की दौड़ खोज में नवीनता तलाशती है। आशातीत दौड़ सुलभ होने लगता है। शिष्य श्रद्धा विश्वास समर्पण भाव आस्था ज्ञान दीक्षा ग्रहण के साथ गुरु को अर्पण करता है। शिष्य के लिए गुरु ज्ञान, चेतना, प्रवर्तक, प्रेरक प्रेरणा और नियंत्रण के रूप में शिष्य को जीवन ज्योति के आधार सम्पूर्ण जीवन में बने रहते हैं। गुरु गुड़ चेला शकर शक्ति साकार हो जाती है। हमने भी गुरु महामंत्र (गायत्री महामंत्र) के २४-२४ अक्षरों पर २४-२४ अध्याय भिन्न-भिन्न भावार्थ में महाकाव्य 'प्रज्ञावतार का प्रज्ञायुग', महाकाव्य 'प्रज्ञा प्रकाश' तथा गद्य ग्रंथ 'युग सुधा' लिखा है। ब्रह्मा वंश वंशज गौरवगाथा में आदि अनादि अतीत अर्वाचीन सृष्टि कालिक महाप्रबंध काव्य 'ब्रह्माज्जली' लिखा। साथ ही युग कालिक तादात्म शक्ति चित्रण आभास 'युग बोध चालीसा' लिखा है। यह सब गुरु की गौरव गरिमा है के कारण हो पाया है। गुरु द्वारा ज्ञान, सलाह, मार्गदर्शन, आशीष शिष्य को दिया जाता है, जिससे उसका अहंकार गलता है। गुरु दाता शिष्य पाता है। माता-पिता गुरु जीवित देवी देवता होते हैं। श्राद्धपक्ष ऋण मुक्ति पक्ष कहा जाता है। सर्वप्रिय अमावस्या ऋण मुक्ति आशय का ही तो आध्यात्म मान्यता का सम्बोधन है।

वर्तमान में गुरु के स्थान पर टीचर (Teacher) और विद्यार्थी के स्थान पर स्टूडेन्ट (Student) शब्द प्रचलन में आ चुके हैं। शब्दश: उनका अर्थ इस प्रकार हम आँक सकते हैं- Teacher का अक्षर T (Thoughtfull) विचार पूर्ण E (Efficient) कुशलतापूर्ण, A (Articulute) उच्चारक कला पूर्ण C (Confident) विश्वासपूर्ण H (Hardworking) परिश्रमपूर्ण, E(Emphatic) प्रभावपूर्ण, R (Rehresent) समझाइशपूर्ण आशय पूर्ण अर्थ में लिया जाता है। इसी प्रकार Student का अक्षर शाही S (Studius) स्वाध्यायी, T (Truthfull) सत्यवादी, U (United) समग्रता, D (Discrihent) बौद्धिक क्षमता, E

(Efficient) कुशाग्रता, N (Nonvoilent) सात्विक, T (Truth Worthy) सत्यशाही आशयपूर्ण अर्थ में लिया जाता है। जो समय कालिक शब्दार्थ आशय मन का सोच है।

मन सोच प्रभावित पर्यावरणीय में मार्ग प्रशस्त करना होता है। जैसे वर्तमान में गुरु (टीचर) शिष्य (स्टूडेन्ट), गुरुकुल, स्कूल, कॉलेज आदि नाम प्रचलन में आ चुके हैं। वर्तमान में समग्र विद्या ज्ञान के स्थान पर विषय विशेष शिक्षा ने स्थान ले लिया है। विज्ञाने वैज्ञानिकीय दौड़ में मन को जीवन निर्वाह मानवीय मार्ग खोजना है। मन खोजी है। सुधार करता रहता है। स्कूली शिक्षा रोजगार और आय आधारित हो चुकी है। तो मन को उपलब्ध आमामी अनुसार जीवन निर्वाह मार्ग खोजना है। स्थिति में निर्वाह करना है तो मन मानसिकता का है खोज-बीन, उद्देश्य, लक्ष्य, इच्छा-जिज्ञासा, पालनपूर्ति,उपलब्धि आदि उसी दिशा धारा के होने पर ही मन की खोज सही होती है। जब जीवन निर्वाह सुख-सुविधा, आरामी, विलासी होना है तो मन का मानना यही है कि मानव समय से पिछड़े नहीं, यह मार्ग प्रशस्त करना उसका ही काम है। हमने अपनी पुस्तक 'युगधारा' मैं इसी आशय का मार्ग प्रशस्त किया है। ठीक भी यही है कि मन की दौड़ समय से पिछड़ने नहीं दे। मानवीय सोच प्रगतिशील बना रहे। मन के इसी सोच विशेषता का परिणाम है कि वह इतनी उन्नति कर आज जीवन-यापन में सक्षम होता चला जा रहा है। यह मन की दौड़ रास्ता खोज ही तो हैं कि मानव-मानवीय सामाजिक जीवन की उत्कृष्ट संस्कृति को अपनाता चला जा रहा है। मानव मन खोजी दौड़ में इतना कुशल है कि वह समय माँग से क्या उसे पिछड़ने नहीं देगा। यही तो अपेक्षा है। उसकी विशेषता है। इस प्रकार हर वर्तमान के मानव में जनरेशन गेप कहीं भी नहीं आयेगा। मन की दौड़ रास्ता खोज मानवीय उत्प्रेरणा उसे समय कालिक मानव बनाये रखेगी।

--- * ---* ---* ---

३४. मन सबल वर्तमान प्रबल

मन महा प्रचण्ड शक्तिवाला डायनमा है। वह बुद्धि का व्यवस्थापक इन्द्रियों का नियंत्रण है। शक्ति भण्डार है। स्मृति जागृति धृति इसकी भूमि है। चेतना उसकी दृष्टा है, लेकिन आत्मा उसकी चालकहै। मन को गति आत्मा ही से मिलती है। अतः मन प्राण आत्मतत्व है। वह धारणा बुद्धि चित्त का प्रतीक है। अनुभवों का वह प्रेमी है। मन पर प्रभाव भोजन, वस्त्र, स्थान और साहचर्य का पड़ता है। मन भूत का चिंतन भविष्य पर विचार और वर्तमान का क्रियाशील है। मन की जो विशेषतायें हैं यह कारण है कि वह सबल है। मन में विकृति सुकृति सभी भरी रहती है। क्या करना क्या नहीं करना बुद्धि को संज्ञान मन के सहयोग ही से होता है। बॉडी लेंग्वेज में वह भेद खोलता है। बुद्धि के प्रभाव से मन का पता चलता है कि वह कैसा क्या है? क्योंकि वह अदृश्य है, लेकिन हाव-भाव से वह व्यक्त है। चाह व्यक्त मन ही से होती है। मन भागता बहुत जल्दी है। वह शान्त रह ही नहीं पाता है। वह योजना में मस्त, चिन्ता में ग्रस्त, तनाव में परेशान शान्ति शान्त किन्तु पसन्द में प्रसन्न अवश्य रहता है। मन ही ऐसा है कि जो विचारों की संख्या व्यक्त करता है विचारों की भीड़ उमड़ पड़ना उसकी कमजोरी है। क्योंकि वह नियंत्रित नहीं कर पाता है। वह विचार शून्य अवश्य हो सकता है। करने वाले कार्य में वह ध्यान को केन्द्रित कर देता है। भूतकाल की याद भविष्य काल की सम्भावना वर्तमान रहना मन ही सिखाता है। भूत और भविष्य पर विचार में उसका वेग बढ़ जाता है। इससे वर्तमान में बिगाड़ हो जाता है। कुछ का कुछ हो जाता है। विचार से खाली बैठ मौज मनाना वर्तमान की उपेक्षा होता है। मन वर्तमान को आन्दोलित करता है। नीरसता और अरुचि के समय मन को वर्तमान में लगाना रोचक और प्रसन्नता व्यक्त करता है। ध्यान से करना कार्यशैली ही सजगता और सावधानी है। तब ही बड़े काम किये जा सकते हैं। खराब मूड़ में विकृतियों को रोकना चाहिए। विकृतियों का दबाव के कारण मन फैल भी हो जाता है, लेकिन सुकृतियों में

सफल होता है। इस प्रकार से मन विशेष विशेषतायें हुआ करती है। जिन्हें समझना है, तब ही वर्तमान को अनुकूल बना पायेंगे। वर्तमान के बिगड़ने पर तो मन, बुद्धि, भाव, विभाव, विचार सभी पर बुरा असर पड़ता है। तो आईये वर्तमान को भी देख लें।

समस्यायें और विचार बहुत हैं। एक समय एक करना ही अच्छा है। वर्तमान मूड पर निर्भर है कि कैसा है? सामान्य में होता है। अपूर्ण में हो रहा है और संदिग्ध में होगा। वर्तमान की तीन दर्शायें होती है। भूतकाल में सामान्य हो गया, असामान्य में हो लिया अपूर्ण हो लिया था। पूर्ण में हो चुका। संदिग्ध में हो लिया होगा और हेतु हेतुमें हो लिया जाता। ये भूतकाल की छः दशायें होती है। इसी प्रकार भविष्य को देखें तो ज्ञात होगा कि सामान्य में जायेंगे और सम्भाव्य में जाना होगा। ऐसे केवल दो ही दशा होती है, लेकिन हमको वर्तमान देखना है। जहाँ भूत भविष्य दोनों का वर्तमान ही होता है। जहाँ स्पष्ट होता है। वर्तमान का सामान्य बहुत ही स्पष्ट होता है, जहाँ स्पष्ट ज्ञात हो जाता है। जैसे मैं लिखता हुँ। अपूर्ण सामान्य लिख रहा हुँ। कौन क्या नहीं होने से अपूर्ण ही माना जाएगा। इस समय लिख रहा होगा। यह संदिग्ध वर्तमान की दशा है। इस प्रकार हमने वर्तमान ही मैं भूत और भविष्य पर विचार कर देखा कि तीनों में वर्तमान ही ऐसा है कि तीनों में केन्द्र है। अत: वर्तमान को मुखिया कहा जाय तो कोई आतिशयोक्ति नहीं होगी। काल का काल वर्तमान प्रधान है। भूतकाल का कोई मतलब नहीं। भविष्य होगा कोई हाथ में नहीं। वर्तमान है बस यह ही सब कुछ हुआ। किया था, करेंगे, इसकी बजाय यह कि करते हैं। यहीं तो देखना वर्तमान है। इसीलिए वर्तमान प्रबल हुआ है। वर्तमान की प्रबलता को कम नहीं किया जा सकता है। ठीक है मूड में तो सब भरा है, लेकिन सब का सब वर्तमान में आ नहीं जाएगा। आएगा और होगा वही जो वर्तमान है। बस वर्तमान की विद्यमानता उसकी प्रबलता है। इसके अलावा किसी की कुछ नहीं है। वर्तमान प्रबल है होगा और रहेगा। इसमें हेराफेरी नहीं हो सकती है। अच्छे को अच्छा,

खराब को खराब और खराब को अच्छा सब कुछ वर्तमान में ही तो हैं। भूत भविष्य तो लालाइत और आशा पर छूट जाते हैं। मौजूद है तो वह है वर्तमान। जो होना है। होता है होगा सबका सब वर्तमान ही व्यक्त करता है। वर्तमान के अलावा शेष दोनों में कोई भी नहीं बता पाता है न बता सकता है।

हमने मन की सबलता वर्तमान की प्रबलता दोनों देखी। यह लगा कि अपने अपने मान से दोनों दृढ़ निश्चित और स्थाई है। इनमें हेर-फेर नहीं हो सकता है। तो मान लेना चाहिए, कोई संदेह नहीं होना चाहिए. ठीक है, मान लिया। अब हमें दोनों के संयुक्त और आपस में एक का दूसरा, दूसरे का पहिले दोनों ही दृष्टिकोण से देखना भी चाहिए। देखते हैं। भूत को नकार भविष्य को समभाव्य तो सम्हाल वर्तमान ही है। इसी प्रकार मन का आत्मतत्व प्राण और बुद्धि का प्रबन्धक या व्यवस्थापक मन होता। इन्द्रियाँ तो आत्मा की आवाज, बुद्धि की क्रिया व्यवस्था, लेकिन मन के मूड पर ही तो सब आकार ठहर जाता है। मन का मूड कैसा है। यह ही तो इस समय है जिसे देखना समझना है। तब ही तो सही बिन्दु का आकलन होगा। नहीं तो वर्तमान में फिर क्या है। होना नहीं होना दोनों ही बेकार है। होता है यही तो होना है, जो चाहिए। तो मन और वर्तमान दोनों की ही उपस्थिति में सब कुछ है। नहीं तो अपूर्ण सम्भावना संदिग्ध और हेतु हेतु से कोई मतलब नहीं निकलना है। सबका सब तो मन का मूड और वर्तमान का सामान्य ही सबसे अच्छा है। मन की मौजूदगी मूड और वर्तमान नहीं सामान्यता वर्तमान दोनों की संयुक्तता के अलावा अपना अपना क्या औचित्य है। यह भी देखा जाना है। आओ देख लें।

मन मूड में स्थिति दर्शक है। मूड अनुकूल प्रतिकूल, शून्य, सामान्य, कैसा है देखा जाना है। बस वैसा ही उसका वर्तमान होगा। इससे हटकर कुछ नहीं। मन की मूड अर्थात् स्थिति और स्वभाव भाव भावना झंझावात बहुत है। किसे अपनाये किसे छोड़े यह कठिन हो जाता है। उचित यही है कि एक-एक को स्थान दिया जाय। मन का मूड एक-एक को बहुत अच्छी तरह देख लेता

है। फिर वह कभी भी कैसा ही हो। मन उसकी स्थिति को स्पष्ट कर सामने व्यक्त कर देता है। प्रेम, प्यार, दुलार अथवा चाह, चाहना, सम्भावना अथवा घृणा, त्रुटि, क्रोध, संदिग्ध आदि जो भी जैसा हो वह मन से व्यक्त हो जाता है। मूड के अच्छे बुरे अथवा अनुकूल प्रतिकूल अथवा पक्षपाती विरुद्ध अथवा हितैषी विरोधी अथवा उचित अनुचित आदि आदि। जैसा भी हो वह व्यक्त हो जाता है। वर्तमान मूड की इस भिन्न-भिन्नता अथवा सामान्य अथवा विशेष विशेषता आदि-आदि पर निर्भर होता है। वह भी इसी उसी कैसी जो स्थिति है उसके अनुकूल वह भी अपने मान से सोच समझ उचित-अनुचित पर ही तो आधारित होकर दर्शित होता है। वर्तमान मन जैसा मौजी, चंचल, होशियार जैसा तो हैं नहीं कि जिसका अपना कोई मूड हो। वह तो जैसी स्थिति सामने आये उत्पन्न होती है। इस पर निर्भर है जो है वह सब ठीक है। वर्तमान वर्तमान है। वह भूत नहीं है। तो भविष्य भी नहीं है। भूत को भविष्य, भविष्य को भूत है तो अपने आप में एक साथ कुछ भी बिना वर्तमान के नहीं होगा। भूत और भविष्य को वर्तमान के माध्यम से ही निकलना पड़ेगा। जो होगा सब बिना वर्तमान के कही कोई कुछ नहीं हो सकता है। अत: वर्तमान प्रबल है। इसमें घटा बढ़ोतरी अतिशयोक्ति कुछ नहीं की जा सकती। अपने अपने स्तर में मन और वर्तमान दोनों ही अपना स्थान रखते हैं। मन लगन में मगन तो वर्तमान स्थिति में स्थिर हैं। दोनों के द्वारा जो स्थिति परिस्थिति बनती है वह उससे जो परिवर्तन होता है प्रतिवर्तन या प्रत्यावर्तन कैसा क्या है वह ही महत्वपूर्ण है। सत्य क्या है? न्याय और निर्भर है। ऐसा, वैसा, कैसा, क्या, क्यों, कब, कितना सब होना करना सब का सब ऊँचा है। काम हम तो जो इनके मूड स्थिति परिस्थिति से जो होता है उसका अभिवंदन कर प्रणाम करते हैं। तो बोलो –

ऐसा वैसा क्या करना करना ऊँचा काम परिवर्तन अभिवंदन तुम्हें प्रणाम।
मन सबल परिवर्तन प्रबल ठीक है, सब अपना अपना करो करते हैं काम ॥

होना जाना कुछ नहीं कहो कह लो सुनलें सुना दो है नहीं कोई यहाँ विराम।
मन मन हे, वर्तमान वर्तमान सबल प्रबल जो जैसा है ठीक है लेते है विश्राम ॥

सारांशतः - भूत बीत चुका है। परिणाम दे गया। भविष्य आयेगा वर्तमान उसे परिणाम देगा। अर्थात् आज का सकारात्मक सोच वर्तमान का प्रेरक, श्रेयक, निर्माता है। आज जो कुछ है वह वर्तमान है। परिणाम इसी वर्तमान से निकलेगा। जो कुछ सुधार निर्माण करना है। वह इस वर्तमान में करें। आज वर्तमान का सार्थक है। सार्थकता जीवन का हामी वर्तमान है। वर्तमान प्रबल है। मन उसका सबल है। यही सार्थक है। इसी में सार्थकता है। मन सबल वर्तमान प्रबल है।

३५. मन कहता लिखो ! सब पढ़े

बोल बुलन्द मन यथा कथा जो करना होता।
वर्तमान व्यथा कथा मन बुलन्द किया करता ॥
आत्मकथा होते क्रियाकलाप जो हुआ किया।
मन की कथा में घालमेल करो सुनाना होता ॥

आए दिन सामान्य जीवन में चर्चायें तो होती रहती है। एकदूसरे की कहते सुनते सुनाते हैं। दूसरे की बात कहते अच्छा बुरा जैसा भी मत व्यक्त करते रहते हैं, जो आप बीती बताते हैं वह तो यथार्थ होती है, लेकिन दूसरे की बीती जब कही जाती है तो वह अपने उससे कैसे सम्बन्ध है इस आधार पर ही उसकी कहना पड़ती है। आपनी छाप लगाना होता है तो लच्छेदार भाषा में कहा जाता है। इस सबके अलावा आत्मकथा लिखी जाती है उसमें यथार्थ को व्यक्त करना चाहिए। कि क्या, क्यों, कैसा कितना, कब किया। जीवन में क्या कैसा, कितना सोचा परिणाम निकला यह , सब बताना पड़ता है। यदि आत्मकथा में कुछ हुआ, कुछ कहा, क्या हुआ, कैसा हुआ आदि सब आता है। तो उसे आत्मकथा नहीं कहा जायगा। वह तो अवसरवादी परिस्थिति को अपने अनुकूल बनाने का मात्र प्रयास है। उस आत्मकथा की वास्तविकता तो उसका मन जानता है और कुछ कहो तो संग साथी जो उनके साथ रहे वह जानते हैं या फिर आज जो उनके साथ रहते हैं वे समझते हो, लेकिन जो आत्मकथा लिखी जाती है वह अपने को बुरा कहलाने, बुरा समझने, बुरासिद्ध करने जैसे आशय से नहीं होती है। होती है तो वह यह होती है कि देखो कितने ज्ञानी, विद्वान, समझदार, सक्षम, नैतिक, स्पष्टवादी, महान कि उन्होंने कुछ भी नहीं छिपाया। सबका सब जैसा किया वह स्पष्ट अपनी आत्मकथा में लिख दिया। यह उनका साहस ही तो है। सत्य को सत्य, यथार्थ को यथार्थ, जैसा को जैसा आदि आदि आत्मकथा में नहीं लिखा तो क्या किया? इसी पर से आत्मकथा

का औचित्य है। नहीं तो उसे आत्मकथा के स्थान पर और कुछ ही कहना पड़ेगा। जो अपने अपने मनोभाव और जानकारी पर निर्भर होता है।

लिखा इसलिए थोड़े ही लिखा जा रहा है कि लिखना है। वह तो किसी परीक्षा, टेस्ट आदि में होता है। सब लिखते हैं। हम भी क्यों लिखा क्या सोचा है सबने क्या, क्यों, कैसा लिखा क्या आप लिख सकते हैं? तो लिखो वह भी मालूम हो जाएगा। अजी क्या करें लिखने का शौक है। शौक है तो क्या आप किसी के बारे में कुछ लिखकर अपना शौक पूरा करेंगे। विरोध का मुकाबला मुश्किल पड़ जायेगा। लिखिये हम कहते हैं, हैं तो आप खुद लिखिये हमारे लेख (राइटिंग) मैं लिखवाकर क्या प्रमाण में उपयोग के लिए रखना है। आदि आपने कहा हमने लिखा। क्यों लिखा। आपकी सहमती थी और मेरी मजबूरी थी। तब लिखा। ऐसा कैसे हो गया। गलत, आपने हमारे कहने का बहाना बनाकर आपने अपने मन की हमारे प्रति क्या था वह व्यक्त किया है आदि। लिखिये लिखना अच्छा होता है। यह बात है तो क्या राइटिंग सुधारना है या लिखकर समझना है या लिखने से समझ में आ जाता है या याददास्त बनी रहे इसलिए लिखना है। डायरी इसीलिए लिखी जाती है कि उससे संदर्भ लिया जा सके। क्या यह बात है कि लिखना सीखना है। तो हमारी इच्छा है। आगे इसका क्या क्यों कितना हमें फायदा नुकसान है कभी सोचा नहीं तो सोचना करना चाहिए। सही है न। बिना किसी निश्चय के लिखने लग गए और मन में कुछ संभावना कुछ सोच विचार आदि आ गये तो ठीक नहीं तो कुछ का कुछ नहीं का नहीं, कही का कही आदि ही वह लिखा हुआ हो जाएगा। इस सबसे यह स्पष्ट हुआ कि हमारे लिखने की क्या आवश्यकता है। क्या औचित्य है। क्या संभावना है। हम जिसे लिख रहे हैं उसे कितना चाहा जाने वाला है या चाहना है। यह सब तो ठीक हैं। साहित्य जैसा होता है वैसा समाज बनता है या यों कहें कि जैसा जो होता है वह लिखा है तो वह तो इतिहास हो जाता है। फिर जिसे चाहा गया

कि जब साहित्य समाज का दर्पण होता है तो क्यों अनावश्यक लिखा जाय। वहीं लिखा जाय जो लिखना है। औचित्य यही है।

ठीक है समाज को, देशकाल स्थिति परिस्थिति को, अपने मन के औचित्य को, सभ्यता संस्कृति को किधर से किधर ले जाना कैसा ले जाना, क्यों ले जाना, कितना ले जाना। किस परिणाम पर ले जाना। आदि आदि निश्चय कर लिखा जाय तो वह सर्वोत्तम है। लिखने की कला होती है। ढंग होता है विचार होते हैं। प्रारम्भ और अन्त की दशा दिशा होती है। आवश्यकता को उकसाना है। परिवर्तन किस दिशा में लाना है। समाज का कैसा निर्णय करना है। स्वयं और दूसरों पर कैसा क्या प्रभाव पैदा करना है। इतिहास सुधारना है या नया बनाना है या उसमें कुछ जोड़ना या उसका स्वरूप बदलना है। तो किस दिशा दशा में या हम उसमें कितना क्या कर सकते हैं आदि सभी बातों का निर्णय लेकर, लिखने का सोचा जाता है।

लिखिये लिखना अच्छा होता है। तो ठीक देखिये कि हम कैसा क्या लिखते हैं। लेखन कला सीखना होगा। अभ्यास करना होगा। अनुभव एकत्र करना है। व्याकरण अलंकार का ज्ञान करना होगा। सामग्री को निर्धारित करना होगा। विस्तृत अध्ययन की रूचि बनानी होगी। संक्षिप्त लेखन, विस्तार लेखन, संकलन, सम्पादन, अनुवाद, भाषाज्ञान आदि आदि सभी पहिले सीखना व अभ्यास करना होगा।अन्यथा हमारा लिखा खासा मजाक अथवा समस्या भी तो बन सकता है। इसके लिए भी तो कुछ नियम रीति-नीति होती है। उसे तो अपनाना ही पड़ेगा। केवल लिखा और मन हल्का कर लिया। यह लिखा नहीं लिखा से कोई मतलब नहीं है। गद्य पद्य लेख, कहानी, नाटक, संस्मरण, रेखाचित्र, समाचार, सम्प्रेषण, आलोचना, प्रत्यालोचना, समालोचना, ज्योतिष, भविष्यवाणी, दशा-दिशा निर्देशन, सुझाव, संशोधन, पुनरावलोकन आदि आदि जो भी लिखना है अधिकतम ज्ञान, विचार, कहावत, मुहावरे, उलटवासी आदि पर भी तो अपना अधिकार होना चाहिए। इसके अलावा भाषा,

भाषाज्ञान, शब्दावली प्रमुख है जो हमारे पास पर्याप्त है या नहीं। यह सब पहिले देखना है। लेखन इतना आसान भी नहीं है कि जितना कहा जाता है और समझा जाता है। यह कुदरती देन भी होती है। व्यवहारिक रूप से थोड़ा बहुत साहित्यकारों, अनुभवियों से सम्पर्क भी होना चाहिए जिनसे प्रेरणा भी मिलती है। मार्गदर्शन भी चाहिए। आदि आदि।

उपरोक्त विवेचन से यह तो समझ में आ ही जाना चाहिए कि लेखक और कवि में कैसी किस प्रकार की योग्यता होनी चाहिए। इस क्षेत्र में जब जो रहे हैं तो हम कहाँ है यह भी देखा जाय जो बहुत जरूरी है।

साहित्यकार समाज का दिशा निर्देशक होता है। वह समाज सुधारक, निर्देशक, विचार परिवर्तनकर्ता आदि सभी गुणों सम्पन्न होता है। उपयुक्त श्रेष्ठ, ज्ञान विज्ञान कला से भरपूर साहित्य देना उसकी योग्यता पर है। समाज को उत्तम साहित्य की सदा आवश्यकता रहती है। साहित्य समाज का दर्पण होता है। अतः समाज के लिए अनुकूल साहित्य होना चाहिए। उत्तम कवि लेखक बनकर ही यह पूर्ति हो पाती है। मन की इस बात को समझना है कि लिखो ऐसा लिखो कि सब पढ़ने के लालायित हो। साहित्य में ज्ञान भण्डार होता है, जिसका उपयोग उपभोग सर्वसाधारण से विशेष स्तर के व्यक्ति भी कर सकते हैं। हमारा प्रत्यक्ष अनुभव है कि साहित्य प्रतिभा ने हमको समाज का समर्थन ग्रहिता बनाया है। तो लो आओ हम सोचे समझे अपनाये लिखा लिखाई क्या कहती है

साहित्य समाज का होता दर्पण साहित्य निर्माण करो।
कुरीति मिटे अच्छाई आये ऐसा मार्गदर्शक साहित्य लिखो ॥

भाषा ज्ञान विद्वविद्वता सरस सरलता सब कुछ ऐसा हो।
व्यवस्था सुधार दूरदर्शिता योजना राजनीति से यह सब भर दो ॥

पात्र पात्रता को मिले अवसर पक्षपात भेद स्वार्थ दूर करो।
हम हमारे सब है प्यारे अपना समाज अपना देश समझो ॥

गाँव से शहर शहर से गाँव सुख सुविधा सब सबको हो।
धन्धा रोजगार मिले पर्याप्त आय सब खर्च पूरा होता हो ॥

लिखो लिखाओ ऐसा साहित्य स्वस्थ समाज बनता हो।
सोच समझ बुद्धि बलिहारी साहित्यकारों तुम ही कर सकते हो ॥

कहा सुनो! लिखो पढ़ो फिर भी मन की बात तुम्हें मैं कहता हूं।
पढ़ो पढ़ाओ इन पंक्ति को बातें काम की कहता और सिखाता हूं ॥

साहित्य विषय ऐसा शिक्षक हैं दोस्त बनाओ सदा निभाओ इसको।
दोस्त दोस्ती निभाये पूरी हर दम साथ देगा समझो तुमको ॥

३६. नारी मन उद्गार सोलह श्रृंगार

सृष्टि में पदार्थ और ऊर्जा के अतिरिक्त तीसरा कुछ नहीं है। ईश्वर और जीव के बीच ब्रह्म साक्षी भाव है। यही आत्मा रूप है। ऊर्जा माया नाम है। न पुरुष नर का नाम है, न स्त्री नारी का। नर नारी शरीर की संज्ञा है। पुरुष और प्रकृति आत्मा की धातु है। जो शरीर में रहते हैं। अतः नर-नारी पर्यायवाची ही है। आत्मा और आत्मा आधारित प्राण दोनों में समान है। नर और नारी में प्रजनन शक्ति अंग आधार पर अन्तर है। इनके बीच में धर्म की न सीमा है न जात का बंधन। वृत्ति प्रवृत्ति में कर्त्तव्य बोध है मन मानसिकता में नारी की मनोवृत्ति और सामाजिक स्तरण मैं सोलह श्रृंगार उसकी अपनी पसंद है, जिसका सम्बन्ध नारी मान्यता प्राप्त तीज त्योहार करवाचौथ, श्रावणी, हरतालिका तीज, छटमईया आदि से होता है। सती शीतला, नवदुर्गा शक्ति के प्रति के श्रद्धालु और समर्पित है। सप्त मातृका कीर्ति, लक्ष्मी, घृति, सिद्धि, प्रज्ञा, सरस्वती, दुर्गा, लक्ष्मी, काली, संकल्पा, नवदुर्गा, दस महाविद्या एवं क्षेत्र क्षेत्रीय देवी आदि नारी स्वरूप मान्यता के प्रति श्रद्धा सिक्त है। सन्तान को जन्म देने के कारण बच्चों के प्रति उनमें ममत्व होता है। पुरुष के प्रति आदर सम्मान है। शरीर क्षमता के अनुसार उनके कार्यक्षेत्र अपने प्रकार के हैं। अधिकार के प्रति समानता है। पर्सनॉलिटी डेवलपमेन्ट पर वर्तमान में अधिक ध्यान देने लग चुकी है। प्यार के बन्धन को बहुत अच्छे जानती है। रिश्तों को मजबूत बनाने के तौर तरीके हाव भाव अंग विन्यास मैं उन्हें पुरुष कही कहाँ कितना लगते हैं वे सब कुछ जानती है। स्वाभिमानता अपेक्षाकृत अधिक होती है किन्तु शालीनता के नैतिक गुणों के कारण मर्यादा में सीमित हो जाती है। घर गृहस्थी व्यवस्था एवं फैमिली बजट में उनका सहयोग अपेक्षित है। सौन्दर्य काले बाल युवा तन-मन स्वभाव उन्हें खूब पसन्द है। अपनी तारीफ की बहुत इच्छुक रहती है। पद, मान, प्रतिष्ठा उन्हें बहुत पसन्द है। सास, ससुर, पति और परिजनों से क्या छिपाये क्या बताये वे बहुत अच्छी तरह जानती है। वे बचत

करना उनका स्वभाव है। शौक पूरा करना उनकी इच्छा रहती है। उनकी यह इच्छा कि पति उनसे राय मिलाकर परामर्श लेकर निर्णय लेकर चले खूब रहती है। निन्दा उन्हें सहन नहीं होती है। वे सुख सुविधा के प्रति चाहत होती है। मायके प्रति उनका लगाव अधिक रहता है। शासन द्वारा महिला वर्ग का विशेषाधिकार प्रदान है। ठीक भी है कि

नारी मन का क्या कहना जानो मानो ठीक सुजान।
पुरुष सत्ता पुरुष प्रधान नारी सत्ता नारी महाँन ॥
समाज संस्कृति में उच्च स्थान, नारी युग की रही महाँन।
मानो जानो विश्वास करो, तोल तराजू होगा ज्ञान ॥

कहने में आता है कि

नारी घर में घर आनंद।नारी निकले घर बर्बाद। जैसी नारी वैसा घर। चाल चलन में देखो सर। घर का भार उठाये। बच्चों को महान बनाये। आदर सम्मान मिले पर्याप्त। नारी मन के है उद्गार।

वृत्ति और प्रवृत्ति की दृष्टि से स्त्री-पुरुष दोनों ही सम्पूर्ण मानव है। बेटियाँ चांदनी है तो बेटे उगता सूर्य जिनसे पोषण शान्ति मिलती है। पुरुष ज्ञानी, वीर, कायर, गुलाम और स्त्री हस्तनी, पद्ममनी, शंकनी, डंकनी रूप मान्यता है। समाज मान्यता, परिवार सुविधा और उत्तरदायित्व की दृष्टि से पुरुष का सहयोगी बनकर रहना चाहिए। आदर सम्मान करना धर्म है। शालीन व्यवहार उनकी प्रतिष्ठा बढ़ाता है। पति विरुद्ध वशीकरण दुराचार कहा जाता है। मायके भाई बंधुओं के यहाँ अधिक रहना उन्हें ससुराल से ज्यादा मान्यता देना कीर्तिशील परिव्रत धर्म नाश माना जाता है। स्त्री घर की मालकिन, लक्ष्मी होती है वह घर को बनाती है। दाम्पत्य जीवन निभाते हुए रिश्तों को तरोताजा बनाये रखती है। वह गृहणी है। व्यवस्था देखरेख वहीं सम्हालती है। परिवार

परिजनों को सम्मान देना सबके सुख-दुःख का ध्यान रखना, आवभगत, स्वागत सत्कार के साथ परिवार स्वर्गिक वहीं बनाती है। वर्तमान नारी शिक्षित, समझदार, उत्तरादिय्तव को समझने वाली ऐसी वृत्ति प्रवृत्ति की होती है कि लज्जाशील, स्वभाव, व्यवहार उसके दाम्पत्य जीवन में महानता, अर्द्धगिनी की गरिमा महिमा का महत्व महात्म्य गृहिणी, लक्ष्मी, मालकिन बच्चों का प्रथम गुरु से कम नहीं है। पति की पत्नी तो वह हैं ही साथ में बच्चों की माता, सास, ससुर, ससुराल की बहु होती है। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि पुरुष का कोई अस्तित्व ही नहीं है। पुरुष स्त्री का पति, बच्चों का पिता परिवार को आर्थिक व्यवस्था का जवाबदार होता है। पत्नी, बच्चे, माता-पिता परिवार का वह हम सफर होकर अवसर की समानता का ध्यान रखता है। उसका अस्तित्व मान्यता, स्तरण परिवार प्रमुख का होता है।

हर व्यक्ति सपना, साकार, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सब कुछ उसका घर परिवार होता है। घर परिवार, संयुक्त और वृहद प्रकार का होता है। परिवार में बच्चे, युवा, वृद्ध होते हैं, जिनके अपने अपने रिश्ते होते हैं। जिन्हें वे एक-दूसरे से सम्बोधन कर बोलते और व्यवहार करते हैं। एक-दूसरेके काम आते थे। मिलजुलकर घर में रहते है। परिवार की जवाबदारी पति-पत्नी मिलकर निभाते हैं। परिवार संवाद, उसका कम्युनिकेशन परस्पर रिश्तों को ताजा मजबूत बनाता है। दूरिया हो नहीं पाती है। हो भी जाती है तो वे टिक भी नहीं पाती है। तकरार मिटता है मुश्किले हार जाती है। जीत हो जाती है। हम सफर बने रहते हैं। अकेलापन आभी जाय तो अवसर की तलाश कर वे दूरियाँ भी मिटाई जाती है। उदासीनता दूर की जाती है। अपने मन की कमी से थकते दिमाग परिवार में ताजा बनाया जाता है। तनाव आते हैं तो उन्हें दूर किया जाता है। मन को प्रफुल्ल रखने के हर सम्भव प्रयत्न परिवार परिजन बदलते समय नजरिये में शर्मिन्दगी को दूर रखकर रिश्तों का निर्वाह किया जाता है। घर में मिलजुलकर रहा जाता है। मतभेद होते हैं किन्तु मतभेद को स्थान नहीं मिलता है। क्योंकि

सब एक-दूसरे से संबंधित होकर जवाबदारी के प्रति जिम्मेदार होते है। यह सब नारी मन की विशेषता अपने स्वयं के प्रति कठोर और सभी के प्रति मुलायम बनकर रहना ही तो हैं।

पुरुष प्रधान परिवार में पिता बनने का और स्त्री प्रधान में माता बनने का दायित्व आ जाता है। रिश्तों की डोर कमजोर नहीं हो। विश्वास पैदा कर रहा जाता है। रिश्ते वहीं होते हैं किन्तु समय समय पर उत्पन्न सोच का निर्वाह किया जाता है। सामन्जस बनाकर रहा जाता है। रिश्ते निभते चले जाते हैं। स्थिति समय परिस्थिति में दूरियाँ आती रहती है जिन्हें मजबूत सम्बन्ध बनाये रखकर मिटाया जाता है। मन के गम दूरकर लिए जाते हैं। यही तो जीवन जिन्दगी नारी मन की जिन्दा दिली कहाती है। बोल चाल को चालू रखा जाता है। रिश्ते तरोताजा बने रहते हैं। संवाद बने रहने से कम्युनिकेशन होता रहता है। अकेलापन नहीं आ पाता है। उदासी दूर मूड बिगड़ने से बचा रहता है। तनाव अपने आप बाय-बाय हो जाता है। परिवार गठन के तौर तरीके बदल चुके हैं। वर्तमान में कोर्ट मैरिज आर्य समाज व गायत्री परिवार विवाह प्रथा चल पड़ी है। सर्वजाति सामूहिक विवाह, समुदाय, जाति, सामूहिक परिचय सम्मेलन व सामूहिक विवाह सुविधाजनक होते चले जाते हैं। लिव इन रिलेशन, यंगस्टर्स लिव रिलेशन जैसे तरीकों को अपनाया जाता है। उधर वनवासियों के अपने अपने तिरीके हैं। सम्प्रदाय अपने अपने तरीके अपनाये हुए हैं। एक पत्नि विवाह प्रायः प्रचलन में है। एक या दो सन्तान उचित माना जाता है। अर्न्तजातीय विवाह प्रचलन बढ़ गया है। मन मिले का सौदा माना जाता है। शार्टकट मेरिज सिस्टम भी चालू है। पुरुष प्रधान परिवार जरूर है किन्तु अब महिला की चलती है। पूर्वी द्वीप समूह में मातृ सत्तात्मक परिवार प्रथा है। जहाँ लड़का-लड़की के घर जाकर परिवार में रहता है। नारी की उम्र कम पुरुष की अधिक अन्तर पाँच वर्ष माना जाता है। शासन द्वारा निर्धारित पुरुष २१, स्त्री १८ वर्ष को शादी योग्य मानते हैं। वर्तमान नारी अपने अस्तित्व को पुरुष से

श्रेष्ठ मानती है। वह फेशन पसन्द हो गई है। घर के काम काज से उसे अरुचि है। परिवार विघटन प्राय: नारी की मनमानी, झूठे आरोपों के कारण अतिशयोक्ति बन चुके हैं। कानूनन समानता और विशेषाधिकार ने तो नारी को बिल्कुल ही स्वतन्त्र कर दिया है। कुछ काम ऐसे हैं जो पुरुष के बिना पूरे नहीं होते हैं। बस यही नारी की मजबूरी है कि वह पुरुष के साथ रहना चाहती है। विकल्प कारगर है न सर्व प्रचलन मान्य हो पाये हैं। यही विडम्बना है। जिसके रहते नारी कुछ हद तक शर्मसार जीवन बिताने को मजबूर है। उधर पुरुष में भी मनमानी होती है। तब ही तो लिव इन रिलेशन, एन्जाय विद सेलिब्रेशन, क्लब लाइप, चाबी गेम यंगस्टर यंग इंडियन्स आदि तरीके प्रचलन में आ चुके हैं। कुछ भी हो नारी सोलह श्रृंगार करती है। करेगी। उसके स्वभाव में अंग, शौच, मंजन, वस्त्र, महावर, केश, भाँग, ढोडी, मेहंदी, उबटन, भूषण, सुगन्ध, मुखराग, दन्तराग, अधरराग, के अतिरिक्त क्रीम, पावडर, वस्त्र, जूता, सैन्डिल, मौजे, चश्मा आदि शौक श्रृंगार में शामिल हो चुके हैं। सन्तान के पालन पोषण तक से वह निश्चित हो चुकी है। नर्सरी से ही वह बच्चे को होस्टल का रास्ता दिखा मुक्त हो जाती है। होटल, कारखाना, लॉज का विश्राम प्रचलन में चल पड़ा है। बच्चों के लिए होस्टल, वृद्धों के लिए ओल्ड हाउस, व्यवस्था आसान हो चुकी है। फिर शहरी जीवन में ऐसी अनेकों असुविधायें हैं कि उनसे ग्रामीण जीवन भी नहीं बच पाया है। यही कारण है कि संयुक्त परिवार तो समाप्त हो चुके हैं। एकल परिवार भी कोमा (थियेटर) में पड़े समय पास कर रहे हैं। मानव हविश पूर्ति का जीवन जी रहा है। इससे अधिक कुछ नहीं है।

उपरोक्त विवेचन से सिद्ध है कि वर्तमान में सांस्कृतिक मान्यता जो बची है वह भी समाप्ति पर है। नई-नई प्रथायें स्थाई तो क्या बदलती परम्परा बनी हुई है। स्वतंत्र खुली सभ्यता पसन्द मानव जीवन अश्लीलता की ओर बढ़ता जा रहा है। यह सब बुद्धिज्ञान, कौशल, मन की चलना, नैतिक बन्धन मुक्त का ही प्रभाव है। यह सब वृत्ति से प्रवृत्ति और प्रवृत्ति से वृत्ति स्थान लेता

ही जा रहा है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। यही कारण है कि उसमें मानवता के मानदण्ड बदले जरूर हैं किन्तु बची हुई है। सार्थकता इसी में है कि मानव वैज्ञानिक युग में जी रहा है। नारी मन इस सभ्यता की संस्कृति में पुरुष से कही आगे बढ़ती जा रही है। किन्तु असली सोलह श्रृंगार विशेषता नारी संस्कृति में मझती जा रही है। समाज व्यवस्था में नारी का स्थान महत्वपूर्ण बन चुका है। जिसे नकारा नहीं जा सकता है।

३७. बच्चा मन सदा सच्चा

वर्तमान समय का बच्चा बुद्धि बौद्धिक प्रज्ञा विवेक जिज्ञासा में मन की उछाल जनरेशन गेप का ज्वलन्त मिसाल है। जो उसकी जन्मजात मूलवृत्ति का सूचक है। वृत्ति मनोदशा है। जीवन व्यवहार जिसमें कार्य और कामना दोनों शामिल है। आभास के साथ प्रवृत्ति की प्रकृति बदल जाती है। यही व्यक्ति के स्वभाव का सूचक प्रदर्शक बन जाता है। पर्यावरणीय प्रभावों से अनेक परिवर्तन आते हैं। वृत्ति की भूमिका प्रभावित होती है। वृत्ति में विद्या और विवेक के आवरण जैसे जैसे जुड़ते हैं प्रवृत्ति का निर्माण उसी गति और प्रकार होने लग जाता है। सूक्ष्म शरीर की चंचलता अपना रंग दिखाती है चित्रवृत्ति से मनोवृत्ति का पोषण होने से परिवर्तन आते हैं। मनोवृत्ति बनती है। जिसकी यह क्रिया - प्रक्रिया जन्म के साथ ही प्रारंभ हो जाती है। भ्रूण अवस्था में जो माता द्वारा उसे पोषण मिला था प्रभाव उसके साथ होते ही है। जो बच्चे की मनोवृत्ति के साथ आते हैं। वंशानुसंक्रमण के गुण मनोवृत्ति से शामिल रहते ही है। बच्चा नींद भर सोता हैं। उसकी चित्रवृत्ति मनोवृत्ति निर्धारित होती रहती है। यहाँ उसके ऊपर पर्यावरणीय प्रभाव और प्रारंभ हो जाते हैं। माता-पिता अपनी आकांक्षाओं के अनुसार उसका नामकरण संस्कार करते हैं। लालन-पालन के साथ समय-समय होने वाले संस्कारों से आन्तरिक प्रेरणा के श्रोत में वृद्धि होती है। परिवार में होने वाले व्यवहार का प्रभाव पड़ता रहता है। एटीकेट और मेनर्स आने लगते हैं। निपुणता की सिचुएशन बनती है। परिवारजनों से रिश्ते की अहमितता आपसी व्यवहार से बच्चे को सीखने को मिलती है। घर के माहौल से उसे संतुलन, सदाचरण की सीख सीखने मिलती है सीखता है। उसमें आदतों का निर्माण होता है। समयकालिक मानसिकता की विलक्षणता देखने को मिलती है। आगे से आगे जब वे प्रदर्शित होती है तो उन्हें समझने की आवश्यकता है। परिवार में यहाँ गलती यह होती है कि उसे डाटफटकार से नया कुछ करने से रोका जाता है। यह नया कुछ करना ही तो जनरेशन गेप है

जो बच्चे में दिखता है। उसको दाद देना चाहिए। बच्चा स्वयं में निर्णय लेता है। उसकी चंचलता, चपलता, क्रियाशीलता से आदतों का निर्माण होता है। परिवार में मिलने वाले संस्कारों का प्रभाव पड़ता है। परिवार के अंकुशों का मानसिक दबाव पड़ता है। उसमें झूठ बोलने छिपाने जैसी बुराई घर करने लगती है। अच्छे का अच्छा बुरे का बुरा प्रभाव पड़ता है। जो परिपक्वता मैं बदलता जाता है। उसकी वृत्ति प्रवृत्ति में मनोदशा के प्रभाव परिणाम के परिवर्तन परिवारजनों की तुलना में दिखते हैं। यह नवीनता ही जनरेशन गेप का प्रस्फुटीकरण है। विशेषता के कारण ही आधुनिक विज्ञान वैज्ञानिकीय कला-कलाकारिता वह अपेक्षाकृत तुरन्त ग्रहण करने लग जाता है। टीबी सीरियल, कम्प्यूटर पर गेम्स, मोबाइल के फंक्शन कम्प्यूटर के विभिन्न प्रोसेसों को वह आवश्यकता से कही ज्यादा ग्रहण प्रदर्शन करता है तो यह कहा जाता है कि बच्चा बिगड़ गया है। मनमानी करता है आदि आदि। वे यह जानते ही नहीं है कि उसकी तुलना में आप स्वयं कितने पिछड़े हुए हैं। यह ठीक है कि बच्चे की उम्र से ज्यादा उम्र के है जीवन का अनुभव है, लेकिन वह अनुभव उन्हें अपने समय के अनुसार ही होता है। आधुनिकता पर्यावरण का ही नहीं तो प्रभाव भी कैसे पड़ता। जो था वहीं वंशानुसंक्रमण में बच्चे को मिला है। पीढ़ी दर पीढ़ी वंशानुसंक्रमण पर पर्यावरण के प्रभाव से परिवर्तन आता रहा है यह भी मानना पड़ेगा कि जिसे नजरान्दाज कर दिया जाता है। सत्य तो यह है कि वंशानुसंक्रमण और पर्यावरण दोनों के सम्मिश्रण ने भी वंशानुसंक्रमण में भी सुधार वृद्धि हुई हैं। उसमें वर्तमान पर्यावरण और जुड़ गया तो बच्चे में अन्य परिजनों की तुलना में जनरेशन गेप प्रभाव अवश्य दिखाई देगा। यह समझ में आ जाना चाहिए। मस्तिष्क की बुद्धि बौद्धिकता मन की चंचलचंचलता उसकी आकाँक्षा को तेज हवा देती है। जिज्ञासायें इच्छायें उत्पन्न होती है। असाधारणता सामने आती है। परिवारजनों समझ लेना चाहिए कि उससे अपने समय की होशियारी है। निश्चित है अन्तर होगा ही। यह ठीक है कि उस समय के मानव में बोली भाषा अक्षर ज्ञान यदि नहीं था तो उसे पशु तो कह नहीं देंगे।

परिवारजन और वर्तमान बच्चे में जो बुद्धि- बौद्धिक मन की चंचलता चपलता आदि अन्तर है इस मान से वे पिछड़े ही नजर आयेंगे। वर्तमान बच्चे के मस्तिष्क के अनुसार उनका मस्तिष्क का और मन दोनों ही काम नहीं कर पायेंगे। फिर उन्हें अज्ञान, ठीठ, मनमानी करने वाला कुछ भी कहते रहे। जो वास्तविकता है वह है उसे समझे बिना कहो तो कहते रहो। कोई अन्तर नहीं पड़ता। बस यह ही समझने की आवश्यकता है। सब समझ में आ जाएगा। अभी। तो बच्चे की आदत पेरेंट को परेशानी ही लगेगी।

परिवारजन का मुख्य कर्त्तव्य है कि वे बच्चे की मानसिक मनोवृत्ति समझें। संस्कार दें। परिवार परिजनों के आपसी रिश्ते की अहमियत को बतायें कि किसको क्या पापा-मम्मी, चाचा-चाची, भैय्या, दीदी, दादा-दादी, नाना-नानी, मामा-मामी क्यों कहा जाता है। क्या विशेषता है आदि। उसे वर्तमान एडीकेट और मेनर्स सिखाये। बच्चों के साथ समय दें। उन्हें मित्रवत व्यवहार दें। नई नई बातें सिखायें। सीखने का अवसर दें। उनके निर्णय को परखें। अच्छा निर्णय लेने के प्रति प्रोत्साहन दें। इस प्रकार प्रारंभ ही से बच्चे की आदतों के प्रति परिवार परिजन ही उसकी आदतों के निर्माण में जिम्मेदार जबावदेह होते हैं। क्योंकि उन्हीं के माहौल का उस पर प्रभाव पड़ा है। इसके अलावा और कुछ नहीं है कि जो कहा जाय तो मन का सच्चा और आदतों का ग्रहीता होता है।

परिवारजन का मुख्य कर्त्तव्य है कि वे प्रारंभ ही से बच्चे की मानसिक मनोवृत्ति को समझें। संस्कारों से उन्हें पुष्ट करें। परिवार परिजनों के आपसी रिश्तों की अहमियत बताये कि किसको क्या पापा-मम्मी, चाचा-चाची, भैय्या-दीदी, दादा-दादी, नाना-नानी, मामा-मामी आदि क्यों कहाजाता है। तुम्हारे लिए उनकी क्या विशेषता है आदि। उसे वर्तमान के एडीकेट और मेनर्स सिखायें। आप स्वयं भी बच्चों के साथ समय दें। उन्हें मित्रवत व्यवहार से नई नई बातें सिखायें। उनके निर्णय लेने की क्षमता को परखें और अच्छा निर्णय लेने के

प्रति प्रोत्साहित करे। बच्चों में प्रारंभ ही से आदतों के निर्माण में जवाबदार माता-पिता परिजन ही होते हैं। क्योंकि उन्हीं के माहौल का उस पर प्रभाव पड़ता है। इससे ज्यादा और कुछ नहीं कि जिसे कहा जाय।

हम तो यह कहते और मानते हैं कि बच्चा मन मस्तिष्क से जन्मजात अपने वंश से उत्कृष्ट-वृत्तियाँ लेकर ही जन्म के साथ जन्म लेता है, जिसकी तुलना में परिजन पिछड़े होते हैं। तो व्यवहार में अन्तर आएगा ही सही। बच्चे के बुद्धि बौद्धिक मस्तिष्क चंचलता चपलता के मन में समान परिजन में उससे जो जितनी उम्र का उससे बड़ा होगा उसमें पिछड़ापन होगा ही। बच्चा बालक मन के सच्चे होते हैं। परिवनजनों में पाया जाने वाले अन्तर की तुलना में वह बहुत कुछ एडवान्स होते हैं। मानने में कोई हिचक झिझक नहीं होना चाहिए। वह जयन जय है, जीता हुआ है। वह जितना है वह है। उसे परास्त नहीं कर सकते, ऋग ऋचा बुद्धि प्रबोधक है। जिसमें सोच समझ बौद्धिक प्रतिभा है। केतन केत कितना शूरवीरता प्रतीक है। वह केवडा के समान प्रभावक होता है। उसमें केतु, ज्ञान, दीप्ति, चमक छिपी है। जो ध्वजा अर्थात् विजय का परिणाम से प्रकट है। प्रवग पक्षी के समान उड़ान दृष्टि न्यूनता में अधिकता की क्षमता का प्रतीक है। उसकी गति पक्षी और पंछी जैसी सहनीय है। वह सभी हाल में समायोजित हो जाता है। इसमें इन नामों को केवल समझने समझाने की दृष्टि से चुना है, जिनमें पाई जाने वाली भिन्नता अपने आप ही स्पष्ट होती है। यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि क्षुधा अधिक होशियारी की होती है। वह सम्बन्धों के अन्तर के द्वन्द में नहीं पड़ता है। स्वयं के निर्णय पर उसे विश्वास रहता है। उसकी जागरूकता स्वयं की बातचीत से प्रकट होती है। वर्तमान उसका साक्षी है। वह इन्द्रधनुषी विभिन्न रंग रंगों के गुणों के समान गुणी होता है। किन्तु मौन स्वभाव के कारण व्यक्त नहीं हो पाते हैं। उसे किसी भी प्रकार से नाम नामांकित नामकरण कर दिया गया। उसकी प्रतिभा उभरकर सामने आए बिना नहीं चूकती है। बालपन उसे शिक्षित होने की गति देता है।

माँ की ममता दुलार से वह पुष्ट होता है। रात्रि की निद्रा उसके प्राण को मजबूती देती है। शक्ति में वृद्धि होती है। गुरु के नये नये गुर (सिद्धान्त) उसमें जगते हैं। तनाव की कोई गुंजाइश नहीं रहती है। दया सेवा श्रद्धा उसका व्रत होता है। भय क्रोध से मुक्त दूरदर्शिता उसमें वृद्धि करती है। क्रमणता आगे बढ़ाने के भाव उसमें जागृत होते हैं। संकल्पों की स्मृति में विकृति को विस्मृत करता है। रोग शोक से मुक्त अभाव उसे सताते नहीं है। समय पाबंदी उसका शरीर साधे रखता है। शब्द शक्ति इतनी होती है कि वह कर्मफल का अर्थ ही मन भावन आधार पर मोड़ लेता है। अहिंसा की छायाँ उस पर बरसा करती है। वह उत्तिष्ट की गति में दिखता है। हास परिहास के जन्म जीवन का आनन्द मिलता है। रोना धोना उसकी श्वास गति से मिट जाता है। उसके कोष प्रबल रहने से चक्र गति पकड़ते है। एक से बहुत होने के जज्बात बल पकड़ते हैं। शरीर क्षमता के सामने विष भी असर हीन होते नजर आते हैं। अभ्यास स्वर ही उसके जीवन का विकास है। रेचक कुम्भक, न्यास, प्राणायाम उसके प्राण को मजबूत बना देते हैं। शूद्रता उसकी समाप्त हो जाती है। आहार बिहार में सात्विकता उसे ईश्वर की महीन संतान घोषित कर देता है। लीक से हट स्नेही विवाह में लज्जा का पालन कर परिवार में निर्वाह करता है। घर परिवार की दृष्टि में उसका दाम्पत्य जीवन संतति से संतति में परिवर्तन लाता रहता है। यही मानवीय जीवन बच्चे का अच्छा सच्चा उस दिव्य सत्य की शाश्वतता की सनातन वृत्ति की प्रवृत्ति है। जो बचपन से ही बच्चे के सच्चे मन बुद्धि की बौद्धिकता से जानी जा सकती है। इस अवस्था के जीवन के सज्ञान दूसरा जीवन अवस्था होती ही नहीं है। बच्चा सच्चा अच्छा होता है बच्चा मन सदा सच्चा मानवीय जीवन का चरितार्थ होता है। वह वंशानुसंक्रमणता पीढ़ियों के गुण धारक होता है। तब ही तो वह एडवान्स नजर आता है। आकाँक्षा और जिज्ञासा उसकी मनोवृत्ति होती है। मानवीय सुधारवादिता का वह प्रतिनिधित्व करता है।

३८. वृद्ध वृद्धता उदारमन

मानव का अपने समय काल स्थिति परिस्थिति स्थान विशेष गृह नक्षत्र के चौघड़िया में जन्म होता है। राशि नाम संबंधित से उसकी पहचान बनती है। जीवन अटक-भटक के धपेड़ों से निकल शरीर मान वृद्धावस्था में पहुँचता है। आनन्द खुशी दु:ख तकलीफ के बीच अंतिम सांस (श्वास) लेकर सो जाता है। उसे तुरत-फुरत पंच तत्वों का भागीदार बनाकर विलीन की तैयारी की जाती है। परिवार परिचितों के दु:ख दुखी माहौल में सद्गति के लिए जन समूह ले चल पड़ता है। मुक्तिधाम तक पहुँचते एक विश्राम उसे दिया जाता है। मुक्तिधाम में घास पूस कंडों से उसकी शैया तैयार की जाती है। सुला दिया जाता है। जिस अग्नि ऊर्जा से उसका जन्म हुआ पुनः उसी के हवाले कर दिया जाता है। माहौल ऐसा जगता है कि संसार में इससे ज्यादा कुछ नहीं है। सब छोड़ छुटकारे के साथ यहाँ आए बिना गति की मुक्त कहाँ रखी है, जो आगे पुनः गति को प्रवाहित करती हो। जब यह देख लिया जाता है कि पंच तत्वों में काया विलीन का अंतिम क्षण आ गया है तो जिस मस्तिष्क की बुद्धि बौद्धिकता से जीवन बीता उसे घृत प्रदान कर कपाल क्रिया का श्रेय पीढ़ी के वरिष्ठ पुत्र को दिया जाता है। सभी जन चंद क्रिया प्रक्रिया के साथ जल स्नान से मानसिकता को शान्ति देते है। भोग भाव के बाद भोजन ग्रहण करते हैं। जीवन का क्रम चलता है तीसरे के दिन पंच तत्वी भस्म को पवित्र निर्मल जल में प्रवाह कर दिया जाता है। वे उत्तराधिकारी को अधिकार का भागीदार बनाते है। भोग भोजन मिलन पश्चात अवगत हो अपने-अपने स्थान चले जाते हैं। जागा की पोथी में स्मृति इतिहास में नाम जोड़ दिया जाता है। हर वर्ष सोलह श्राद्ध में ऋण मुक्ति आशय से मौजूद संतान श्रद्धा से श्राद्ध तर्पण करता रहता है। क्रम चलता चल जुड़ता जाता है। जन्म जीवन लीला का अंतिम पड़ाव वृद्ध वृद्धता का स्मृति पटल पर ब्रह्मलीन दिवस, मुक्ति दिवस, पुण्य तिथि दिवस के रूप में याद किया जाता रहता है। उनके कर्म कृत्य कृतृत्व से अनुकरण प्रेरणा उभारी जाती है। इस दिन

परिजन उनके आशीर्वाद की कामना करता है। अन्य समाज सम्प्रदायों में अंतिम किया जमीन में दफनाने से की जाती है। ओल्ड हाउस जहाँ वे भर्ती होकर रहते वह करता है। जीवनकाल में पुरुष स्त्री में से जिस किसी एक की मृत्यु हो जाती है तो यंगस्टर परिपाटी से पुनः उनका जोड़ा बन जाता है। लिव इन रिलेशन यंगस्टर जीवन के अंतिम दिन व्यतीत करते हैं। प्रायः वृद्धावस्था में बेटे-बहु जैसे परिवार व्यवस्था में वे नहीं रह पाते हैं। एडवान्स सभ्यता के अनुसार संयुक्त परिवार परिपाटी उनमें नहीं है। एकल परिवार में भी पति-पत्नी में बदलाव आता रहता है। संतान होस्टल में रहा करती है। पुरुष - स्त्री दोनों ही सम्पूर्ण मनुष्य हैं। किन्तु आधुनिकता की दौड़ में अब मानव समाज समग्र मानव समाज नहीं रह गया है। वरन् वह पुरुष-स्त्री दृष्टि से बट गया है। वर्तमान एकाकार से हट गया है। पुरुष स्त्री दो नजरियाओं में बंट गया है। भारत अभी इस परम्परा से मुक्त है। अन्य देशों में यही सब होता है। उनका मानना है कि तन-मन की केमिस्ट्री इमोशंस बनाती है। अतः वे स्वतंत्र आकाश के स्वतंत्र पक्षी अर्थात् परिवार बन्धन मुक्त जीवन बिताते हैं। टीन एज में लिव इन रिलेशन और वृद्धावस्था में यंगस्टर लिव इन रिलेशन का जीवन वे जीते हैं। भारत में अभी इन प्रथाओं का प्रचलन सर्वमान्य नहीं हो पाया है। मन मानसिकता की दृष्टि से भारतीय वृद्ध वृद्धता उदारमन होता है।

वंशानुसंक्रमण खून संचार कुटुम्ब कबीला परिवार ज्ञान, रीति, रिवाज परम्परा के पालन में सोलह श्राद्धव चाल परिपाटी से सम्मान दिया जाता रहता है। जब कभी जागा पोथी ही फिर परिवारजनों को उनकी याद में प्रेरणा स्त्रोत पनपाते है। जागा सम्मानित होते हैं। वह परिवार की कुशल कामना आशीर्वाद देते हैं। परिवार परिजनों में यदि कोई सजग सचेत हुआ तो अपने वंश वंशजी स्मृति में कुछ परिचय लिख छोड़ता है। जो परिवार में जब कभी देखते समझने के लिए ठीक रहता है। क्योंकि जागा हर दिन तो उपलब्ध भी नहीं रहते हैं।

वृद्धजन अपने खूनी परिवार में कुछ रीति रिवाज, प्रचलन, परम्परा, प्रथा छोड़ जाते हैं, जिनका पालन करते बाद वाले परिजन जीवन व्यतीत करते पालन करते है। वर्तमान भारत में फादर्स-डे (पिता दिवस) मदर्स डे (माता दिवस) भी मनाया जाने लग गया है। अपने पूर्वजों के भूतकालिक कार्यक्रम वैभव की वर्तमान में अपने उत्सव वृद्धि में लेते भी है। नहीं भी लेते हैं। लेकिन जनरेशन गेप का प्रभाव हर पीढ़ी में ऐसा ऐसे प्रकार से आता है कि परिवार में व्यवहार के मानदण्ड वर्तमान में श्रेष्ठता को उभारे रहते हैं। परिवार में नाम विख्यात की छाप अपने प्रकार से बनी रहती है, जिसे निभाया भी जाता है।

वृद्धावस्था में यही कहा सुना जाता है कि देखो हमने अपने तरीके से जिया है। वह समय वैसा ही था, जो निकल गया है। हम तुमको अपने समय के अनुसार जीवन जीने से मना नहीं करते हैं। जो अच्छा लगे वह करो, जिसको जहाँ रहना बसना हो वहाँ रहो। जैसा मिले वैसा खाओ पीओ आनन्द करो। यह सब तुम्हारी अपनी शक्ति क्षमता प्रतिभा की बलिहारी है। तुमसे केवल अपेक्षा इतनी है कि आपसी सामन्जस, सहयोग सहकार बनाये रखो। ईर्ष्या, द्वेष, मनमुटाव रखने में कोई लाभ नहीं है। मेल-जोल से शान्ति, सौहार्द्र बनाकर रहो। आपसी लगाव से एक दूसरे को हिम्मत साहस बना रहता है। आसफलता में निराशा को स्थान नहीं मिलता है। मन मुटाव अलग-थलग रहने से तनाव बना रहता है। विनाश का मार्ग है, जिसकी सम्भव सम्भावना को सामने आने से पहिले ही समाप्त कर देने में भलाई है। आपसी सामन्जस बनाये रखना।

वृद्धों की इस उपरोक्त सीख को जानते सब हैं, लेकिन माने तो लाभ होता है। नहीं तो उनसे मिलने वाले लाभ से वंचित ही रहना पड़ता है। ऐसा ही होता है कि जिस घर परिवार में वृद्ध होते हैं उन्हें उनके मान का जीवन भी नहीं मिलता है। घर की छोटी-छोटी जबावदारियों के पूरा नहीं होने का उन्हें दोषी बनाया जाता है। दैनिक जीवन के छोटे-बड़े काम उनसे करवाते रहने पर भी संतुष्ट नहीं रहते हैं। वृद्धावस्था में तो इतने काम बढ़ जाते हैं जिनके विषय में

कभी सोचा भी नहीं था। घर की चौकीदारी छोटे से बड़े तक की इच्छा के काम करना। आव भगत में समय देना। बच्चों की साल सम्हाल से सहयोगी बनना। सम्पत्ति कर, जलकर, विद्युत चार्ज, टेलीफोन बिल, किस्त जमा आदि आदि निर्धारित दिनांक के सम्बन्धित विभागों के काउंटर पर लम्बी लाइन का सामना कर घर लौटना। इतना समय लगा संतुष्टि दिलाना कठिन हो जाता है। आवश्यकता का सामान बाजार से लाना। मरम्मत, सुधार, पुताई आदि के लिए श्रम श्रमिक को तलाश कर बुलाना। उनके काम की देखरेख आदि। रात्रि में चोर चोरी से सावधानी रखना आदि आदि सभी वृद्धजन के काम में शामिल हो जाते हैं। इससे उनकी व्यवस्तता इतनी हो जाती है कि उनकी वे ही जानते हैं। कहने को सब कामों से मुक्त हो आराम के जीवन का भागीदार माना जाता है।

जहाँ कहीं जिस परिवार में वृद्धजनों का आदर सम्मान का जीवन मिलता है वे उस परिवार के जीवित देवी-देवता के समान ही अनुदान वरदान आशीर्वादों से लाभांवित बनाये रखते हैं कि कहने में आता है। यह सब बुजुर्गों का आशीर्वाद देन का फल है कि हम सुख से रह रहे हैं। इससे ज्यादा बुजुर्गों से और क्या चाहिए। हाँ, इस लाभ को लेने वाला बुजुर्गों का जीवन तो अनुभवों, प्रेरक प्रेरणाओं से सदा लबालब भरा रहता है। उनसे तो जो जितना ले सकें तो लें नहीं तो वे जबरदस्ती तो करते भी नहीं है। घरपरिवार में रीति-रिवाज, परम्परा के शुभ कार्यों में सम्मान बतौर ही सर्वप्रथम याद किया जाता है। उन्हें सम्मानित स्थान दिया जाता है। शासन व्यवस्था में नाम जदगी से सदस्य घोषित किया जाता है। प्रेरणा ली जाती है। उन्हें सुविधा में ऐसे अवसर पर छूट दी जाती है। यही क्या कम है। उन्हें तो इतने से भी बहुत कुछ संतोष मिल जाता है। फिर पूछ परख तो मनोभाव बहुत कुछ अच्छे भावों से आशीष उनके अन्तः से निकलते हैं।

वृद्धावस्था में मानव के ख्वाबों का क्या कहना। वे क्या चाहते हैं। क्या नहीं चाहते हैं उनके मन की जाने भी कौन। फिर भी इतना तो मानने में आता

ही है कि वे सुख चैन, शांति बिना उलाहना, डांट फटकार रहित माहौल में अपने अंतिम समय की प्रतिक्षा तो करते ही है। अपने आशीर्वाद, वरदान से सबकी कुशल कुशलता चाहते हैं। यह पूंजी केवल बुजुर्गों के पास ही होती है। जिससे परिवार परिजनों के जीवन को संतोष शान्ति के अतिरिक्त अदृश्य लाभ धंधे व्यवसाय में लाभ मान-सम्मान, पूछ-परख, सहयोग आदि दूसरों से मिलता है, जिसे धनपति खरीद नहीं पाता है। लुटेरे लूटकर ला नहीं सकता है। दुष्ट दुष्टता में नष्ट नहीं कर सकता है। इच्छुक इच्छा से ज्यादा पाता रहता है। इससे ज्यादा किसी भी करेंसी धातु से न खरीदा जा सकता है न किसी कारखाने में निर्माण कर प्राप्त किया जा सकता है।

धन्य है वह जीवन जो विभिन्न परिस्थितियों का सामना करते जीवन के अनुभवों से भरा हुआ होता है। जो बिना शुल्क अथवा त्याग के वितरण करते करते भी कमी नहीं आती है। इस वृद्ध वृद्धों के सानिध्य में जिन परिवार परिजनों को अवसर मिलता है वे भी धन्य हो जाते हैं। आगे से आगे यह श्रृंखला चलती चली जाती है। मानव जीवन इसी में धन्य सिद्ध होता है। यह सब हम हमारे वृद्ध वृद्धजनों के उदार मन की ही उदारता का फल आशीर्वाद है कि परिवार में खुशहाली रहती है। सम्मानता लहराती है। शान्ति सन्तोष की बयार बहती है। तृप्ती का आनन्द भोगने को मिलता है।

३९. मन क्या लाया क्या दे चला

चिन्तन से प्रश्न मनन से उत्तर या समाधान मिलता है। मन के विषय में ऐसे कई प्रश्नोत्तर होते ही रहते हैं। मानव रोता आया रोता छोड़ गया। हाथ पसारे आया हाथ पसारे चला गया। सिर के बल आया पैर के बल चला गया। पैर के बल आया सिर के बल चला गया। अरमान लाया लुटाकर चला गया। वैभव लाया अहंकार दे गया। ऐसे अनेकानेक मुहावरे, कहावत, उक्ति, वाक्य उलटबासी आदि कहे जाते हैं। सब का एक ही अर्थ है। आकर कर्त्तव्य करना अधिकार भोगना और सबका सब छोड़ चला जाना और याद छोड़कर चला जाना ही रहा है। रोता इसलिए आता है कि आना सार्थक सिद्ध कर पाया या नहीं। रोता नहीं तो गर्भकाल से ही इतिश्री समझी जाती। रोता जाता तो उलहना मिलता। दीनदीनता दिखा भाग लिये। हंसता आता तो प्रसव पीड़ित माँ क्या कहती। हंसता जाता तो क्या यह कहती कि रुला कर आया फिर क्यों हंसता है। मन तो अरमान लाया सारा तो सब छोड़ जल्दी घर से निकाल दिया आदि ऐसी सीधी उल्टी बाते हैं कि समाधान से संतुष्ट करा ही नहीं पाते हैं। अच्छा तो यही है कि आये है भोग्य सो जाते है कर्म से। आना लाना यह हमारे भाग्य में था कि मनुष्य बने मनुष्य होकर आये। हमने मनुष्य जैसा कुछ किया था नहीं। उन्हीं कर्मों के भोगने चल दिये। हमें भी पता नहीं कि किस दिशा को चले। बाद वाले कहते रहे कि अच्छा हुआ चला गया। वह तो निरा ढोर था। मनुष्य के गुण विचार उसमें थे तो कर्म सही करता। एक तबका कहता कि उस जैसा तो अब कोई पैदा होने ही वाला नहीं है कि जो सबको साथ लेकर चलता है। सबके काम आये सबका भला करे और बुरा भी नहीं माने। वह तो देवता था। आदि इसी प्रकार कहते रहते हैं। इस सबका एक ही मतलब है कि आये तो सार्थक बनो। जाओ। निरर्थक होकर जाना बेकार। जिससे तो आना ही नहीं था। मन ने कहा भाई यह सब मेरे बस का नहीं है। मैं तो शरीर के साथ चलता हुँ। इस शरीर की इन्द्रियाँ जने वे क्या सही-गलत, गलत-सही कैसा करती हैं। मैं तो हाँ

ना में ही रहता था। और मेरा कोई काम नहीं था। उधर मस्तिष्क पल्ला झाड़ता है कि मेरा काम ज्ञान देना है उपयोग अनुपयोग से मुझे क्या वास्ता। आत्मा कहती है कि मेरा काम प्राण का आभास कराना है। अच्छे बुरे कृतत्व से मुझे क्या करना शरीर का नम्बर आया तो उसने साफ कह दिया आपको लेकर मुझे भेजा है। मैं आया। मुझे क्या मतलब आपमें से किसने क्या किया चलने को बोला तो फिर लेकर चलता। इसके पहिले ही आप सब मुझे छोड़ भाग लिये मेरी कोई गलती नहीं थी तभी तो परिजन सम्मान के साथ मुझे ले गये। सबने दुख मनाया और रीति रिवाज की परम्परा में मुझे याद करने की स्मृति में शामिल कर लिया। मन, आत्मा, मस्तिष्क आदि कौन क्या थे। हर बार मैं (शरीर) ही तो उन्हें दिखता था आप सबका तो मैंने बोझा ढोया है। बुद्धि कौशल, मन मस्तिष्क को मिली सराहना। खैर मुझे तो इसमें कोई गम नहीं है। यह तो मन ही बतायेगा कि प्राण के वशीभूत आत्मा के अधीन मस्तिष्क चेतना बुद्धि ने इन्द्रियों को करने के लिए अमादा किया। मैं (मन) तो उन्हें आज्ञा देता रहा। परिणाम तो मस्तिष्क ही बतायेगा। इस तरह से सभी अपने-अपने हतकंडे, हिम्मत से मुझे उलझाकर जवाबदार बना दिया। अब जब जवाबदारी आई तो मैं पूरी भी कर देता हूँ। वह आप मानो या नहीं। मैं तो सही ही कहता हूँ।

मन ठहरा चंचल चपल। जब जैसा अवसर आया वह कर बैठा।यही उसकी होशियारी रही है। मन अरमान लाया पूरे किये। जिज्ञासा इच्छा की पूर्ति कर दी। कर्त्तव्य आये निभा दिये। अधिकार आये दिला दिये। बचपन में बचपन, जवानी में जवानी, बुढ़ापे में बूढ़ा बनकर दिखा दिया और क्या करता। जैसा जब कितना जो मन से चाहा वह मन ने किया। मन का क्या लेना-देना रहा। कुछ नहीं। वर्तमान जाने। वर्तमान का काम जाने कि जो कुछ हुआ। वह सब वर्तमान में ही हुआ। मन ने जो कुछ किया वर्तमान में किया। हिसाब वर्तमान ही के पास है। वही बतायेगा। मन के पास तो वर्तमान की तुलना में कुछ नहीं

है। वह तो हुंकार करने वाला है। चलो यह भी ठीक हुआ। मन ने इतना ही बताया कि उसे कैसा लगा। और जो हुआ सब टीक हुआ। वह तो होना ही था। लाना ले जाना छोड़ना यह सब होनी करनी के अलावा होता भी क्या है? जो बताया जो कि क्या लाया क्या दे चला गया। सब ठीक ही तो हुआ। मन अरमान लाया। अरमानों ने कर्म किये। किये कर्म ने फल दिये। सफलता ने अहंकार, गर्व किया। असफलता ने दु:ख चिंता की। द्वन्द हुआ। क्रोध आया। क्रोध ने हिंसा की। भ्रम उत्पन्न हुआ। समझोता किया। वचन दिये। संकल्प किये। प्रण के साथ संकल्प पूरे किये। शान्ति, संतोष मिला। रात्रि विश्राम, दिन को कर्म। चन्द्रमा शीतलता सूर्य की ऊष्मा में समय बीता। काम पूरा हुआ। समय पूरा हुआ। मन ने मस्तिष्क को रिपोर्ट। रिपोर्ट आगे बढ़ाई। प्राण ने डेरा उठाया जहाँ का जहाँ शरीर के हवाले कर चल दिया। किसके हिस्से में क्या आया बंटवारा खींचतान होती रही। शरीर शान्त हो गया।

मन क्या लाया क्या दे गया। विचार चला। कहा जाता है आदमी के पास होता क्या है। मन। मन है तो सब कुछ नहीं तो कुछ नहीं। मन ही तो देखा जाता है। मन दरियाव चाहिए तो सब ठीक नहीं सब बेकार। ठीक है यह सब मन के यश अपयश कर्म कुकर्म पर निर्भर है। उठना-बैठना उत्पात-पतन, आमेद-प्रमोद, अच्छा बुरा, डाट-फटकार, थोड़ा-बहुत, दुख-सुख, देना - लेना, काँट-छाँट, खाना-पीना, खरा- खोटा, गुण-अवगुण, गर्म-ठंडा, चलना-फिरना, जीत-हार, जीवन-मरण, जय-पराजय, रोटी-पानी, नाचना - कूदना, नया - पुराना, पाप-पुण्य, पढ़ाई-लिखाई, बाल-बच्चे, भाई - बन्धु, भलाई- बुराई, मान-मर्यादा, जमीन-जायदाद, दवा - दारू, लालपीले, सोच-विचार, सोते-जागते, दौड़-धूप, पूजा-पाठ, जमाखर्च, जांच-पड़ताल, ठीक-ठाक यह सबका सब मन और मन मार्फत ही सम्भव होता है। मन को इनसे तुरन्त पता चल जाता है कि कैसा है। यही तो मन लाया है। जिसे वह देता है। अब लेने वाले पर निर्भर हैं कि उस मन से वह अपनी पसन्द का लेता है या मन की पसन्द का

लेता है। यह महत्वपूर्ण है। इसी से मन के पास से कौन क्या लेना चाहता है। सब पता लगता है। मन यह सब कुछ लेकर आया है। लेने वाला जो चाहे वह ले ले। मन अपनी तरफ से किसको क्या दे। पसन्द भी तो चाहिए।

पूरा जीवन बीतने पर तथा बीच-बीच में यही तो देखा जाता है, मन कैसा है। ऐसा मन के पास है क्या जो चाहा जाता है। उपरोक्त प्रकार से देखने में आया है कि मन के पास वह सब कुछ है जो न शरीर, न प्राण, न मस्तिष्क के पास है। वह दशा - दिशा जो मन से निर्धारित होती है। दशा और दिशा का संकेत। मन की स्थिति स्पष्ट करते हैं कि मन कैसा है? अच्छा अथवा बुरा। बस अच्छा और बुरा इन दोनों में से चुनना पड़ता है। दोनों आगे पीछे पीछे भागे होते रहते हैं, लेकिन एक होकर नहीं मिलते हैं। मन की यह बहुत बड़ी विशेषता है कि एक-एक देता है। दोनों साथ नहीं देता हूँ, हाँ कुछ अच्छा कुछ बुरा अवश्य होता है, लेकिन दोनों की अपनी पहचान होती है। एक सी पहचान नहीं होती है। अन्तर होता है। यह अन्तर मन निर्धारित करता है। इसी निर्धारण पर ही ग्रहण होता है। जो मन मानसिक मनोवृत्ति पर निर्भर होता है। अब हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते कि मन क्या लाया क्या दे गया। उपरोक्त से मन ने दे दिया लेकिन लेने वाले ने इनमें से जो लिया वह यह है कि अपना पराया, ज्ञान - अज्ञान, जन्म-मरण, दाता - सूम, उपकार - अपकार, उत्थान - पतन, कडुवा - मीठा, नेक-बद, देना। माँगना आदि आदि। मन किस पर कैसा कितना चला इसी दशा में लेना-देना होता है। मन तो फ्री मूड में काम करता है, किन्तु उसका दूसरा पक्ष लीडरशिप करता है और निर्धारित करता है कि किसको क्या दिया जो इसी प्रकार लेने वाले का मन निर्धारण करता है। इसी से यह निर्धारित है कि मन मानसिकता लाया और मनोवृत्ति के अनुसार दिया गया। जो मन ने सहर्ष दिया। सबका सब दे दिया। वापिस ले जाने के लिए उसके पास मन दिलेर था। मन कमजोर था यही बचा। इसे किसी भी रूप में रूपान्तरण करके समझा सकता है।

मन दिलेर देता सब कुछ लेने वाला चाहिए।
लेकर क्या करे उपयोग ज्ञान कला चाहिए ॥

४०. परिवर्तन मन नर्तन

परिवर्तन बदलाव को कहते हैं। पहिले की वह अच्छाई जो अब स्वीकार की जाती, अब जो होने वाला है उसके लिए जो अच्छाई प्रारंभ कर लाई जाती है, प्रत्यावर्तन कहा जाता है। नये सिरे से जो तौर तरीके अच्छाई प्रारंभ किये जाते वे सब प्रतिवर्तन है। भूतकालिक अच्छाई भविष्य कालिक सुधार के अतिरिक्त नये प्रकार से सुधार जो वर्तमान लागू होते हैं। उनसे जो बदलाव आता है उसे परिवर्तन कहते हैं। मन वान्छित इस बदलाव को सहमति दिखाई जाती है। स्वीकार किया जाता। लागू किया जाता है। यही तो मन की प्रसन्नता है। परिवर्तन की यह क्रिया प्रक्रिया प्रकृति प्राकृतिक प्रभाव प्रकोप होता है। अभियान आन्दोलन से उत्पन्न प्रभाव हो सकते हैं। वर्तमान में प्रगतिशीलता को ग्रहण करने के तौर तरीके उद्देश्य लक्ष्य नियम होते हैं। इन सभी से जो बदलाव होता है। लगता है। आभास होता है। वह सभी परिवर्तन जिसे समय कालिक उचित माना जाता है। संतोष मिलता है। मन उसे स्वीकार करता है। यही तो परिवर्तन होता है। परिवर्तन कहलाता है। यह परिवर्तन सर्वांगंपूर्ण होता है, जिसमें सभ्यता संस्कृति, रीति-नीति, अर्थ-आर्थिक, अभिव्यक्तिव्यवहार, धर्म-धार्मिक, समाज-सामाजिकीय, नियंत्रण, प्रबन्धन आदि आदि सभी आशय से वह बदलाव समय कालिक होता है। इसे उचित माना जाता है, जिसे सभी प्रकार से सभी पसन्द करते हैं जो सबके लिए होता है। ऐसा बदलाव सर्वहितैषी सर्वमान्य होता है। इस सामान्य इच्छा को लागू करने के कुछ तरीके भी होते हैं। जो अपनाये जाते है। उनको स्तरण सुधार कहा जाता है, जिन्हें इस प्रकार विचारा जा सकता है–----

१. परिवार से लेकर शासन तक संगठन जिसमें वृहत्तर परिवार,अन्तरजाति विवाह से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय संगठन आते हैं, पड़ोस राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का परिवर्तन होता है।

२. नियन्त्रण, बहिष्कार बहिष्कृति पर पुलिस न्यायालय का नियंत्रण जो सुधारत्मक होता है।

३. सम्बन्ध - वैयक्तिक और सामूहिक जिसमें जाति समूह, संस्थापक सम्बन्ध दृढ़ता।

४. अन्तरक्रिया- सहयोग सहकार एकीकृत से लेकर सामूहिक तक के बदलाव

५. दृष्टिकोण - प्रगतिशीलता की सर्वमान्यता।

६. गतिशीलता - पारिवारिक जातीय से विस्तार ग्रामीण नगरीय स्वतंत्रता।

७. स्थायित्व– उद्देश्य, लक्ष्य, नियम, व्यवहार का औचित्य, पारस्परिक स्थायित्व

८. आर्थिक- व्यवसाय धंधे आदि से आय वृद्धि मूल्य नियंत्रण, माँगपूर्ति आर्थिक सुविधा जन सामान्य दृष्टि से प्रतिव्यक्ति आय वृद्धि। जीवनोपयोगी से विलासी आवश्यकता की पूर्ति। बचत। स्थानीय, प्रान्तीय, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय, अर्थ- आर्थिक व्यापार वाणिज्य की व्यवस्था से सम्पन्नता वृद्धि

९. सांस्कृतिक जीवन - ज्ञान, विज्ञान, कला, धर्म, दार्शनिक उन्नति के अवसर

१०. संघर्ष पर रोक विघटन में संरचनात्मक परिवर्तन लाना आदि उपरोक्त के अलावा ऐसे अन्य कारक भी हो सकते हैं, जिनमें सुधार, अच्छाई आती है तो अनुकूल परिवर्तन की दिशा की दशा में सुधार होते हैं। यही आवश्यक है। औचित्य है। गृहणीय है।

उपरोक्त परिवर्तन परिस्थिति का निर्माण व्यक्ति से व्यक्ति, संस्था से संस्था, शासन से शासन, राष्ट्र से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर परिवर्तन की क्रिया जो सर्वहितैषी, सर्वसुलभ हो तो ही अनुकूल परिवर्तन दशा उत्पन्न होती है।

प्रकृति प्राकृतिक आपत्ति विपत्ति विनाशकारी जैसे सूखा, बाढ़, भूकम्प, ज्वालामुखी, महामारी आदि। संघर्ष लड़ाई, विनाशकारी प्रहार आदि महासंग्राम जैसी दशा में परिवर्तनकारी दशा उत्पन्न हो ही जाती है।

परिवर्तन व्यक्ति, परिवार, जाति, समाज स्तर पर होता है। तो ही वह सर्वमान्यता की गति पकड़ पाता है। अभियान, आन्दोलन भी तभी सफल हो पाते हैं। अर्थात व्यक्ति का अपने आप से परिवर्तन की प्रथम आवश्यकता की पूर्ति होती है। होना चाहिए। तो ही वह परिवार से आगे बढ़कर समाज स्तर को पकड़ पाता है। अन्यथा सामान्य स्तर का परिवर्तन होना भी कठिन हो जाता है।

उपरोक्त स्थिति परिस्थिति परिवर्तन भी ऐसी चाल होती है कि जिससे व्यक्ति से लेकर समाज स्तर पर सभी पर अच्छा प्रभाव प्रभावक हो तो ही उसे मन स्वीकार कर प्रशंसात्मक होता है अन्यथा निन्दनीय है। निंदनीय से मन घृणा, असहमति दर्शाता है। अनुकूल सदा प्रशंसात्मक ही होते हैं या यों कहो कि अनुकूल प्रशंसात्मक होते हैं। ऐसे परिवर्तनों को मन तुरन्त स्वीकार कर लेता है। जो आवश्यक भी है।

परिवर्तन की स्थिति परिस्थिति, गति-प्रगति की वास्तविकता को देखा जाय तो इसमें सुधार परिवर्तन सर्वप्रथम व्यक्ति स्वयं से प्रारंभ होकर ऊर्धगामी दिशा में राष्ट्र और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक पहुँचता है। इस अनुकूलता में मन मानसिकता मानवीय सुधारात्मक होकर स्थायित्व ले लेती है। जो विघटन, संघर्ष, विरोध की विषम स्थिति को प्रवेश होने से इंकार कर देती है। इसके स्थान पर सहयोग सहकार जन्म भाईचारात्मक परिवर्तन आता है। वहीं

स्थायित्व भी होता है। उसे मन मानसिकता रुपेण स्वीकार किया जाता है। जो उपयोगी होता है। ऐसे ही परिवर्तन प्रगतिशीलता का द्योतक होता है, जिससे मनोभाव सुधार होता है। बुद्धि बौद्धिक, मस्तिष्कीय स्तर बुद्धि होती है। आत्मीय संतोष प्राण में दीर्घ कालिक स्थायित्व इच्छा जिज्ञासा में तीव्रता, शारीरिक कसाव कसावट स्वस्थता आदि शान्ति संतोष निश्चिन्तता से मन मानसिकता मानव की उत्प्रेरित होती है। इस उत्प्रेरणा के लिए ही परिवर्तन की आवश्यकता होती है अन्यथा कोई आवश्यकता होती ही नहीं है। अनुकूलता से कुशलता है। कुशलता में प्रसन्नता है। प्रसन्नता में आनन्द है। आनन्द है तो मन मानसिक सम्पन्नता है। मानसिकता में आस्तिकता हमेशा सहायक होती है। आस्तिकता और सम्पन्नता का हामी होता है।

मानव मन व्यक्तिगत से समाज स्तर तक अस्तित्व को निश्चिंत्य चाहता है। यह निश्चिंतता सामाजिक स्तरण सुधार से ही उत्पन्न होती है। स्तरण सुधार में अभाव समाप्त होते चले जाते हैं। जब अभाव ज्ञान- कला, साधन- सुविधा, योग्यता प्रतिभा, शक्ति, सामर्थ्य आदि प्रकार का नहीं होने पर इच्छा जिज्ञासा, आवश्यकता पूरा करने में कभी कमी नहीं आती है। मन शान्ति संतोष के लिए यह अभावपूर्ति होना ही चाहिए। सम्पन्नता जो मन मानसिक शान्ति सामर्थ्य उत्पन्न होती है। उसी से तो मन चाहत तृप्ति मिलती है। परिवर्तन की प्रगतिशीलता में यही चाहिए। परिवर्तन की यह चाल मन को स्वीकार्य है। इससे शरीरगत, मन पर निर्भर, मस्तिष्क समास्थित, आत्मा से सम्बन्धित प्राणरक्षक दीर्घ शान्ति संतोष का कारण बनता है। मन मानसिकता की यह चाहत मानव जीवन में अत्यावश्यक है। कितनी अच्छी परिस्थिति परिवर्तन की अनुकूलता से मिली है, जिसकी परिस्थिकता से इंकार नहीं किया जा सकता है।

मानव जीवन जीवनी इसी प्रकार की परिवर्तनकारी अनुकूलता पर आर्शित है कि परिवर्तन धारा समयकालिक के साथ स्थानानुकूल भी हो, जिससे व्यक्ति कही से कही तक वंचित नहीं हो पाता है। यह जो सभी के

अनुकूल है। समाज जीवन यापन का यह संभल बन जाता है। जो मन मानसिकता को गति देता है। शान्ति संतोष के साथ सुदृढ़, निश्चित, दीर्घ जीवितता को प्रगतिशीलता की ओर गति देता है। ऐसा परिवर्तन ही परिवर्तन है। अन्यथा खंडित, विखंडित, अंश आंशिक, टूटा फूटा, रुग्ण - रोगी, प्रतिकूलता, कमीदर्शिता आदि का कोई औचित्य नहीं होता है। कहलाने को तो यह कहलवा लिया जो कि एक साथ तो सब कुछ होता ही नहीं है। शनैः शनैः सब सही होता है। इसे सब जानते हैं। आवश्यकता है तो यह है कि जो भी परिवर्तन होता है। लाया जाता है वह मानवानुकूल है। वृत्ति को प्रवृत्त करने वाला हो। प्रवृत्त वृत्ति बनाने वाला है। वह प्रवृत्त होकर उपयोगी दिशा दर्शक हो। तो वह परिवर्तन सामान्य स्तर का परिवर्तन है। अन्यथा दोष पूर्ण ही तो परिवर्तन हुआ। सामान्य परिवर्तन चाहत चाहना ही सदा हुआ करती है। इसे ही पसन्द किया जाता है। जो जीवन जीवनी के लिए आवश्यक होता है। मन चाहत होता है। तभी मन परिवर्तन का अनुकूलता में नर्तन करता है। खुशी मनाता है। प्रसन्न रहता है। थोड़े में यही कहा जाता है कि परिवर्तन की अनुकूलता दूसरे शब्दों में अनुकूल परिवर्तन से तन स्वस्थ, मन स्वच्छ, परिवार सभ्य, समाज प्रगतिशील, राष्ट्र उन्नत होता है। व्यक्ति स्तर से लेकर समाज, राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय तक परिवर्तन सर्वमान्य होता है। मन नर्तन अर्थात संतोष, शान्ति, प्रसन्न और तो और हंसी खुशी का जीवन जीने के लिए यही परिवर्तन की स्थिति परिस्थिति भोगे खाती है। जो आवश्यक है। इस आवश्यक आवश्यकता की चाहत चाहना के लिए ही तो जो अच्छा होता है उसे लाया जाता है। अच्छा लागू किया जाता है। इन्ही रीति नीति में सुधार क्रिया होती है। जिसे ही तो मन चाहता है। मन नर्तन का कीर्तन आनन्दानुभूति कराता है। जीवन सभ्यता का यही मार्ग श्रेष्ठ होता है। परिवर्तन चाल मन स्वीकार है।

--- * ---* ---* ---

४१. मन लगे, न लगे, क्या कारण

लगाव - अलगाव, अलगाव - लगाव का उलटफेर स्वभाविक है। होता रहता है। क्यों होता रहता है। इसके भी तो कुछ कारक, कारण प्रयोजन होते हैं। यह सर्वमान्य सत्य है कि व्यक्ति-व्यक्ति, स्थान-स्थान, समय-समय स्थिति परिस्थिति के प्रत्येक क्रियाकर्म कारक-कारण में प्रभावक होते हैं। कारक और कारण को जानने की भी उत्सुकता होती है। अन्यथा समझना भी कठिन होता है। समझ में आने के बाद तो सुधार, निवारण, प्रतिस्थापन किया जाता है। नहीं तो कब, क्या, कैसा, कितना, क्यों जैसे सभी पर प्रश्न चिह्न लगे रहते हैं। जिनका कोई उत्तर ही नहीं बनता है। उत्तर बनते ही तब है कि जब वह समझ में आता हो। समझे नहीं, सुने नहीं, सोचे नहीं, माने नहीं, जाने नहीं, सीखे नहीं तो समझ आयेगा कहाँ से। समझ मैं लाने के लिए कुछ करना भी पड़ेगा। जब समझ मैं आ जाएगा तो उसके कारण भी खोजने पड़ेंगे। यह सब सही है। तो फिर विचार कर ही लिया जो यही उत्तम हैं---

मन नहीं लगने के कारण

१. चाहत, चाहना, मन पसन्द के विरुद्ध कार्यों में मन नहीं लगता है।

२. आलस्य, लापरवाही, बेगार - बेगारी, फालतू, काम होने पर मन नहीं लगता।

३. चिन्ता, दुख, रंज, गम, फिक्र भी दशा में मन नहीं लगता है।

४. शंका, भ्रम, अविश्वास, सामने वाले की मनोदशा में मन नहीं लगता है अथवा टाला भी जाता है।

५. ईर्ष्या, द्वेष, कपट, छल, धोखा, भरे भाव भावना होने पर मन नहीं लगता है।

६. हिंसा, भ्रष्टाचार, अन्याय, अत्याचार, बलात्कार, चोर का मन नहीं लगता है।

७. गुस्सा, क्रोध, खिलाफत की दशा मन नहीं लगता है।

८. घृणा, नफरत, विरोध की दशा में मन नहीं लगता है।

९. अपमान, अपमानित, तिरस्कार, नीचा दिखाने की दशा में म नहीं लगता।

१०. रोगी, रोग, पीड़ित का मन नहीं लगता है।

११. घटना, दुर्घटना घटित काम, का मन नहीं लगता है।

१२.मन उदास, मानसिक, विकृति दशा में मन नहीं लगता है। सनकी पागल आदि दशा में भी मन नहीं लगता है।

१३. लोभी लालसी कंजूस का मन नहीं लगता है।

१४. जुआरी, शराबी, सट्टेबाज, मांसाहारी, नशेलची, चोर, उचक्के का मन नहीं लगता है।

१५. प्रताड़ित, दोषी, सजायाफ्ता, दंडित का मन नहीं लगता है।

१६. मानसिकता की कमी, मानसिक रोगी का मन नहीं लगता है।

१७. असंतुष्ट, असहयोग की दशा में मन नहीं लगता है।

१८. भूख, प्यास, जैसी दशा में मन नहीं लगता है।

१९. बिगड़ी आदत, आदतनी का मन नहीं लगता है।

२०. डर, भय, हीन भावना वाले का मन नहीं लगता है।

२१. थकान, उनीदा, परेशान होने पर मन नहीं लगता है।

२२. चूका हुई भूला हुआ, भटका हुआ जैसे का मन नहीं लगता है।

२३. हीनता का अहसास, पिछड़ जाना पर भी मन नहीं लगता है।

२४. आयु प्रताड़ित शारीरिक अक्षमता के कारण मन नहीं लगता है।

२५. प्रकृति प्राकृतिक प्रकोप, राजनीतिक अस्थिरता, आर्थिक विषमता का संकट, सामाजिक भेदभाव, बहिष्कार, वरिष्ठों के होशियारों से आगे निकलने की निराशा में मन नहीं लगता है।

२६. विशेषाधिकारों में पिछड़ी स्थिति से उत्कृष्ट अधिकार प्राप्त हितों के मुकाबले में श्रेष्ठ काम है तो मन नहीं लगता है।

२७. काम नया हो पुराना या किन्तु उसमें नए कुछ करने की हिम्मत, साहस जुटाने की असमर्थता से मन नहीं लगता है।

२८. देखा देखी करने में अपनी विद्ववता की श्रेष्ठता से उस काम के प्रति नगण्यता लगने के कारण मन नहीं लगता है।

२९. हार की संभावना, पिछड़ जाने का डर, असफल होने की आशंका के साथ अपना मनोबल ही गिर जाय तो मन नहीं लगता है।

३०. आगा-पीछा कोई नहीं होने की स्थिति परिस्थिति में कार्य करने की इच्छा, जिज्ञासा नहीं होना होती भी है तो करके क्या करेंगे सोच के कारण मन नहीं लगता है।

३१. प्रण, वृत, संकल्प का कारण अथवा उसका सीमा काल के कारण काम न करने के कारण मन लगाने पर भी मन नहीं लगता है।

३२. ज्ञात अज्ञात संभव संभावना के बाहर के कामों में हाथ न डालने के भाव विचार का अंदाज में मन की विषमता के कारण मन लगाने की परिस्थिति के बाहर होने से न करने के कारण मन नहीं लगता।

उपरोक्त कुछेक ऐसे कारण है कि मन नहीं लगता है। मन लगाया तो जा भी सकता है किन्तु कारण का स्वभाव ही ऐसा होता है कि मन लगे तो लगे कैसे लगता ही नहीं है। यही कारण है कि इस प्रकार के कारक पूर्व कारणों को मन नहीं लगने के कारण कहा जा सकता है। मन लगने के विपरीत सभी कारण मन नहीं लगने के ही स्वभाविक होते हैं।

मन लगने के कारण- मन न लगने के विपरीत सभी कारण ऐसे हो जाते हैं कि उनमें मन प्रायः लग ही जाता है। नहीं लगाया जाय तो बात ही अलग हो जाती है। इसी प्रकार आवश्यकता नहीं समझी जाय, रुचि में नहीं आता हो उनसे अच्छी परिस्थिति में पहिले से ही आदि दशा में भले मन नहीं लगाया जा, लेकिन मन लगाया जाय तो लग जाता है। जिसकी मुख्य मुख्यता इस प्रकार मानी जा सकती है। मन लग जाता है –--

१. मन मानसिक स्वस्थ, शरीर - शारीरिक स्वस्थ, बन्धन नियंत्रण मुक्त, कठोर - कठोरता रहित, सूझबूझ न होने पर, ज्ञात-अज्ञात के बाहर, आगा-पीछा कैसा भी कुछ भी हो, वरिष्ठता कनिष्टता विद्वविद्वता आधिव्याधि जैसी भी स्थिति परिस्थिति कैसी कुछ भी हो किन्तु चाहत चाहना के सामने सभी को नकार दिया जाकर करने की इच्छा जिज्ञासा के होने पर सभी प्रकार के काम करने का मन हो जाता है। मन लग जाता है। निर्धारित परिणामों की परवाह भी नहीं की जाती है। मन लगाना पड़े। मन लग जाता है।

२. सहज सहजता शक्ति क्षमता, प्रतिभा योग्यता के अनुकूल - होने पर मन लग जाता है।

३. कर्त्तव्य निर्वाह की दृढ़ता, सहयोग - सहकार, सहानुभूति लगन, लगाव, उत्तेषण, प्रायश्चित, संकल्प, प्रण, सोच, उद्देश्य, लक्ष्य, प्रतियोगिता, सफल सफलता के निमित्त आदि दृढ़ता के कारण मन लगता है। लग जाता है।

४. शान्ति, संतोष, निश्चिंतता, निर्भीकता, प्रशंसा, सम्मान, विश्वास,आशा, संभावना, उत्प्रेरणा, उत्सुकता, अनुभूति के निर्देश, स्वप्र, संकेत प्रेरणा आदि दशा में मन लग जाता है।

५. उदारता, अहिंसक, तृप्त, अच्छी आदत, सदगुणी, आस्थावान श्रद्धालु, दया, समर्पित भाव, दोष निवारण भाव, सुधार करने की इच्छा, श्रेष्ठ काम करने के प्रति लगन लालसा, व्यसन मुक्त दोष दुर्गुण रहित, दशा में मन लगता है। नहीं लगने की स्थिति परिस्थिति को नकार कहकर मन लगाया जाय लग जाता है।

६. स्वयं के अन्दर अच्छाई उत्पन्न होने पर तो मन सदा लग ही जाता है।

७. अन्य अन्यान्य समय परिस्थिति की समय व्यर्थ नष्ट नहीं किया जाय भाव में मन लग ही जाता है।

८. शक्ति क्षमता के बाहर होने पर किन्तु स्थिति परिस्थिति की आवश्यकता पर मन स्वतः लग ही जाता है। मन इच्छा जिज्ञासा मन लगने की दिशा में मन लग ही जाता है।

मन लगने नहीं लगने की दोनों दशा दिशा में और पर विचार किया। यहाँ विशेषकर इस बात पर अधिक हम जोर देते कि सहमति इसमें बन जाना चाहिए कि---

मन क्यो?क्या? कहता सुनो समझो विचार करो।
जोर जबरदस्ती है नहीं औचित्य पकड़ो आगे बढ़ो।
मन लगे न लगे क्या कारण समझ आयगी धीर घरो।
मन की बात कहने दो मन लगे अवसर अवश्य दो।

मनोबल में ओछा सोच सदा बाधा डालता है। ओछा सोच आने ही नहीं देना चाहिए। सब हमारे हम सबको अच्छा करेंगे तो अच्छा होगा। बुरा बुराई को जड़ से मिटाना है। समग्र प्रयास आवश्यक है। जीवन जीने की सार्थकता मानवता रखने में हैं। मानव श्रेष्ठ है तो उसे श्रेष्ठता ही रखना है। श्रेष्ठ बनकर रहना भी है। आदि आदि।ऐसे भाव-भावना समझाइश की बातें है कि मन को लगाना ही चाहिए। जीवन जीवनी की सार्थकता अच्छा करने, अच्छा लागू करने, अच्छाई की ओर आकर्षित करने, अच्छे की ओर प्रेरक बनना, बुराई दूर करना, अच्छाई में वृद्धि करना, प्रगति प्रगतिशीलता का हामी बनना, दोष दुर्गुणों का त्याग, त्यागी बनना बनाना, अपने सोच विचार में नेक नियत को लाना, बढ़ाना स्थाईत्व करना, आदि ऐसे मूल मुद्दे कारण- तथ्य फल-परिणाम है कि जिनकी अनुकूलता में मन प्रथमतः मानसिक झुकाव के कारण

सही सोच समझ कर ही करने नहीं करने की स्वीकृति, अस्वीकृति मन अपने आप ही देता है। इसे समझा जाना चाहिए। यदि कही किसी प्रकार की रोक रुकावट आती भी है तो उसे ठीक करना ही पड़ेगा तो ही अच्छाई का मार्ग खुलेगा मन लगेगा। थोड़े में तो यही करना होगा कि मन तो लगने को सदा तैयार रहता है। किन्तु उसे लगाने वाला भी तो चाहिए। जहाँ मन लगाने की आवश्यकता नहीं होती है मन स्वतः मना भी कर देता है। अरुचि प्रकट कर ही देता है। जहाँ लगाना होता है वह रुचि से लग भी जाता है। मन ऐसा भी स्वाभिमानी है कि संकट, विरोध, संघर्ष को कतई पसंद करता ही नहीं है तो वह अच्छाई की ओर अवश्य लग ही जाता है। यहाँ मस्तिष्क की बुद्धि - बौद्धिक की सूझ-बूझ भी चाहिए। मन को नकार में आकार आकार में साकार के निमित्त सदा लगने को तैयार है। मन के न लगने की बात करना अपने आप को धिक्कारना है। मन तो सफलता का प्रेमी, दीवाना होता है। लगाव की ओर झुक ही जाता है।

४२. रिश्तों में सदाबहार मन संवाद

मानव जीवन सामाजिकता की जिन्दगी में जिन्दा दिली है। पारिवारिक जीवन मिला मंजिल मिली। जो रिश्ते नाते दोस्त दोस्ती के सफर में मजेदार हो जाती है। मुश्किलें हार जाती है स्वयं की जीत हो जाती है। दाम्पत्य जीवन मुस्करा जाता है। जो दूरियाँ थी अब वे परिवार में आकर दूर तो जाती है। परिवारजनों के रिश्ते नाते आनन्द सागर लहराने लग जाता है। काम की व्यस्तता में समय बीतने लग जाता है। टीवी कम्प्यूटर या अपने कमरे में सीमित हो जाते हैं अथवा किसी एक रिश्ते पर निर्भर हो जाते हैं। पुरुष को पति, पिता और स्त्री को पत्नी, गृहिणी, बहु, ननद, जेठानी, देवरानी के साथ बच्चे की माता के रूप में प्रथम गुरु का सौभाग्य मिल जाता है। घर गृहस्थी की व्यवस्था को बनाना पड़ता है। निर्वाह व्यवस्था के लिए दोनों को कमाना पड़ता है। दूरियाँ बढ़ जाती है। संवाद विहीनता आ जाती है। पत्नी - पति से, बेटा बाप से, बेटी माँ से, भाई बहिन से रूठे से नजर आते हैं। उनमें संवाद शून्यता आ जाती है। वृद्धों को शिकायत बनी रहती है कि उनके पास कोई आता नहीं है। वे बोलना चाहें तो किससे बोले। ऐसे में वैचारिक मतभेद तनाव के कारण बन जाते हैं।

काम सबके अपने अपने होते हैं। उन्हें महत्व देना पड़ता है। करने पड़ते हैं। फिर भी परिवार चाहे एकल हो अथवा संयुक्त लेकिन परिवार जन को परस्पर संवाद बनाकर रखना होता है। सलाह लेना होता है। बड़े को बड़ा, छोटे को छोटा आदर मान का समुचित पालन करना पड़ता है। परस्पर संवाद ही बन्द हो जाय तो यह सब विध्वंसकता के फैल पसार में बदलता चला जाता है। भावनात्मक रूप से सभी आपस में एक-दूसरे से दूर होते चले जाते हैं। कुछ रिश्ते तो इतने नाजुक होते हैं कि निभना तो दूर आगे बढ़ने से विपरीत दिशा में चल पड़ते हैं। परिवार मर्यादा के विरुद्ध मेड इन हेवन आशय से प्री नव्वल एग्रीमेन्ट अर्थात प्री-नप करार करते हैं। प्रेम सम्बन्ध हो जाता है। अनहोनी हो

जाती है तो अनहोना करना पड़ता है। यह चूक परिवार के प्रत्येक सदस्य को दागदार बना देती है। परिवार समाज अपमानित अथवा बहिष्कृत जीवन यापन की स्थिति परिस्थिति का सामना करना पड़ता है। शरीर मान से एक छत के नीचे के निवासी भले वे लगते हो, लेकिन में जो विपरीतता रहती है कि जिससे एक छत के नीचे भी भावनात्मक सबकी अपनी ऐसी दीवार बन जाती है कि एक-दूसरे का भला सोचना तक समाप्त हो जाता है। बोलचाल की दूरी इतीन बढ़ जाती है कि मरना पसन्द लेकिन बोलना पसन्द नहीं आता है। आदि।

यह सब है क्या?क्या हमेशा से ऐसा ही चला आ रहा है?नहीं तो अब क्यों ऐसा हो गया है? इसके दोषी हम स्वयं हैं। जिस पशुता से मानव उभर कर बाहर आया था उसकी ओर वह फिर मुड गया। वह है स्वार्थ दूसरे के हित अहित से कोई मतलब नहीं। मानवता इसे वरदास्त नहीं करती है। मानव प्राणी तो हैं, लेकिन वह सामाजिक प्राणी है। समाज में रहने के उसके अपने तौर-तरीके, व्यवहार सम्बन्ध की एक ऐसी परम्परा जिसे निभा कर चलना होता है। तभी तो उसकी सामाजिकता का निर्वाह हो जाता है। इसमें कमी आने पर वह दो पैर वाला निरा पशु ही रह जाता है। इससे आगे कुछ नहीं।

दैनिक जीवन में हम यह देखते है कि पशु-पक्षी जब कभी वे एक-दूसरे के पास आते हैं। बैठते हैं, अपने-अपने हाव-भाव से आपस में एक-दूसरे से संवाद करते हैं, लेकिन सामाजिकता के अभाव के कारण स्थायित्व नहीं होता है।

मानव की अपनी विशेषता होती है। वह रिश्तों को महत्व देता है। उनमें सामंजसता बनाये रखता है। निर्वाह की परम्परा का पालन करता है। परस्पर सहयोग सहकार का जीवन बिताता है। संवाद बनाये रखना उसका स्वभाव होता है। अपने मन की बात कहना सुनना उसकी पारस्पारिकता की अनिवार्यता इसकी वृत्ति में होती है। इसके बिना वह हंसी खुशी का जीवन नहीं

बिता पाता है। यह इतनी बड़ी विशेषता होती है कि मानव मानवता से ऊपर उठकर देव तुल्य समझा जाने लगता है। यह सब उसके संवाद की सदा बहार का परिणाम है।

यहाँ संवाद के विषय में जानना आवश्यक है। रिश्तों में सदाबहार का एक ही मंत्र है। संवाद, संवाद परस्पर रिश्तों में दोस्तों में, परिजनों में, सभी में होता है। जो बेशकीमती होता है। संवाद में एक - दसेर की सुनी जाती है। आपस में शंका समाधान होता है ॥ सलाह-विचार होता है। आपस में सम्मान किया जाता है। आदर के साथ व्यवहार किया जाता है। शालीनता अपनाई जाती है। मध्यत से रिश्तों को बनाया जाता है। एक-दूसरे की मदद की जाती है। हंसी खुशी का जीवन जिया जाता है। विपरीत विचार वालों को रिश्तों के अटूट बंधन में बाँधा जाता है। आदि आदि। यह सब संवाद ही में संभव है। हर रिश्ते की अपनी आत्मीयता होती है। वह संवाद से गहनता की ओर बढ़ती जाती है। इसीलिए उन्हें सावधानी से निर्वाह में निभाया जाता है।

इसके लिए यह जरूरी है कि कुछ न कुछ ऐसा अवसर अवश्य लाया जाय कि परिजन एक-दूसरे के सुख-दुख का शेयर करे। अपनी कहें। दूसरे की सुने। सुझाव दें। अच्छा हो उसे स्वीकारें। बुरे को त्यागे। इससे आपसी संबंधों में गहनता आती है। संतोष शान्ति सहयोग-सहकार का जीवन जीने में सुख-चैन का आनन्द मिलता है। मन स्वच्छ रहता है। परिवार में सभ्यता से प्रगतिशीलता आती है। अज्ञान दूर होता है। अभाव मिटते हैं। हम आपके आप हमारे का भाव गहरा होता है। बिना संवाद के यह संभव नहीं है।

संवाद विहीनता जनरेशन गेप को बढ़ाता है। आपस में नहीं बोलना। मनमुटाव रखना। एक-दूसरे के काम नहीं आना। एक दूसरे का बुरा देखना। आदि आदि ऐसे तरीके है कि भावनात्मक दूरी बढ़ती जाती है। भावनात्मक दूरी की अंकुशता जनरेशन गेप का कारण बन जाता है। समस्या बढ़ती जाने

के कही ज्यादा जनरेशन गेप में कसाब आता चला जाता है। बाप-बेटे को न कुछ कह पाता है। न बेटा अपने ख्वाब के पुलाव पिता के सामने ला पाता है। इससे मन मानसिकता अपने अपने मार्ग बनाकर भागने लगती है। जनरेशन गेप फिर दूर करना कठिन हो जाता है। अकेलेपन का शिकार होना पड़ता है। दूरियाँ बढ़ती चली जाती है। रिश्ते खराब होने लगते हैं। मन उदास रहने लगता है। जिन्दगी आसान बनाने के अवसर की तलाश में रहा जाता है।

प्रश्न अवसाद न आए। क्या किया जाय क्या कोई इसका समाधान है? हाँ है। वह है संवाद को बरकरार रखना। व्यवहार को लचीला बनाया जो। किसी एक रिश्ते में लीन न हुआ जाय। मातापिता, भाई-बहिन, दादा-दादी और जो भी रिश्तेदार नातेदार है। उनसे वैसा ही व्यवहार सम्बन्ध संवाद बनाये रखना। जब कभी कौन्सलिंग किया जाय। पास बैठकर भोजन किया जा। बच्चों के साथ मनोरंजन किया। जीना इसी का नाम है। किन्तु पश्चिमी सभ्यता में ऐसा कुछ नहीं होता है। वहाँ तो रिश्ते ही बदल लिए जाते हैं। अच्छा तो यह है कि आपसी संवाद के द्वारा समाधान को समझें। बहुत कुछ नया सीखने को मिलता है। ऐसे में अवसाद आ नहीं पाते हैं। होते हैं तो मिट भी जाते हैं। एक-दूसरे पर विश्वास जमता है। एक-दूसरे का प्रभाव एक-दूसरे पर पड़ता है। समझ होशियारी सीख - शिक्षा ज्ञान विद्या सभी से लाभांवित हुआ जाता है। जनरेशन गेप नहीं आ जाता है। अपितु लिंकबद्ध प्रगतिशीलता वंश परम्परा में ऐसा घर करती चली जाती है कि समय से आगे के मार्ग अपने आप खुलने लग जाते हैं। जनरेशन से जनरेशन में सुदृढ़ता प्रगतिशीलता आती चली जाती है। रिश्तों में सदाबहार का इजाफा होते रहता है। मन संवाद और गहराई पकड़ते जाते हैं।

उपरोक्त विचार मंथन से यही पाया कि रिश्तों में सदाबहार मन संवाद बना रहने से कम्यूनिकेशन मिस नहीं हो पाता है। रिश्ते खराब नहीं हो पाते है। तनाव की स्थिति टल जाती है। हँसी खुशी का जीवन जीने का अवसर बना

रहता हैं। स्पष्ट है कि संवाद रिश्तों में सदाबहार भी सर्वोत्तम, सर्वश्रेष्ठ, अनिवार्य कारण है। बिना संवाद के न मनमुटाव दूर होते हैं न मन लगने वाली स्थिति आती है। न मन मानसिकता को प्रगतिशील बनाया जा सकता है। सबसे अच्छा तो यही है कि पेरेन्टस को बच्चों को जानना आवश्यक है। रुचियाँ जानी जाय। प्रतिकूलतावादी को अनुकूलता संवाद द्वारा लाई जाय। हर रिश्ते में यह अनिवार्य हैं कि सदाबहार का तरीका संवाद का सदा स्थान दिया जाय। व्यस्तता चाहे जितनी हो लेकिन परिवार परिजनों, कुटुम्बियों संबंधियों में अपने अपने प्रकार के जिन संवादों की आवश्यकता है उनसे दूर नहीं रहा जाय तो रिश्तों में सदाबहार मन की प्रसन्नता सदा बनी रहेगी। मन लगा रहेगा। मन जुड़ा रहेगा। मन मानेगा। मन मन की कहता सुनता रहेगा। मन से मन का गेप कभी नहीं बन पायेगा। सदाबहार में मन लहराता रहेगा।

४३. जियो मनभर के जियो

जीवन मिला है जीने के लिए। मरेंगे तो सही, लेकिन तब तक मनभर कर जी लिया जाय। मन ही आत्मा (प्राण) और मस्तिष्क (बुद्धि) दोनों की चाहत को व्यक्त करता है। सुक्रति और विकृति का पता लगता है। जिज्ञासा, इच्छा, चाहत ही से आशा के साथ अपेक्षा भरा सामाजिक आधार का पता चलता है। कोई सफलता चाहता है। कोई शोहरत चाहता है आदि। जीवन जीने के लिए संस्कार शिक्षा-दीक्षा सुविधा चाहिए। इनके अतिरिक्त शान्ति, संतोष, सम्मान, प्रतिष्ठा, प्रशंसा और शुभकामना भी चाहिए। अज्ञानी, अभावग्रस्त, अशक्त, अशान्त असंतुष्ट, उपेक्षित, तिरस्कृत, बदनाम, बुरी कामना कोई भी नहीं चाहता है। मन हितैषी होता है। वह जीवन जीने का स्वाद लिया करता है। मन का स्वाद नई बात नहीं है। मन के स्वाद के जायके के नमूने अब कुछ बदल गये हैं। ये नमूने भी मन के टेस्ट के अनुसार बन गये हैं। जिनका आशय चाहत की श्रेष्ठता की ओर बढ़ना होता है। वह अपनी चाहत की सुकृति चाहता है। विकृति नहीं। जो व्यक्ति के जीवन में एक सी नहीं मिलती है। सच्चाई, ईमानदारी, दया, सहायता, नैतिकता, झूठ, बेईमानी, हिंसा, विरोध, चोरी, भ्रष्टता, अनैतिकता आदि में से कौन किसको कब चाहिए यह जीवन जीने वाले की मन मर्जी पर निर्भर होता है। वह किस स्थिति परिस्थिति में है इस पर निर्भर होता है। वह किस स्थिति परिस्थिति में है इस पर से वह अपने मन मर्जी की चाहत पूर्ति के प्रयत्न प्रयास करता है। इसी से नियत का अर्थात टेस्ट का पता चलता है। उसका मस्तिष्क और मन चाहत की टटोल में लगा रहता है।

बेईमानी भ्रष्टाचार चोरी अनैतिकता आदि प्रकार से जिया जाय तो मन अंधेरी कोठरी में छिपे चोर की तरह चुप्पी साधे रहता है। उसे सदा भय सताया करता है कि कही वह आउट न हो जाय। उसका मस्तिष्क और बौद्धिक शिरायें उसके किये को छिपाये रखने की टटोल में लगा रहता है। दूसरी ओर ईमानदारी,

सच्चाई, नैतिकता आदि से जीने वाला मन जी खोलकर खुलेआम सबके सम्पर्क में रहता है। बे फिक्री का सिर ऊँचा कर जीता है। वह भय मुक्त रहता है। सामान्य इच्छा का जीवन जीना इसी को कहते हैं। उपरोक्त प्रथम प्रकार का जीवन जीना अपनी निजी इच्छा का जीवन कहलाता है।

संसार में उस परमात्मा ने मानव कृति ही ऐसी दी है कि जो अपने जीवन निर्वाह के साथ दूसरों के जीवन का ख्याल भी रखता है। उनका जीवन भी बदल देता है। परिवार एकल हो अथवा संयुक्त लेकिन आश्रितों के जीवन को कुशल कुशलता के साथ जीने का अवसर दिया जाता है। लिव इन रिलेशन जीवन में दोनों ही अपने अपने स्वार्थों में जीते हैं। गर्लफ्रेण्ड और बॉयफ्रेंड जीवन में बॉयफ्रेंड को ही को अपने गर्लफ्रेंड का ध्यान रखना पड़ता है। बृहद परिवार के जीवन में व्यवस्था महत्वपूर्ण होती है। वृहद परिवार में सभी सदस्यों को व्यवसाय, धंधा, सुख सुविधा आदि सभी उनकी आवश्यकता की व्यवस्था से होता है। इसी प्रकार उनका जीवन व्यतीत होता है।

जीवन जीने में मन व्यसन से घृणा करता है। शराब का प्याला से लगा जैसे ही घूट लिया कि मन फड़फड़ा उठता है। तम्बाकू खाया कि उल्टी जैसा होता है। धूम्रपान किया कि मस्तिष्क धुंआ से परेशान हो तुरन्त नाक अथवा मुँह से बाहर धुंआ को फेंकता है। मांसाहार प्राण स्वरूप आत्मा आत्मा को चिगद कर प्राण तत्व से नफरत का मन होता है। मानव मन शाकाहार से मन तंदुरुस्त का समर्थन करता है। वनोषधि से प्राणी मात्र के लिए स्वास्थ्यवर्धक होती है। तभी तो रुग्ण, जुलाव आदि अवस्था में सेवन किया जाता है।

वर्तमान यह देखा जाता है कि हर कोई अपने ही अनुसार जीवन जीना चाहता है। सभी तरह का सुख भोग वह अपने जीवन में चाहता है। इसका अर्थ तो यह हुआ कि जीवन में अपना ही जीवन जीना सब कुछ है। दूसरों से क्या करना। सुनाने समझाने की दृष्टि से वह अपने जीवन की कठिनाइयों को

गिनाया करता है। दूसरों की जीवन जिन्दगी बदलने से उन्हें कोई सरोकार नहीं रहता है। जबकि अपने जीवन के साथ दूसरों के जीवन में भी खुशी लाने का भाव होना चाहिए। मानव में बढ़ी हुई स्वार्थपरता, लालच, अपना ही स्वार्थ सिद्धि चाहता है। स्वभाव ही बन गया है। उसका यह स्वभाव ही बन गया है कि यदि दूसरों का भला ही देखते रहेंगे, शोहरत ही कमाते रहेंगे तो धन कौन कमाकर उन्हें दे देगा। ऐसे में वे अपना गुजारा कैसे पूरा करेंगे। यह भी कोई जीवन का जीना कहलायेगा। उनकी नजर में यह इस प्रकार पर हितैषी का जीवन जीना व्यर्थ लगता है। वे जो भी कुछ करते हैं अपने ही लिए करना चाहते हैं।

प्राय: देखने कहने, सुनने में यही आता है कि क्या करे फुरसत ही नहीं मिलती है। व्यस्तता बनी ही रहती है। इसका एक मात्र कारण लालच स्वार्थ और निजी लाभ का होना है। आवश्यक आवश्यकता आराम और विलासिता की चाल क्रमश: मानव को संतुष्टि नहीं होने देती है। उसकी क्रमशः चाहत ही उसे व्यस्त बनाये रखती है। इसी से जीवन आपाधापी, बेचैन, परेशान जैसा लगा करता है। बेहतर काम की व्यस्तता से अक्सर खुश हो बात अलग है। इसी प्रकार अपनी व्यस्तता के साथ दूसरों को खुशी हो। यह माना जाएगा कि आपका शान्ति, संतोष, प्रशंसा आदि के जीवन जीने में आप भी शामिल है। किसी अभाव ग्रस्त को मदद करना आपके अन्दर के इंसान मन ही की विशेषता है। प्यार करने का भाव स्वयं को प्रेमी तो बनाता ही है साथ उसे प्रेम करने का आनन्द स्वयं को मिलता है। इस सबके अतिरिक्त जीवन जिंदगी जीने का यही तो सही जीना होता है। जीवन जीने की अच्छाई में हाथ बटाना। अपने जीवन की सुख सुविधाओं से सुख भोग से लाभांवित होना ही तो मनभर जीना कहा जाता है।

अनुकूल परिस्थिति को उत्पन्न करते हुए जीवन जिया जाय वहाँ सुख शान्ति प्रसन्नता–आनन्द की अनुभूति होती है। जीवन जीना सफल माना जाता

है। क्रम उत्कृष्टता की ओर बढ़ता जाता है। तो मनभर के जीवन जीना कहा जाता है। इसके विपरीत यदि उत्कृष्टता नहीं मिलती है। विपरीतता नहीं आती है तो सामान्य जीवन जीने की स्थिति होती है। इसके विपरीत विपरीतता आती है तो जीवन मन भरके जीना नहीं कहा जाएगा। मन भरके का अर्थ सभी पूर्तियों के साथ जीना। मन भर के साथ जीना ही कहा जाएगा। दबाव अथवा काम की अधिकता का जीवन मन मसोसकर अर्थात मन की अनइच्छा का जीना ही तो कहा जाएगा। जो मन भरकर नहीं होकर मन पूर्ति का जीवन ही कहा जाएगा। यदि अनुकूलता में वृद्धि होती है तो जीभर कर जीना कहा जाएगा।

जीभरकर जीना अच्छा माना जाता है। लम्बे समय जीना दीर्घ कालिक जीवन जीवनी जीना कहा जाता है। कम समय का जीना अल्प आयु जीना समझा जाता है। पैदा होते ही मर जाना व्यर्थ जन्म का जीवन होता है। कष्ट उठाकर जीना कष्टदाया या दुखी का जीवन होता है। दंडित, बदनामी, तिरस्कृत आदि जीवन जीना कष्टभोगी बहिष्कृत आदि कहा जाता है।

उपरोक्त अंक्षिप्त विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि जीवन मिला है तो वह किसी भी प्रकार से जिया जाय। जीवन जीना ही कहा जाएगा, लेकिन आनन्द, प्रशंकित, सम्मानित आदि जीवन जीना संतुष्ट जीवन कहा जाता है। यह संतुष्ट जीवन की स्थिति बनी रहे तब जीभरकर जीवन जीना होता है। श्रम साध्य संतुष्ट, निरोग, वेदाग, जीवन जीना मनभर का जीवन जीना कहा जाता है। जिसे सभी कोई चाहते हैं।

जियो जीने दो सबको इसी बात का द्योतक है।
जियो मनभर के जियो यही हमारा कहना है ॥

४४. मिस्टेक की मिस्टेक मन की भूल

मानव मानसिकता में उभार लाने के लिए संस्कारों से सीखसिखावन, विद्या से लिखाई पढ़ाई ज्ञान, कला से हुनर, ट्रेनिंग से होशियारी साईन बोर्ड, दीवाल लेखन से अवगत करना हड़ताल से विरोध, अभियान से आकर्षण, विज्ञापन से प्रचार-प्रसार तरीके अपनाये जाते हैं। फिर भी भूल भुलाया हो ही जाता है। क्योंकि या तो वह बूते के बाहर हो या मन की चाहत के अलावा हो या स्थिति परिस्थिति की संभव सम्भावना से भिन्न हो। ऐसे में मिस्टेक (भूल) हो जाती है। मिस्टेक कैसी? क्यों ?क्या ? है। यह चाहत काम नहीं होना ही से ज्ञात होता है। जब इस बात को भुला दिया जाय तो मिस्टेक की मिस्टेक मन की भूल ही तो कहा जाएगा। मन एक होता है। किन्तु उसकी चंचलता में अनेकता होती है। वह चाहता कुछ है, करता कुछ है होता कुछ है। उसकी इस उलट पलट का पता ही तब लगता है जब सफलता-असफलता के जब जैसे परिणाम आते हैं। परिणाम में कुछ न कुछ मिस्टेक तो निकाली ही जाती है। यही तो मिस्टेक में मिस्टेक अर्थात् मिस्टेक फ्री हुआ। मन फ्री होता ही कहाँ है कि वह मिस्टेक को फ्री छोड़ दे मिस्टेक का स्वभाव ही फ्री रहने का रहता है। मन लगाया जाता है। मन लगा तो ठीक नहीं तो मिस्टेक फ्री कारण खोजा। पता लगा कि मन ने सावधानी को भुलाकर किया। वह उसकी मिस्टेक रही है। मालूम हुआ। मिस्टेक की मिस्टेक मन की भूल यह यह मिस्टेक और हो गई।

यहाँ यही किया जाय कि मिस्टेक को फ्री छोड़ा जाय। मन की पकड़ पकड़ी जाय। मन मुक्त हो अपने काम में लग जाएगा। वह मिस्टेक फ्री माइंड हो जाएगा। मिस्टेक दूर हो जाएगी। काम हो जाएगा। यही तो मिस्टेक की मिस्टेक को फ्री छोड़कर काम में लगाना होता है। जब जीवन शैली में मूड खराब होता है। झुझलाहट तनाव जैसा होता है तब सीख मिलें समस्या सुलझे और उसे नहीं मानना मिस्टेक की मिस्टेक है। बच्चे के प्रति पापा का ध्येय इच्छा

पूरी करना होता है लेकिन बच्चा कहे और मनाकर दिया। समझना था। तब मना करना था। रुचि छोड़ नीति संहारे बाधा खत्म होती है, लेकिन सुख के लिये नकार मन की करना मिस्टेक की मिस्टेक है। यदि बिना किए सब मिल जाय मजा आता है। लेकिन जब करने पर भी सफलता नहीं मिले तो जिन चढ़ावों से गुजरा गया है उनसे कि कभी तो सफलता मिल ही सकती है, लेकिन उपयोगिता भुला देना मिस्टेक की मिस्टेक है।

जीवन जीने का अच्छा तो यह होता है कि मन ही को काम में लगाया जाय। यह वैसा ही कि मंजिल में नहीं सफर में मजा आता है। सफर से मंजिल तो मिलती है। मन फ्री होकर लगा रहेगा। काम बना। मन को धन्यवाद। जहाँ से मिस्टेक हुई हैं वहाँ पहुँचने से ही असलियत का पता चलेगा। मिस्टेक फ्री है तो अब मन भी फ्री हो जाएगा। कुछ भी तो पता लगेगा फ्री छोड़ा फ्री पकड़ा मिस्टेक फ्री मन फ्री। काम फ्री चलने लगेगा। अपनी शक्ति क्षमता से किये काम में सफलता मिलती है। भूल की संभावना कम ही होती है। शक्तिक्षमता, सावधानी- होशियारी से मन की व्यस्तता लाने पर ही ज्ञानी, वैज्ञानिक, कलाकार, साहित्यकार, न्यायाधीश, डॉक्टर, टेक्नीशियन आदि आदि सभी सफलता पाते हैं। यहाँ यदि शंका निराशा होती है तो ही बाधा पड़ सकती है। सावधानी हाथ पकड़कर आगे का मार्ग बताती है। मन का साहस, सफलता का मार्ग पकड़ाता है। मिस्टेक की संभावना से लगभग फ्री हो जाते हैं। अनुभव अनुभवियों से सलाह मदद इसी अशय से ली जाती है।

बेहतर काम की सबको अपेक्षा रहती है। गलती होती है तो तुरन्त माफी ही उसका इलाज है। काम उसी अंदाज में दोबारा प्रारंभ कर लिया जाय जैसे व जहाँ से वह प्रारंभ किया था। गलती होने के पीछे कोई न कोई कारण अवश्य होता है। गलती की चिन्ता की कोई जरूरत नहीं है, बल्कि उस गलती से सीख ली जाय। अपने काम को मिस्टेक फ्री कर दें। जान बूझकर गलती नहीं की जाती है, लेकिन बॉस, मुखिया या मुखिया कुछ डॉट जैसे लहजे में

कहता अवश्य है, लेकिन इतने से मनोबल नहीं गिराया जाय। समय अवश्य याद रखें। खूब सीखना चाहिए। गलतियों से बचना चाहिए। स्वयं पर विश्वास करना चाहिए। मिस्टेक से फ्री होकर ही अपना काम करना चाहिए। मिस्टेक को सदा ध्यान में रखने की कोई आवश्यकता नहीं है। अपने काम को सावधानी और फ्री माइंड से ही करना चाहिए। इससे अच्छा और कोई तरीका नहीं होता है।

गलती किससे नहीं होती है। सब से होती है। काम समय पर नहीं करना चाहत के बाहर का काम करना। किये काम जिससे अनुकूलता सिद्ध नहीं होती है। किये काम में कमी रह गई हो। आवश्यकता से ज्यादा उसे कर दिया गया है। यह सब कमियाँ मानी जाती है। गलतियाँ नहीं हों, के लिए जो सावधानी रखी जाती है। वह इस प्रकार विचारा जा सकता है - विषय के अनुसार काम है किया जाय। न कम न ज्यादा अर्थात् ठीक जितना चाहा गया उतना ही किया जाय। जो आवश्यकता का काम किया है उसमें किसी प्रकार का घालमेल नहीं तो ठीक वैसा ही वही हो जो चाहा गया है। किये काम में स्थायित्व होना चाहिए। इसी अनुकूलता के सावधानी बरतने काम की क्वालिटी सुधरी हुई हो जाती है। बस यही तो मिस्टेक परे सही करना होता है। ऐसा इस प्रकार किया काम ही फ्री मिस्टेक काम कहा जा सकेगा। काम के करने में किसी प्रकार की भूल हो गई, लापरवाही बरती गई हो। किये पर विश्वास नहीं हो। दूसरे जिसे आधा अधूरा गलत आदि जैसा बताते है। आदि आदि भूल में शामिल है। भूल जानबूझ की गई है। वह अनजान में हो गई है। आधी अधूरी जानकारी होने पर किया गया है। आदि आदि। यह सब भूल के कारण बनते है। अपराधी पकड़ा जाता है। वह अपराधी अपराध को स्वीकार कर लेता है। स्वीकार नहीं करता है। प्रयत्न प्रयास अर्थात खोजबीन से अपराधी सिद्ध हो जाता है। हर दशा में अपराधी को दण्ड तो मिलना ही है। फिर उसके साथ न्याय नहीं हुआ। होना तो यह चाहिए कि मिस्टेक को भुला दिया। अपराध सिद्ध की

तुलना की जाय तो अपराध सिद्ध और दण्ड सही होता है अन्यथा आपत्तिजनक ही माना जाएगा।

की गई गलती में ऐसी कौन सी समानता पाई गई कि जिससे मन में सीरियशली नहीं लेकर इस प्रकार से किया कि उसमें मिस्टेक रह गई। ऐसा कैसा विश्वास कि बिना जांच के ही सही मान लिया। जांच परीक्षण बाद ही तो सही करार दिया जाएगा। सही करार को उजागर करने की विज्ञप्ति होती है। विज्ञप्ति पर से कोई आपत्ति नहीं आती है तो ही उसे सही करार दिया जाता है। तब उसे मिस्टेक फ्री कहा जाता है। इस मिस्टेक फ्री के करार को उजागर फिर किया जाना चाहिए। तब सामान्यतः वह भूल फ्री कहा जाएगा।

पत्र पत्रिकाओं के प्रकाशित मेटर को मिस्टेक फ्री इसलिए कहा जाता है कि उनमें छपने वाला मेटर शासन नीति अनुसार निश्चित स्वभाव वाली सामग्री प्रकाशित होने से प्रतिबंधित है। पुस्तकों का कापी राइट पुस्तक प्रकाशन मिस्टेक फ्री होकर कहा जाने वाला प्रकाशन कहा जाता है। सत्यप्रतिलिपि मिस्टेक फ्री होता है।

संक्षेप से हमने उपरोक्त प्रकार से मिस्टेक शब्द की खोजबीन जांच की तब माना। जैसा कि ऊपर की पंक्तियों में दर्शाया है। इस मान्यता प्राप्त मिस्टेक को सुधार में भुला दिया गया। तब मिस्टेक फ्री होकर रह गई मिस्टेक तो मिस्टेक है, सही। फिर दूर करने की बजाय उसे भुला दिया गया, तो जहाँ बस वह मिस्टेक हुई है वह और जहाँ उसे भुला दिया है। दोनों ही तो मिस्टेक फ्री हो गये। यह मन की भूल ही कही जाएगी। इस सभी परिस्थिति जन्य मिस्टेक को याददास्त में लेकर भुलाना ही मिस्टेक फ्री मिस्टेक मन की भूल मिस्टेक होती है। मन के द्वारा मिस्टेक भुलाने के कारण समय से उसमें सुधार नहीं हो पाया। वह मिस्टेक फ्री होकर रह गई।

यहाँ सम्पूर्ण विवेचन का सारांश केवल इतना सा ही है कि जब मिस्टेक हो जाती है। मिस्टेक करार दे दिया जाता है तो उसे दूर करना चाहिए। यदि मिस्टेक को मिस्टेक करार मिल गया है और उसे दूर नहीं किया जाकर भुला दिया गया है। तो वहा मिस्टेक की मिस्टेक मन की भूल होती है। मन को सजग रहना चाहिए। इस प्रकार की भूल नहीं करना चाहिए। यह मन की भूल है जो नहीं होना चाहिए। मिस्टेक की मिस्टेक मन की भूल हो जाती है। इस प्रकार मिस्टेक की मिस्टेक मन की भूल के विषय में परिस्थिति जन्य से कहा जाना चाहिए मिस्टेक अपने आप में मन की भूल को दर्शाती है। इस भूल मिस्टेक को मिटाये बिना अथवा बिना ध्यान दिये करते रहना मिस्टेक को मिस्टेक अपने आप हो जाती है मन मानसिकता की दृष्टि से यह मन की भूल स्वभाविक होती है। जानबूझकर तो अधिक लाभ होने की ही दशा में ध्यान से उड़ा दी जाती है। वह भी मिस्टेक की मिस्टेक मन की भूल है। समझ लेना चाहिए। मिस्टेक को मिस्टेक समझा जाय। मन को सावधान रखा जाय।

४५. गंगा-तन धर्म- मन शुद्धि

मानव मानस आध्यात्म, आस्था, श्रद्धा, विश्वास, धर्म, कर्त्तव्य, संयम, उपासना, शाधना, पाठ, प्रार्थना, वृत, उपवास, संकल्प, त्योहार, कथा, कीर्तन, दान, तीर्थ सेवन, स्नान, जल सेवन, चरणामृत, प्रसाद, तिलक, मांगलिक चिन्ह, ध्वजा, चोला, चुनरी आदि आदि धर्म धारण धारणा मन संतुष्ट शुद्धि के मार्ग है। आत्मदेव तन और मन का अधिष्टता है। वह संतुष्ट, सब संतुष्ट, सब ठीक तन स्वस्थ मन स्वच्छ। आस्था, श्रद्धा, विश्वास में बाधा तो तन रुग्ण मन मलीन माना जाता है। कहा जाता है कि गंगा स्नान पाप धुले तन स्वच्छ। धर्म पालन से मन शुद्धि। यह मन मानसी मानव-मानवीय ऐसी ईश्वरीय व्यवस्था है कि उसकी ओर से कोई भी कितना भी लाभ उठाने से वंचित नहीं रहता है।

गायत्री ब्रह्मशक्ति सृष्टि की अधिष्टात्री और गायत्री महामंत्र सबसे छोटा और और बड़ा धर्मशास्त्र है, जिसके एक एक अक्षर से तन और मन की शुद्धि होती है। आध्यात्म के तादात्म्य से मानव जीवन धन्य होता है। इसी प्रकार गंगा जल सृष्टि के सभी जलाशयों और जल प्रवाहित नदी नाले झरने आदि में गुण विशेषताओं के कारण प्रमुख है। गंगाजल की विशेषताओं के कारण खोजने में विज्ञान हार चुका है। धर्म धारण की मर्यादा के सामने विज्ञान घुटने टेक चुका है। मर्यादाओं का पालन कर्मकाण्डों की चपेट में करना ही पड़ता है विज्ञान ईश्वर के स्थान पर नेचर (प्रकृति) को मानता है। तो धर्म आस्था श्रद्धा विश्वास में इतना गहराई से मन पर छाया हुआ है कि धर्म धारण के बिना मन शुद्धि ही नहीं होती है। इसे अन्ध विश्वास भक्ति कह दिया जाय किन्तु विज्ञान की नजर में धर्म धारण और नैतिकता कुछ नहीं है यह भी सही नहीं है। केवल अपनी संतुष्टि भी सब कुछ नहीं है। कर्त्तव्य तो सबके प्रति निभाना ही पड़ता बहू कितनी भी समझदार हो उसे पारिवारिक आदर्श में रहना ही उसकी मर्यादा है। बेटा कितना भी बदतमीज हो। दाह क्रिया कपाल क्रिया वही करता है।

श्राद्ध तर्पण पिण्डदान उसी का लगता है। परिवार को पूर्वजों के ऋण से वही मुक्ति दिलाता है। अस्थि प्रवाह गंगा जल ही सम्हालता है। पुरखों को वह तारता है। यदि गंगाजल में यह विशेषता नहीं होती तो गंगा नदी अस्थियों से भर जाती है। गंगाजल उन अस्थियों को गलाकर समा लेती है। गंगाजल सृष्टि का एक अनोखा अपना एक अकेला ही स्वरूप है। गंगाजल में डुबकी तन और मन को धन्य कर देती है। सिंघस्थ प्रमाण है। देश विदेश कही भी हो गंगाजल वहाँ भी प्रभाव दिखाता ही है। आध्यात्म से जुड़े हर महापुरुष ने गंगाजल को ग्रहण किया है। हिमालय में तपा है। भारत के तीर्थ सेवन किया है। कर्म आस्था से तन मन को शुद्ध किया है। हमारा प्रत्यक्ष अनुभव है कि धर्म आस्था संतुष्टि गंगाजल सेवन की अन्य किसी से करना संभव नहीं है। गंगाजल ब्रह्मकलश के चमत्कार रामबाण सिद्ध होते हैं। जल को जीवन का आधार माना जाता है। गंगा अपनी स्वभाविक विशेषता के कारण सर्वोपरी है। नदी नाले का जब गंगा में मिलकर गंगा जल बन जाता है। किन्तु समुद्र गंगा को मिलाकर गंगा नहीं बनता है। मान्य मान्यता है कि हर कर्मकाण्ड में गंगा भाव से जल का उपयोग किया जाता है। हमने तो प्रत्यक्ष बहुत अच्छी तरह अनेक बार देखा है कि गंगा में खड़े होकर पानी पीते थक जाएंगे लेकिन हाजमे का अंदाज नहीं लग पाता है। हर मौसम में गंगा जल स्थान की अपनी ऐसी तासीर है कि अखरता ही नहीं है। गंगा जल कभी खराब नहीं होता है। हमने तो यह भी देखा है कि गंगाजल उमगता हैं। गंगा स्नान से अनहोनी के बाद स्नान करने से ऐसी स्फूर्ति आती है कि शब्दों में कहा नहीं जा सकता है। गंगा।किनारे रहवासी आस्था की कमी, अनावश्यक लाभ उठाने की दूषित भाव भावना और स्वभाविक भूल भुलावा दैनिक जीवन की व्यवस्तता के कारण विशेषताओं का अहसास नहीं कर पाते हैं। स्थान विशेषता का भाव ही उनका समाप्त हो जाता है। गंगा जल तन और मन संतुष्टि के लिए सर्वश्रेष्ठ है। विज्ञान गंगा जल की विशेषता को नकार नहीं पाया है। गंगाजल का प्रभाव तन और मन पर अकथनीय है। बस इतना कहना ही पर्याप्त है।

शास्त्र पढ़कर, बौद्धिक सुनकर, आयोजनों में कर्मकाण्डों से प्रेरण लेकर संवादों से समझकर, चिन्तन मनन से निष्कर्ष निकालकर आदि सभी प्रकार से ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद भी जो व्यवहारिक अनुभव से सीख सिखावन, कर्त्तव्य अकृष्टता, नित्य दिनचर्या आदि दृष्टिकोणों देख जिया जाय। आचरण की संस्कारिता स्वीकारना ही पड़ेगा। हम धर्म सम्प्रदाय की बात नहीं कर रहे हैं। आशय है अच्छा करने के प्रति झुकना अवश्य पड़ता है। यह अच्छा करना, अच्छा चाहना, परस्पर अपना महत्व रखता है। इससे हटकर धर्म होता ही नहीं है। सभी भाव - भावना कर्मकृत्य क्रिया कर्म तौर तरीके, कर्मकाण्ड के विधि विधान धर्म पालन ही है, जिनमें अच्छाई अपने फसन्द की होती है। तो बुराई अपनी नापसन्दगी होती है। यह संकुचितता है। धर्म तो ईश्वर आस्था के साथ है। नहीं तो धर्म है ही नहीं। उसे कैसे क्या किसके प्रति पालन किया जाय होगा ही नहीं। ईश्वर है तो धर्म है। धर्म है तो सब है। धर्म सार्वजनिक होता है। वह किसी एक का नहीं है। ना ही किसी एक के लिए हैं। सबका है सबके लिए हैं। ईश्वर अक्षर ॐ है। स्वास्तिक (卐) संकेत चिह्न है। धर्म धार्मिक आयोजनों पीछे जीवन में एक सत्य है। जिसे धर्म नामपालन किया जाता है। धर्म मर्म है दिव्य सत्य शाश्वत सनातन स्वीकारना। सत्य से परे कुछ नहीं है। धर्म है।

मंत्र धर्म भाव पोषक है। स्तुति, प्रार्थना, आरती मंत्र भाव को आस्था दायक पोषक है। नीति, विधि, विधान, प्रणाली मन मानसिक धर्म धारणा है। ईस्वर आस्था में लिप्त हो मन बन्धन मुक्त धर्म की पराकाष्टा है। जीवन मुक्ति मार्ग है। सामान्य इच्छा अनुकूल सबका हितकारक है। मानवीय आध्यात्म, शान्ति, संतुष्टि, विश्वास, आस्था, निष्ठा, समर्पण सभी धर्म धारक सामान्य इच्छा स्वीकृति से मिल पाता है। परिभाषा कैसी भी बना ली जाय उसके तत्व यही होंगे। मानवीय मन शुद्ध होता है तन सक्रिय रहता है आचार संहितायें इससे सहमत हैं। तीर्थाटन, दर्शन, मानमनोती स्थान, सिंहस्थ, देवालय, मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर आदि के पीछे केवल धर्म धारणा है। साकार निराकार ईश्वर

आस्था के स्वरूप मन मान्यता है। यदि धर्म आशय नहीं होता तो मानव मन एक दूसरे के प्रति शुद्ध भी नहीं होता। धर्म धार्मिक मत सम्प्रदाय अपने अपने मान से उस ईश्वर सत्ता के प्रति जवाबदार मन शुद्धि के मार्ग हैं। गंगा तन मन शुद्धि का प्रमाण है।

उपरोक्त विवेचन के बाद यहाँ हम यह कहने से नहीं चूकेंगे कि धर्म धारणा जीवन में ईश्वर आस्था का प्रदर्शक है। मन मानसिक संतुलन का आधार है। सुख, शान्ति, संतोष के साथ जीवन जीने का दीर्घकालिक आधार है। गंगा मानवीय धर्म में तन मन शुद्धि प्रमुख पहलु है। सम्प्रदायवाद से ऊपर उठकर देखा जाय तो संकुचितता की आड़ कही आयेगी ही नहीं। धर्म और गंगा दोनों एक-दूसरे से बढ़कर तन और मन दोनों को शुद्ध करते हैं। दिनचर्या से रात को सोना दिन को कर्म करना, प्रातः जागना, शाम को सोना, प्रातः सायं भोजन करना, सोकर उठने पर और नहाने के बाद शुद्ध भावों का आभास, बड़ों के प्रति सम्मान, छोटों को प्यार, पारिवारिक सम्बन्धों में कतिपय निषेधों को मानना, जीवन जीवनी काल में अच्छे काम करना। यह सब तन मन शुद्धि के कारक हैं। यह सब धर्म नहीं तो क्या है। सब कुछ धर्म धार्मिकता ही तो है, जिससे तन मन को शुद्ध रखा जाता है। आत्मा - प्राण मस्तिष्क बुद्धि बौद्धिक यह तन और मन के संस्थापक है। किन्तु शुद्धि तो गंगा की पवित्रता और धर्म की धारणा ही प्रमुख है। पवित्रता और धारणा को अलग कर दिया जाय तो शुद्धता के कही दर्शन नहीं होंगे। धारणा में पवित्रता और पवित्रता में धारणा दोनों परस्पर आवश्यक है। गंगा और धर्म को तो इनका पर्यायी मान कर कहा जाता है। यदि इन्हें शुद्धता का विपर्यायी कहा जाय तो कोई आधार ही नहीं मिलेगा कि विपर्यायी कहा जा सके और सिद्ध किया जा सके। सारे के सारे मत, विचार, धार्मिक आधार, आचार संहितायें, सिद्धान्त, आदर्श, लक्ष्य, कर्त्तव्य, दया, न्याय, प्रेम, यज्ञ, संस्कार, उपासना, साधना, आराधना, पूजा, पाठ, दर्शन, वंदना, नमस्कार, गुडबाय, थेन्क्यू, सोरी, तौबा तौबा, ईन्शाल्ला

आदि आदि सभी पवित्रता और धारणा के ही उद्बोधक है। जो तन और मन की शान्ति है के एक मात्र कारण हैं। यदि तन मन की शक्ति की आवश्यकता नहीं होती तो इनमें से किसी की भी आवश्यकता कभी भी नहीं होती। यह भी कहा जा सकता है कि जीवन यहाँ वर्तमान तक आकर भी नहीं पहुंचता। वह ईश्वरीय कोई और दूसरी ही व्यवस्था होती।

उपरोक्त से सिद्ध है कि मानवीय जीवन में यह कहा जा सकता है कि तन पवित्र है तो मन शुद्ध है और मन शुद्ध है तो तन को पवित्र है रहना ही पड़ेगा। यही कारण है कि तन ईश्वर द्वारा दिया उपहार है। मन उसका शृंगार है। दोनों को मिलकर ही रहना पड़ता है। असहयोग विरोधी में एक-दूसरे के नहीं हो सकते। इनको हर हालत में मिलकर ही रहना पड़ता है। इनकी शुद्धता का यही राज है। गंगा की पवित्रता धर्म की धारणा को इनकी शुद्धि का कारक कहना पूर्णतः सत्य है। इन दोनों का उदाहरण शुद्धता का द्योतक है। कही से कही अशुद्धता का कारक बन ही नहीं सकता है। तन स्वस्थ, मन स्वच्छ मानवीय सामाजिकता का आधार है। इनकी सभ्यता ही संस्कृति के मानदण्ड निर्धारित करती है। इनकी शुद्धता समग्रता का द्योतक है।

--- * ---* ---* ---

४६. उम्र मन की रियलिटी

मानव मन मानसिकता में बदल बदलाव उम्र मान से होता चला जाता है। जो पुरुष महिला में भिन्नता लिए हुए होता है। ऐसा भी देखने में आता है कि कम उम्र में बौद्धिक क्षमता अधिक और अधिक उम्र में कम भी होता है। वास्तविकता का मालूम तो पूर्ण आयु सौ वर्ष की या जो भी मानकर उस समय की उम्र के समय जो स्थिति होती है वह उसकी वास्तविकता होती है। जन्म के बाद उम्र बढ़ना माना जाता है। दूसरी और जीवित रहने की उम्र के वर्ष कम होने लगते हैं। इसी मान से जीवन - जीवनी मन मस्तिष्क की क्षमता प्रतिभा में बदल बदलाव आते हैं। ईश्वरीय इस विशेष विशेषता का आकलन, विचार किया जाय तो यही प्रायः ज्ञात होगा कि इस लिंकबद्ध क्रम बद्धता दिव्य- सत्य - शाश्वत- सनातन की स्थिति बनी रहती है। जन्म मृत्यु का आवागमन होता रहता है। यदि यह नहीं होता तो एक बार की कसावट सदा बनी रहती तो उसका मन मानसिकता की दृष्टि से कोई औचित्य होता ही नहीं। अनौचित्य सृष्टि की रचना ब्रह्मशक्ति भी संभव करने से सहमत नहीं होती। वनस्पति के पेड़-पौधे, प्राणियों में सभी प्रकार के प्राणी जिनकी उम्र में काफी अन्तर होता है। निर्धारित उम्र की अधिकता पर तो मरना ही पड़ता है। फिर जन्म मरण का क्रम चल पड़ता है। जन्म जीवनी के साथ ही उम्र और अनुभव में प्रभाव नजर आता है। चेतन, अर्धचेतन, अवचेतन, सुपर चेतन प्रभाव विशेष कर दिखता है इससे बौद्धिक तीव्रता, मन की सक्रियता, बौद्धिक प्रतिभा कार्य की क्षमता, शारीरिक शक्ति व्यावहारिक, सभ्यता-सांस्कृतिकता सामाजिक लगाव प्रोढ़ता की दृष्टि से प्रगतिशीलता बनता है। जीवन के अंतिम क्षण तक प्रभाव दृष्टिगत होता है। उम्र मान से शरीर में परिवर्तन पुरुष स्त्री में अपने अपने प्रकार का देखा जाता है। उम्र के जितने वर्ष होते हैं उस स्थिति में मन मानसिकता आदि ही उसकी रियलिटी होती है। सीख - सिखावन, शिक्षण प्रशिक्षण पढ़ाई-लिखाई आदि उम्र एवं कक्षा स्तर मान से होता है। इसी आधार पर अध्यापक एवं प्राध्यापक

की शैक्षणिक प्रतिभा होती है। स्कूल स्तर पर कम प्रतिभा एवं कॉलेज स्तर पर अधिक प्रतिभा का स्टाफ होता है। कोर्स निर्धारण कक्षा मान से होता है, जिससे उन्नति के अच्छे चान्स बनते हैं। यह सब प्रारंभ से उत्कृष्टता की और क्रम चलता है। ऐसा भी अवसर आता है कि मन्दबुद्धि वाले बुद्धिमान होते चले जाते हैं। कुछ ऐसे भी होते हैं कि उम्र मान से बढ़ते है किन्तु बौद्धिक स्तर से वे निम्न स्तर के होते हैं। साधारण स्थिति में तो उम्र मान की कक्षा क्षमता प्रतिभा में वृद्धि ही होती है। जो उस समय की सभ्यता-सांस्कृतिक प्रभाव सोच-विचार क्षमता आदि जो होता है वह ही उस उम्र की रियलिटी होती है।

यदा कदा ऐसा भी होता है कि पिछले जन्म की बाते जब याद होती है तो उम्र मान से अनहोना जैसा लगता है, लेकिन ऐसा भी होता है कि भावी जीवन के विषय में भी बताते रहने की सूझबूझ की स्थिति देखने में आती है। जिस पर हर कोई विश्वास तो करते नहीं है बल्कि बुद्धि हीनता कहकर संतुष्ट हो लिया जाता है। कभी कबाक के असाधारण काम उम्र मान से मेल नहीं खाते हैं। तो वास्तविकता की दृष्टि ईश्वरीय योग कहा जाता है। क्योंकि मानव ने अपने मन से ऐसा नहीं किया होता है। यहाँ यही रियलिटी होती है।

हमने अपनी इस उम्र में मन की बात पुस्तक लेखन से जिन चेप्टरों में जो मेटर लिखा है उससे हमारी मन मानसिकता की क्षमता, प्रतिभा, सोच, विचार, योग्यता, ज्ञान, अनुभव, भविष्य का अनुमान आदि आदि जो कुछ ज्ञान होता है वह सभी हमारी इस उम्र में मन की रियलिटी है। इसी प्रकार हर उम्र में जिस किसी काम के आधार पर देखा परखा जा सकता है वह उस उम्र में उसकी रियलिटी होती है, जिससे सामान्य साधारण, असाधारण, न्यून, उत्कृष्ट आदि का पता चलता है। यह वास्तविकता मनुष्य से मनुष्य, स्थान-स्थान और समय- समय से बदल बदलाव स्थिति से देखने को मिलती हैं। जो उस उम्र की वह रियलिटी होती है। कर्ता की शक्ल सूरत देखने को न मिले। उसका कोई परिचय भी नहीं मिले और काम देखने दिखाने को मिले तो काम पर से उम्र का

अनुमान गलत भी हो जाता है। यह उसकी उम्र नहीं किन्तु काम की रियलिटी ही कही जाएगी।

उम्रमान से रियलिटी विद्यार्थी जीवन में बहुत जल्दी ही पकड़ में में आ जाती है। उम्र पूझते हैं। जन्म दिनांक अर्थ वर्ष से कक्षा का अनुमान तथा कक्षा से उम्र का अनुमान लगभग वास्तविकता के निकट ही लगाया जा सकता है। इसका दूसरा तरीका उनके पहले बच्चे की आयु से विवाह और उम्र का अनुमान लगाया जाता है। उपरोक्त दोनों में के अनुमान अनुमान जो उम्र आधारित उम्र पर आधारित तो होते हैं मन मानसिकता की दृष्टि से भी होते हैं। प्रायः विभिन्न दृष्टिकोण से सर्वेक्षण होते रहते हैं और उनमें स्त्री पुरुष के उम्र मान ग्रुप की मानसिकता का अनुमानतः परिणाम निकाले जाते हैं। इन परिणामों पर से दूसरे पक्ष सामाजिक स्तरण को भी देखा जाता है। इससे उन्नति प्रगति अग्रगामिता या पिछड़ापन या सामान्य आदि दशा का पता चलता है। मन मानसिगकता की स्थिति का अनुमान लगाकर औषधियों का खिलाने, पिलाने, इंजेक्शन आदि की मात्रा को निर्धारित किया जाता है, जिससे मन मानसिकता और शरीर शक्ति पर बुरा प्रभाव नहीं पड़े। रोग निवारण होकर स्वस्थ होने की वास्तविकता पर पहुँचते हैं। बाल श्रमिक, रिटायर होने की,उम्र की स्थिति का अनुमान लगाकर उम्र निर्धारित की जाती है। क्योंकि कार्य क्षमता उम्र मान से प्रभावित होती है। यदि इन मूल मुद्दों को ध्यान से नहीं रखा जाय तो उम्र जहाँ परिपक्वता आती नहीं है और काम का उत्तरदायित्व दे दिया जाता है तो परिणाम सही नहीं मिल पाते हैं। पदाधिकारियों के पद की योग्यता और प्रमोशन के लिए वरिष्ठता उनके पद की उम्र की रियलिटी होती है अथवा उस पद की योग्यता रियलिटी होती है। आदि आदि प्रकार से उम्र की रियलिटी मन मस्तिष्क की अनुमानतः देखी जाती है। चाहिए भी।

उम्रमान से एक बबाल प्रायः स्त्री-पुरुषों में देखा जाता है। वह है कम उम्र बताना और स्मार्टनेस का दिखावा करना। उम्र भले ज्यादा हो किन्तु हरकत

में कम उम्र ग्रुप की हरकतों जैसी दिखाई जाती है। शरीर पर लेपन, कपड़ों की फेशन, डाई, नकली दाँत, आँख पर चश्मा, चाल ढाल में शिथिलता खानपान में पाचन कमी आदि ऐसे कारण होते हैं कि उम्र की वास्तविकता बनावटीपन से छिपाने पर भी छिप नहीं जाती है। बाल, युवा, प्रौढ़, वृद्ध का अंदाज लग ही जाता है। महिलायें प्रायः नादान, बेईमान, अशक्त, बूढ़ा आदि न जाने किन आशय के नामों से पुकारा करती है। कहती है उम्र माँग कर लाये थे। कुछ सक्षम बनने मैं, कुछ सक्रिय होने में, कुछ इंतजार में तो कुछ बर्बाद कर किनारे लगाने में दिन गुजार दिया। अन्त में कम बचा जीवनभर का अनुभव महत्वपूर्ण है और महत्वपूर्ण काम मैं गुजारा जाता है मन मानसिकता का लाभ सिखाने समझाने बताने में जिससे दूसरे उम्र के लोग लाभांवित हो सके। अहसास होता है उम्र की वह सीमा जो रिटायरमेन्ट काल की होती है वह जिसमें अनुभव होता है ज्ञान बुद्धिमन की कहने की कला। किन्तु शक्ति क्षमता के अभाव में उम्र की रियलिटी पेन्शनर सिद्ध कर देती है। उस उम्र में आरजू, नम्रता जो मिला उसमें संतोष करना पड़ता है। सुनना अधिक पड़ता है। कहने के दिन लद जाने से चुप ही रहने में सार लगता है। मन की मन में रखना पड़ती है। मन खोलकर कह नहीं पाते हैं। मन मारना पड़ता है। मनुहार करना पड़ता है। गत समय उम्र के तकाजे में इनकी आवश्यकता ही नहीं थी। यह सब उम्र मान मन की रियलिटी ही तो हैं जो उम्र मान से स्थिति बनकर सामने आती है।

स्कूल में कम उम्र के बच्चे होते हैं उनके कोर्स भी उनके अनुकूल होते हैं। कम पढ़े लिखे अध्यापक ही पदस्थ करते हैं। इसी प्रकार से कॉलेज में युवा तरुण उम्र के विद्यार्थी होते हैं। उनके कोर्स भी कक्षा मान से होते हैं। पढ़ाने वाला स्टाफ भी उच्च प्रतिभा का होता है। यह उम्र मान मन की रियलिटी का ही कारण होता है। अमुक काम के लिए अमुक प्रशिक्षित अथवा योग्यता उस काम के लिए वह रियलिटी होती है, जो उम्र प्रभावित होती है।

उपरोक्त संक्षिप्त विवेचन के आधार पर यही कहा जाना समीचीन है कि जन्म के बाद जैसे जैसे होश वैसे वैसे अगले जीवन मान मन मानसिकता को अपनाया जाय। उम्र बढ़ने की जीवन जीवनी के दिन कम होने की स्थिति में मन की रियलिटी उस उम्र ग्रुप के काम का मन बनाया जाय मन लगाया जाय। बाद में तो मन के हारे हार मन के जीते जीत। हर हाल में मन ठाठ-बाठ पकड़ने का इंतजार रियलिटी की रियलिटी। वाय वाय।

४७. पिता का मन बेटा समझे

बेटा पिता के मन का ख्वाब होता है। वंश वेल की आशा में बेटे को पिता योग्य बनाता है। पिता है तो इंतजार है। बाजार के सब खिलौने अपने हैं। पिता नहीं तो बचपन अनाथ है। माँ बाप की कमी को कोई बाँट नहीं सकता। माँ-बाप के आशीसों को कोई काट नहीं सकता। यह बेटे के मन की आवाज है। माँ-बाप जिसके साथ होते हैं। हजारों हाथ उनके साथ होते है। बेटे की बात को पिता मानता है। पत्नी की फटकार भी सुन लेता है। पिता बनने का सुख वह जानता है। बेटे के भविष्य का नक्शा तैयार करता रहता है। माँ ने ही तो बताया ये पापा हैं। तो क्यों पापा से डटवाती है। माँ जन्म देती है। पिता पहचान देता है। माँ ममता देती है। पिता कुटुम्ब श्रृंखला में वसीयत का स्वामी बनाता है। पिता के मन में बेटा छाया रहता है। तो बेटा पिता की याद में तड़प उठता है। बेटा माँ के पास रहता है। पिता का मन लालायित हो देखा करता है आदि। मन के भाव विचारों को टटोले तो पिता का मन बेटा समझे तब पिता बेटे के के लिए क्या नहीं करना चाहता है। उसका मन हो वह सब स्वीकार कर लेता है। बेटा माँ को जानता है। वहीं तो उसे दूध पिताली और पालती है। खुद गीले में सो उसे सूखे में सुलाती है हलक का गास देती है। बड़ा होने का इंतजार करती है। पालती है। पिता को वह क्या जाने। माँ ने बता दिया तो जाना। मन के उल्लास ने बेटे को एक से दो किया। बेटे को पत्नी का हाथ पकड़ा दिया। बहु को गृहिणी का अधिकार दे दिया। बहु घर की लक्ष्मी बन मालकिन हो गई। पिता ने संतोष किया। बेटे से ज्यादा मुझे अब पोता चाहेगा। लिंक से लिंक जुड़ी दादा का मन पोते पर उमड़ा। अपना मन उठेल दिया। पोते को बुद्धिमान (Talent), प्रतिभाशाली (Wise), सक्षम (Brave), सर्वोत्तम (Nice) कह दिया। पोते को सबसे अच्छा कह दिया। बेटे का नम्बर दूसरा हो गया। पोता भविष्य का आधार है। आँख का तारा है। मन का उजाला है। बेटे ने पिता के मन को टटोला तो वह पोते के पास मिला। पिता की चिन्ता मिटी। बेटे के बेटे को

जवाबदारी मिली। पोता दादा का मन खूब समझता है। दादा का प्यार पोते को सबसे अलग ही मिलता है। वह अपने पापा मम्मी को कह देता है कि दादा से शिकायत कर देगा। दादा डॉट बतायेंगे। तो तुम्हें कौन बचायेगा। वह जानता है दादा उन्हें डाँट सकते हैं। पोता मन की कहता है दादा बात मानते हैं। खूब लाड़ लड़ाते हैं। दादा-दादी संस्कारों के साथ समझाईश देते हैं। पोते को रोज किये काम की डायरी लिखने की आदत डालते हैं। अगले दिन पहिले से निर्धारित करना बताते हैं। नियमित जीवन बिताना सिखाते हैं। फ्रेंडशिप और फ्रेंडशिप रिपेयरिंग के गुर बताते हैं। जन्मदिन मनाओ। गलती छोड़ अच्छा सीखो। दूरियाँ बढ़ाओ मत दूर करो पर्सनालिटी डेवलपमेन्ट दादा सिखाते हैं। मन की बात पूछते है और बताते हैं। पिता को समय नहीं मिलता है। बच्चों की आदत पेरेंट्स की परेशानी नहीं बने। दादा जानते हैं। पोते पोती को प्यार करते हैं।

पिता अपने जीवन में ख्वाहिशों को दबाता रहा बेटे को जाहिर होने नहीं दिया। बेटे की सभी इच्छा पूरी होती रही। पापा के कंधे पर बैठे दुनिया को देखता रहा। पिता के अनमोल प्यार को लेता रहा। पिता के प्यार और सीख के बल पर अपने मन को ढाला। सफलता के पायदान छुए। अपने करियर को पकड़ा। पिता का स्थान ले जवाबदारी का भार उठाने लग गया। पिता समझ गया बेटा व्यस्त हो गया। जवाबदार बन गया। पास बैठ मन की कहने को समय नहीं मिला। बेटे ने मजबूरी बताई। उन्हें समय नहीं है। आपकी बात में दम नहीं है। मानेंगे तो क्या मिलेगा। इधर उधर जाने ले जाने को कहेंगे। समय नहीं है। पर ही करना पड़ती है। छोड़कर आ जाते हैं। आने की वे ही व्यवस्था कर लेते हैं। फोन से बात कर लेते हैं। मिलते हैं तो बोल लेते हैं। मन समझा लेते हैं। समझ में सब आ जाता है। बेटा बहु का हो गया है। पोते पोती से बोल संतोष कर लेते हैं।

जब कभी पिता पुत्र के संबंध में विचार आ जाते हैं। बेचैन कर देते हैं। पिता ने उनके लिए कितनी मुसीबतें उठाई होगी? उन्हें क्या मालूम दादा-दादी

होते तो बतलाते। खैर हम उस स्टेज में आयेंगे तब ही समझने को मिलेगा। रोज समय है ही कहाँ कि पूछे! आज का दिन कैसे निकला आत्मा पुत्र बनकर आती है। वह कभी मरती नहीं है। वंशगत श्रृंखला चलती चली जाती है।

पिता के मन की बात का यह संवाद बेटे की समझ में कितना आया। मालूम नहीं। संवाद हो तो पता लगे। संवाद में विचार, सम्प्रेषण से मन की थाह का पता लगता है। नेत्र दृष्टि कमजोर उम्र का तकाजा अंग विन्यास से कुछ बेटा कहता भी हो तो वह आँख देख नहीं पाती। बुद्धि कमजोर हो गई। समझ नहीं पाती है। चुप रहने के अलावा और बचता ही क्या है समय पर रोटी मिल जाती है। आराम में कोई दखल नहीं है और क्या चाहिए। कुछ नहीं। एक एक को तो इतना भी नहीं मिलता है। क्या वे उनके बेटे-बेटी के माँ-बाप नहीं है, लेकिन उनमें समझ की कमी है। नहीं नहीं। अब कोई किसी की परवाह नहीं करता है। चलो ठीक है। हमारी तो परवाह होती है। यही क्या कम है।

सब का जीवन एक जैसा नहीं बीतता है। कभी मन प्रसन्न है तो कभी अवसाद भी आ जाय तो क्या। गति चक्र है। चलता ही रहता है। इंसान तो और भी खराब होता जा रहा है। समय को दोषी बनाता है। दोषी तो इंसान है, जिसने मन की बात को समझा नहीं। अपनी बात को समझाया तो कई नाराज हो गए। कोई चिन्ता नहीं। जो स्थिति मानव की घुमक्कड़ जीवन आखेट पर आश्रित था। अब वह भागमभाग में लगा है। जाने कहाँ जा रहा है। धन की लालसा उसके मन में बढ़ती चली जा रही है। घर आने का निश्चित नहीं है। समोसे कचोरी या फिर होटल में जहाँ तहाँ खा लिया जाता है। काम में लगे रहते हैं। घरवालों को कह दिया जाता है। हमारा घर आने का इंतजार मत करना। ठीक यही स्थिति पुरुष और स्त्री दोनों ही की है। क्योंकि आजकल महिलायें भी कमाऊ बन चुकी है। उन्हें नये नये अधिकार मिलते ही जा रहे हैं। ये अधिकार परिवार संस्था व्यवस्था को छिन्न-भिन्न ही कर रहे हैं। पुरुष पर उन्हें भरोसा समाप्त हो चुका है। जब ऐसा है तो पुरुष भी निश्चिंत हो गया है। बच्चों की

व्यवस्था होस्टल आदि से कर दी जाती है। किसी के मन में किसी के प्रति कोई लगाव शेष नहीं रह गया है। कमाई की लालसा ने मन की परवाह छोड़ दी है।

मदर्स डे ! फादर्स डे ! आया तो सेलीब्रेशन में शामिल हो गये। हुआ तो सबकी पसन्द के योग्य भाषण दे दिया। तालियाँ बजी अच्छे माता-पिता के साक्षी बन गये।

वर्तमान में संस्कारों को मानते नहीं है। रिश्तों की अहमियत को बताने की फुरसत नहीं है। जिम्मेदारी सिखाने की जिम्मेदारी निभा नहीं पाते हैं। पेरेन्ट की जवाबदारी होने पर भी परिवारजनों की आदतों को बना नहीं पाते हैं। घर का माहौल बिगड़ता जाता है। संस्कार छूटते है। परिवार टूटते हैं।

पहली बार जब वे बेटे के बाप बने थे। तब उनका मन कैसा था और अब कैसा ? अन्तर में जमीन आसमान की दूरी लगती है। जिसे पाटना अब असंभव लगता है। बच्चा आपके प्यार को कितना लेता था ? वह कहता था। पापा जल्दी मत जाओ आई लव यू डैडी। पापा भी कहते थे कि आई लव यू बेटे। और छाती से चिपका लेते थे। समय गया। फादर्स डे पर कोई नई परम्परा डाले तो उसे निभायें। जब परम्परा डली ही नहीं तो किसे निभाये। केवल फोटो, टीवी, इन्टरनेट है। देखकर याद को सान्त्वना दे देते हैं। नई परम्परा का यह भी क्या कम है? मिलना भर नहीं हो पाता है। एक-दूसरे को कहते सुनते तो हैं। बस ठीक है। यह भी क्या कम है। मरेगे तब भी तो सबको छोड़ना पड़ेगा। चलो अच्छा हुआ, बिना छोड़े सब छूट गये।

हमने उपरोक्त विवेचन में स्थिति की परिस्थिति की सभी दशाओं को देखा है। पिता के मन में इतना प्यार होता है कि जो अनमोल है। पिता के मन को बेटा समझे। वर्तमान में डेड (मरा हुआ) मम (स्टेचू) नाम भाव चल पड़े हैं। वैसे ही विचार बनते जा रहे हैं। पिताजी और माताजी का प्रचलन चल जाय तो समाज परिवार व व्यक्ति में आदर्श अवश्य आएंगे। जो हास्यास्पद मखौल

स्थिति बनी है वह मिट जाएगी। लेकिन अब संभव नहीं लगता है। मदर्स डे, फादर्स डे को धूमधाम से शिक्षाप्रद मनाया जाय। तो अच्छे संस्कार डाले जावेंगे। कमाई से समय निकाल कर समय से आना जरूरी है। बच्चों के बीच नित्य संवाद अवश्य किया जाय। बच्चों को बीच परिवार से सभी संबंधियों की अहमन्यता बताई जाय। तो ही आदर सम्मान जगेगा। परिवारजन को अपना समझा जाएगा। परिवार वाले बेटी का पक्ष न ले। उसे परिवार का महत्व बताये। परिवार सुधार में यह सबसे अच्छा तरीका है। हमारा तो यहाँ तक कहना है कि परिवार में संस्कारों की क्लास लगाई जाय। सभी को विचार संवाद का अवसर दिया जाय। परिवार समाज में अपना सम्पर्क बनाए रखें। गलत आदतों के स्थान पर अच्छी बताई जाय। कुरीतियाँ त्यागी जाय। बच्चों को सही सही बताया जाय जिससे वे झूठ बोलना सीखेंगे ही नहीं। बच्चों के सामान्य ज्ञान में सदा वृद्धि हो ऐसे प्रयत्न सबके होने चाहिए। अपने अपने काम को जवाबदारी से किया जाय। परिवार में भेद भाव नहीं किया जाय। परिवार में सामान्य अधिकार समान है। अपने अपने स्तर से रहना व्यवहार करना आवश्यक है, जो एक के लिए है वहीं सबके लिए है। जो सबके लिए है वहीं एक के लिए हो। झूठ, धोखेबाजी, छिपाना, गलत काम को कोई करने की कोशिश भी नहीं करें। हमारा यह अटूट विश्वास हैं कि यदि पिता बेटे के मन की समझ ले और पिता का मन बेटा समझ ले घर परिवार स्वर्ग बन जाएगा। समस्या होगी ही नहीं। पिता जीवन है। शक्ति है। परिवार की मर्यादा है। बेटा समझेगा तो ही यह श्रृंखला आगे बढ़ेगी। वही जनरेशन गेप ढांचे को मिटायेगा। पिता का मन बेटा समझे। श्रृंखला बन जाएगी।

४८. मनमर्जी मन की भड़ास

मन मान जाय तो हर काम मन के हो जाते है। मन का मानना मानसिकता पर निर्भर होता है। मानसिकता में हटकर्मी होती है। तब ही भड़ास निकाली जाती है। मनमर्जी की स्वतंत्रता के सभी काम पूरे हो जाते हैं। पारिवारिकता में आने के पहले के संबंध घनिष्टता की छाप जीवन के हर पड़ाव पर भड़ास में हटधर्मिता झलकती रहती है। जन्म मिले परिवार के संस्कार और उस परिवार के सुप्रीमो का दबाव, लालच काम करता है। मातृ परिवार की राह को प्रधानता दी जाती है। मनमर्जी की स्वाभिमानता में हट को प्रतिष्ठा समझ लिया जाता है। भड़ास फूट पड़ती है। पुरुष वर्ग जवाबदारियों से दबा रहता है पीढ़ी दर पीढ़ी की मान प्रतिष्ठा वंश परम्परा की मर्यादा उसके साथ रहती है। अपने काम के फील्ड को बिगाड़ से बचाना होता है। पुरुष हटधर्मी नहीं कर पाता है। नारी के सामने दशा कुछ ओर ही होती है। ससुराल के सभी लोग नये होते हैं। जिनसे उसका कोई लगाव ही नहीं होता है। उसे सुख सुविधा रक्षा - सुरक्षा की सम्भावना देखकर ही जीवन जीने के लिए विवाहित किया जाता है। ससुराल वंशवृद्धि के लिए स्वीकारता है। स्वार्थ ऐशो आराम मायके वालों की संतुष्टि उसका लक्ष्य बन जाता है। पति की आय पर कब्जा किया जाता है। शौक पूरे करने की स्वतंत्रता को पूरा किया जाता है। मन चाहे सम्बन्धों को पूरा करने के चांस छूटने पर टीस की हटधर्मिता भड़ास में फूटने लग जाती है। ससुराल परिवार के सम्बन्धों के निर्वाह उपेक्षित होने लग जाते हैं। अवहेलना अपमान का अभ्यास हो जाता है। शालीनता के व्यवहार को भुला दिया जाता है। सम्पत्ति पर अपने अधिकार की दृष्टि जमने लग जाती है। मायके वालों के दबाव के सहारे ससुराल परिवार पर हावी होकर रहने की आदत बना ली जाती है। मन में गंदगी आ जाने से मन मर्जी का काम हटधर्मी, उपेक्षा, अपमान, अनादर, निरलज्जता जैसे आदत में आ जाते हैं। पुरुष परिवार सदस्यों के सुख, सुविधा, आवश्यकता पूर्ति के अनुसार चलता है। पीढ़ियों से परिवार परम्परा

का दवाब मानना पड़ता है। उसे नम्र होकर चलना पड़ता है। नारी पुरुष की इन मजबूरियों के कारण उसे कमजोर पाकर अपना रंग जमा बैठती है। वह जो ठान लेती है उसे पूरा कर ही छोड़ती है। मान प्रतिष्ठा, प्रसिद्धि, बदनामी चरित्रहीनता, नैतिकता, उचित-अनुचित कुछ नहीं देखकर मन मर्जी का होना उसके लिए जरूरी हो जाता है। एक की सामान्य स्थिति सबको रास आती है। दूसरे की मनमानी की स्वतंत्रता हटधर्मी से बिगाड़ होने लग जाता है। पुरुष परेशान होकर नारी का यशमेन बन जाता है या फिर शंकनी, डंकनी के स्वरूप मुकाबला करने की हिम्मत करने के बाद भी परास्त होता रहता है। उसके हथकंडे अपने ही पितृ परिवार को खंडित विखंडित और बर्बादी के छोर पर ला देता है या फिर बटवारा, तलाक, विलगता का मार्ग अपनाना पड़ता है।

नारी जब बेटे-बहू, बेटी - जमाई, पोता-पोती, नाति-हो जाती है। तब उस परिवार में सीनियर हो जाती है। तब भले वह अपनी मनमर्जी, हटधर्मी और भड़ास के दुश्परिणामों का असर अब जब उसे दिखता है तो मन ही मन पश्चाताप तो होता ही है। इतने उसके मायके में माता-पिता स्वर्गवासी हो जाते हैं। जो सीनियर होते हैं उनके दिन और दिल ढल जाते हैं। उनकी चलना बंद हो जाती है। भाई भतीजे पीछा छुड़ाने के लिए कतराने लगते हैं। यहाँ तक कि बुलाना, ले जाना भी बंद सा ही हो जाता है। खुशामदी बन कर आवा जाही के अलावा कुछ नहीं होता है।

पुरुष की मनमर्जी की हठधर्मी से असंतोष और बिखराव आता है। बिखराव को समेटा भी जा सकता है, लेकिन नारी की मनमर्जी हठधर्मिता, असंतोष और बिखराव दोनों ही रोके से नहीं रुकते हैं। बिखराव समेटे जाने की संभावना तो समाप्त ही हो जाती है। यदि स्वयं से नारी समझदार हुई तो परिवार स्वर्गिक आनन्ददायी हो जाता है।

पुरुष मन की भड़ास माता-पिता पर निकालता है कि उन्होंने उसके लिए क्या किया। कुछ नहीं? ऐसे बंधन में बाँधा कि जीवनभर रोते परेशान होते ही बीत रहा है। माता-पिता नहीं होते हैं तो बच्चों पर कि तुम्हारे लिए परेशानी उठाता हुँ। सबके बाद में नारी (पत्नी) का नम्बर आता है कि तू ही कलहकारिणी है कि यह सब बिगड़ा है। अब जब परिवार बिखर गया तब तुझे शान्ति हुई। इतने तूना चैन नहीं ली। आदि आदि। इधर नारी सबसे पहिले अपने आदमी पर फिर बच्चों को छोड़ बीच में बोलने वाले की आफत ला देती है। मालिक अफसर वर्कलोड बढ़ाकर, बच्चे रुस मटककर बेटी मायके वालों पर उसे मराचीत कर ससुराल वालों को कुछ कहासुनी और विरोध कराने के लिए दोष मढ़ती है। बड़े-बूढ़े खाना त्यागकर, पत्नी लड़ भिड़कर या अनमोल साधकर, पुरुष काम में लगा रहने की बात कहकर, दुकानदार कम भाव में घटिया चीज देकर, घनीमानी कटौती कर भुगतान करने पर रसोइया तेज मसाला डालकर, परिक्षक कम नम्बर देकर, शिक्षक कोर्स झटपट पूरा कर, शासक बजट कटौती टैक्स रेट बढ़ाकर, बैंक ब्याज कम कर, पुलिस अनदेखा कर आदि आदि अपने अपने प्रकार से मनमर्जी हटधर्मी और भड़ास निकालते हैं।

जीवन में मनमर्जी हटधर्मी और अनावश्यक भड़ास बैर-बुराई, मनमुटाव, सम्पत्ति बटवारा, भेदभाव, अपना तुपना आदि उत्पन्न करती है। पीड़ियाँ बिगड़ जाती है। कानूनी जीत भले हो जाय किन्तु,मौका पाकर बदले की भावना उमड़े बिना नहीं रुकती है।

मनमर्जी, हटधर्मी और भड़ास पर बचाव मुक्ति तभी संभव है, जवाबदारी पर मायके वाले की शै नहीं मिले। नारी स्वयं ससुराल को अपना समझे। उसमें इतनी समझ आ जाय कि ससुराल की हो जाने पर मायके वालों को क्यों लपेटा जाय अपना जीवन तो अब यही बीतना है फिर क्यों मनमानी हठधर्मी की जाय। बच्चे हमको मनमानी करते देखेंगे। तो वे भी मनमानी जब

करेंगे तो हमारी क्या हालत होगी? अच्छी तो होगी ही नहीं। आदि सोच समझकर ही मन को अपना बना लिया जाय तो घर परिवार आनन्द का केन्द्र, नररत्नों की खदान, सुख शान्ति का भंडार, मान सम्मान भलाई का प्रशंसनीय, संगठन, सहयोग, सहकार का उदाहरण, आयोजन प्रयोजनों में परिवारजनों का मान सम्मान प्रतिष्ठा का भागीदार उन्नति में आगे।आदि आदि परिस्थितियाँ अपने आप बनने लग जाती है, लेकिन इस सब के लिए यह भी करना पड़ेगा कि रोटी कपड़ा मकान की पूरी व्यवस्था जुटाई जाय। परिवार में विचार सम्प्रेषण की समझदारी आपस में संवादों की निरंतर परिवार हित का सोच होना जरूरी होता है। परिवार की भलाई बुराई, उन्नति - अवनति आदि सभी अनुकूलता भागीदार परिवार का हर सदस्य समझ ले और अपने आप को अच्छा सिद्ध करने का सदा प्रयास करे तो पूरा परिवार सभ्यता का उदाहरण बन जाता है। मानवी जीवन के ये अटल सूत्र जिन्हें अपनाया जाना चाहिए।

उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि पितृ परिवार में नारी की मनमर्जी और उसकी हटधर्मी से उसकी भड़ास अशान्ति का कारण बनती है। जिसके परिणाम परिवार का बिखराव, अनबन, बटवारा, अपनातुपना आदि की परिस्थिति पैदा होती है। तलाक, फाँसी लगाकर प्राण देना, घर छोड़ कर जाना आदि घटनायें होती है। पुरुष की मनमानी से गरीबी अथवा धनी, अशान्ति अथवा शान्ति आदि परिस्थिति निर्मित होती है।

पुरुष हो या स्त्री मनमर्जी दोनों ही की परिवार के अहित में और घातक होती हैं। मनमर्जी और हटधर्मी से बचने के लिए पुरुष और स्त्री दोनों ही को समझदारी, बुद्धिमानी, दूरदर्शिता के गुण सम्पन्न विचार सहनशीलता, मन की उदारता, बुरा न मानना बात-बात में नाराज न होना आदि गुणों का होना आवश्यक है। नारी अपना परिवार छोड़कर आती है तो उसे पारिवारिकता का व्यवहार, पुरुष को घर चलाने के व्यस्त रहना पड़ता तो उसकी सुख सुविधा ध्यान रखा जाय। परिवार में बड़ों को सम्मान छोटों को दुलार होना चाहिए।

आदि सुखी परिवार के लिए आवश्यक है। मनमर्जी हटधर्मी स्त्री-पुरुष दोनों ही में नहीं होकर अपने प्रति कठोर परिजनों के प्रति निर्मल होना चाहिए। तो परिवार स्वर्गीय मिसाल बन जाएगा। जो हर परिजन को रास आता है। नारकीयता हर परिजन के लिए परेशानी का कारण बन जाती है। पारिवारिक समझ सभी में चाहिए। मनमर्जी हठधर्मी से नफरत पारिवारिक जीवन के लिए आवश्यक है। भड़ास का मुँह बंद हो जाएगा। परिवार में शान्ति का राज कायम हो जाएगा।

४९. ह्यूमन माईन्ड मॉर्डन थिंकिंग

मानव मस्तिष्क का वर्तमान सोच भविष्य का निर्धारण करता है। तो वर्तमान को श्रेयधारी बनाता है। मानव मस्तिष्क बुद्धि बौद्धिक सोच समझ गुणों से सम्पन्न होता है। वह चिन्तन मनन का क्रियाशील पक्ष का द्योतक होता है। पिछले क्रियाशीलता में हुई त्रुटि अथवा शेष कमी पर पश्चाताप करता है। अच्छे सोच को अपनाने के प्रति लालायित रहता है। पश्चाताप के प्रायश्चित में भूल सुधार करता है तो शेष रहे को पूरा करता है। भविष्य सोच के लिए वह तत्पर रहता है। मस्तिष्कीय सोच चाहे वह भूतकाल का हो अथवा भविष्य के लिए हो, सोच का क्रियान्वय होता वर्तमान ही में है। भूत में वह सम्भव नहीं है तो भविष्य के लिए प्रतीक्षारत होता हैं। भूतकाल के पश्चातापित सोच को वर्तमान में पूरा किया जाता है और भविष्य के सोच अर्थात् योजना में शामिल कर दिया जाता है। अथवा वर्तमान में उसे क्रियान्वित कर छोड़ दिया जाता है। समयावधि के क्रम (राउंड) में परिपाटी को दुहराया जाता रहता है वह वर्तमान में तरोताजा प्रेरक बना रहता है। यह ह्यूमन माइंड का मॉर्डन थिंकिंग ही कहा जाता है।

परिपाटी से मेड इन हेवन, वेल इनटाइम डे, शिक्षा दिवस, विज्ञान दिवस प्रौद्योगिक दिवस, फादर्स डे, मदर्स डे महिला दिवस, बाल दिवस, युवा दिवस, वृद्ध दिवस, स्थानीय, राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय का कोई भी दिवस आदि आदि प्रकार के आयोजनों के पीछे उद्देश्य, लक्ष्य का ब्राइट फ्यूचर (उज्जवल भविष्य) मॉडर्न थिंकिंग (वर्तमान सोच) कहा जा सकता है। मानव मस्तिष्क उज्जवल भविष्य का पक्षपाती रहा है। आगामी जीवन के उत्तरोत्तर का भाव इसमें छिपा रहता है। शिक्षा, शोध, काम, व्यवसाय आदि सभी इसी आधार पर निर्भर रहते हैं। इस दिशा में जो त्वरित संतोष, तृप्ति, आनन्द, दीर्घकालिक सुख सुविधा जैसा मानसिक स्थिति पर निर्भर होता है। मन इन्हें बढ़ावा देता है।

शिक्षा में इलिजीव्लिटी टेस्ट पर सब्जेक्ट लाइन निर्धारित होती है। व्यवस्था में काम के विभाग अनुकूल चुनाव होता है। परिवार में वर्तमान जज्बात को स्थान दिया जाता है। व्यवस्था में भावी विकास योजना को बनाया जाता है। इस सबका आशय केवल उज्जवल भविष्य का वर्तमान सोच ही होता है। कोएजूकेशन लिंग परिवर्तन, रेवपेटर्न आदि जैसों में पुरुष स्त्री के अपने अपने के सोच को बढ़ावा दिया जाता है, लेकिन ब्राइट फ्यूचर (उज्जवल भविष्य) में उत्तरोत्तर उन्नति के वर्तमान सोच को देखा जाता है। तो उनमें मानवीय सामाजिकता के अनुकूल सोच को ही स्थान दिया जाना समझा जाता है। सभ्यता को अपनाया जाता है संस्कृति का निर्माण होता चला जाता है। लेकिन वर्तमान में उज्जवल भविष्य दृष्टि से चरित्र निर्माण, व्यवहार, श्रमसाध्य निर्वाह व्यवसाय पर सोच केन्द्रित होता है।

समय बीतता चला जाता है मानवीय मस्तिष्क और मन को सोच ब्राइट फ्यूचर सोच के लिए मॉडर्न थिंकिंग में बदलता चला जाता है। यही तो समय कालिक बदलते पेटर्न की दिशा में चलना होता है चलना भी चाहिए। इसी से उत्तरोत्तर विकास की गति मिलती है। यही होता आया है। ज्ञानवृद्धि अब मुख्य पहलु बन गया है, लेकिन जब सुविधाओं को अधिक महत्व दिया जाय तो आदर्श और संस्कार पीछे छूटते चले जाते हैं। मॉडर्ननेस (मॉर्डनाइजेशन) के नाम खुला जिस्म प्रदर्शन रोल बढ़ता है। स्वछन्दता का यह पाशविक वृत्ति की प्रवृत्ति मानी जाती है। वहाँ मानवीय लाज, शर्म, गोपनीयता, शालीनता जैसे व्यवहार के स्थान होता चला जाता है। मानवीय मॉडर्न सोच में इनकी मर्यादा को कायम रखते हुए मॉडर्न सोच यही तो बनाना होता है। वास्तविकता तो स्वास्थ रक्षा और मन बुद्धि की अनुकूलता की उत्तरोत्तर वृद्धि को स्थान मिलना होता है, लेकिन मानव को शाकाहारी तो क्या मांसाहारी ही नहीं रेव सभ्यता की आदि होना मडर्न थिंकिंग की एडवान्सीब्लिटी मानता है। जो मानवीय सामाजिकरण के विरुद्ध अनुकूलता तो यह है कि जब मानव रोटी, कपड़ा,

मकान की आवश्यकता को समझ चुका हो तो वह इनका उपयोग मानवीय आधार पर करे। खान-पान का चटोरापन, पहनावे में अंग प्रदर्शन, लिबास में गोपनियता विरुद्ध दिखावा आदि मॉडर्न थिंकिंग नहीं हो सकता। वह तो पाशविकता की पराकाष्टा की ओर बढ़ावा है। यह कोई मॉडर्न थिंकिंग है? नहीं। मॉडर्न थिंकिंग तो यह है कि बुद्धि को बौद्धिक मन की उत्कृष्टता इसमें है कि मानव ने जिस समष्टि का निर्माण किया है उसमें वह मनुष्य को मनुष्य से जो भय उत्पन्न होता है वह मिटना चाहिए. रक्षा सुरक्षा के नाम बम, टैंक की किससे किसको आवश्यकता है भ्रम है घर ही पर सबको रहने का अधिकार है। मानव आपस में एक-दूसरे पर अपने स्वार्थ के वशीभूत हो अतिक्रमण कर अधिकार से वंचित नहीं करे। मानवीय हित में वह प्रकृति प्राकृतिक संसाधनों का मानवोचित उपयोग करे। रक्षा सुरक्षा के साथ उनमें यथावृद्धि भी करें। ह्यूमन माइंड मॉडर्न थिंकिंग तो यह है कि मानवीय सोच का हितकारक दृष्टिकोण से ज्ञानवृद्धि जीवन निर्वाह को सकारात्मकता से दूर नहीं जाने दे। सकारात्मक बनाये रखे। यही उसका मुख्य पहलू है।

मानवीय औचित्य सोच तो यह है कि मॉडर्न (वर्तमान) हमेशा मॉडर्न (वर्तमान) अर्थात समयानुसार मानवोचित बना रहे। वही समय, काल, स्थिति परिस्थिति के अनुकूल मानवीय मन का उत्प्रेरक कहा जाएगा। इसी आधार पर मानवीय स्तर का ह्यूमन माइंड ब्राइट फ्यूचर का मॉडर्न थिंकिंग सदा अनुकूल हो। इसी आधार पर उसका निर्णय होना चाहिए। वह मानवीय ब्राइट फ्यूचर का मॉडर्न थिंकिंग यह है कि मानव मन मस्तिष्क अपनी सभ्यता, है आदर्श, शालीनता के अनुकूल वर्तमान सोच को बनाये। इन्ज्वॉय अर्थात मौज मस्ती का आनन्द छोड़ मानवीय गरिमा के अनुकूल संतुष्टि को स्थान दें। मानव के पास मस्तिष्क (बुद्धि, सोच, ज्ञान) मन, सोच-समझ, इच्छा, जिज्ञासा जैसी योग्यता है। जिसे वह मॉडर्न थिंकिंग में लगाये। मानव अब (वर्तमान में) आखेट युग घुमक्कड़ जीवन निर्वाह से काफी सुधर कर आगे बढ़ चुका है। जहाँ उसने

मानवीय सभ्यता की संस्कृति को वृत्ति प्रवृत्ति में ढाल लिया है। जो सामान्य इच्छा (सर्वहितैषी) है। मानव का मॉडर्न सोच सामाजिकता की पराकाष्टा की ओर ले जाने का उसका सोच ही उसका अपना मॉडर्न (वर्तमान) अर्थात सर्वोत्तम कहा जाएगा। यही तो ह्यूमन माइंड का मॉडर्न थिंकिंग है।

मानवीय मॉडर्न थिंकिंग की अनुकूलता सामाजिकरण, सामाजिक स्तरण, सामाजिक सम्बन्ध और सामाजिकता में है। जिसमें भूख, प्यास, सेक्स, परिवार, समाज, स्तरण के बाद रक्षा सुरक्षा सहित भविष्य निर्माण और वर्तमान सुधार में है। मॉडर्न एडवान्स एज में मानव श्रम साध्य जीवन जीता है। वह भूख प्यास और आवश्यकता की पूर्ति के लिए श्रम साध्य धन्धा व्यवसाय, सेक्स के लिए विवाह, सहयोग सहकार के लिए परिवार, सुविधा विकास व्यवस्था के लिए योजनाबद्ध संवैधानिक शासन तंत्र को अपना चुका है। इस एडवांस एज के समय मानव अपनी जिज्ञासा की पूर्ति जिसे शालीनता की गोपनीयता कहा जाता है उसे मॉडर्न थिंकिंग में स्वीकारा जाना चाहिए। मॉडर्न ह्यूमन प्रतिभा एवं विभूतिवान के उच्च शिखर पर पहुँच चुका हैं तो उसका मॉडर्न स्टेन्डर्ड भी वैसा ही हो गया है। जिसके कि लिए मॉडर्न थिंकिंग आवश्यक है। अभी तक देखा ही क्या है कि जिसे पूर्ण कहा जाय। सुख सुविधा के नये नये तरीके और भी एडवांस तरीके के वह जुटाने में अपने मस्तिष्क से व्यस्त है। यही उसकी अच्चाई है। मानव अब खुब समझता है कि उसके हर काम में मानवीय गुणों की विशेषता दिनों दिन विशेष रूप से आती है। उसके इस मॉडर्न सोच से वह ही शिकार होता ही चला जा रहा है। इससे उसका फ्यूचर ब्राइट ही तो होता चला जा रहा है। बुराई उसका स्वार्थ है। जो सामान्य इच्छा सिद्धान्त से पृथक है। वह मॉडर्न थिंकिंग सोच को मेड इन हेवन (स्वर्ग का अवतरण) कहा है। यह सुख सुविधा शान्ति हम सायापन ही तो अपेक्षित है। वेल इन टाईम डे अर्थात वर्तमान समय को अच्छा बनाना अर्थात ज्ञान, विज्ञान, कला कौशल, सुख-सुविधाओं के साधनों की आसान उपलब्धि से आशय है। यह मॉडर्न थिंकिंग

ठीक है। यही तो प्रगति मार्ग है। समष्टि का फैलाव उपयोगिता की उपलब्धि, अज्ञान से ज्ञानी, अभावों से सम्पन्न, जीवन रक्षा की आशान्वित उपलब्धि यह सब मॉडर्न (वर्तमान या आधुनिक) सोच ही है। उत्सव दिवस मनाना मन मानसिकता की दृष्टि से प्रेरित करना ही तो है। जो बहुत अच्छा तरीका है। जिसे अपनाना चाहिए।

हमने बहुत ही संक्षिप्त एवं सांकेतिक रूप से ब्राइट फ्यूचर के लिए ह्यूमन मार्डन थिंकिंग पर विचार व्यक्त किया है। विस्तृत विस्तार विचार जीवनभर करते रहो तो निश्चित अद्भुत पूर्ति होगी है। इस सांकेतिक के अपने अपने माइंड से विस्तार में सोचा समझा जाय। क्रम चलता रहेगा। परिवर्तन आता रहेगा। मानवीय जीवन में व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मानव मस्तिष्क सोच का वर्तमान का आधुनिक जो तरीका अपनाया जाएगा वह अपने काम का प्रतिनिधित्व ही तो होगा। यही ह्यूमन माइंड मॉडर्न थिंकिंग है।

--- * ---* ---* ---

५०. मन तत्पर सफलता उत्तरोत्तर

सफलता की इच्छा मानसिक भूख होती है। जिसे सकारात्मक मस्तिष्क से ही तृप्त किया जाता है। रुचि और मेहनत सफलता की सुनिश्चितता है। सफलता को जहाँ चाह वहाँ राह भी कहा जा सकता है। सफलता के लिए मुसीबत का सामना तो करना भी पड़ता है। प्रेम भी करना पड़ता है। क्षमता को विकसित भी किया जाता है। चतुरता चतुराई भी दिखाई जाती है। रिस्क ली जाती है। आशा पर रहा भी जाता है। सुधार भी किया जाता है। आलस्य को छोड़ा भी जाता है। भगवान भरोसा भी किया जाता है। स्वावलम्बी भी बना जाता है। प्रयत्न प्रयास भी किये जाते हैं मेल मुलाकात करना पड़ती है। सहयोग भी लिया जा सकता है। अभाव का सामना भी करना पड़ता है। गलती सुधार अच्छाई अपनाई जाना भी पड़ता है, विनम्र भी बन जाना पड़ता है। दूसरे का लोहा भी मानना पड़ता है, दूसरे की प्रशंसा भी करना पड़ती है त्याग भी करना पड़ता है। सीखना समझना मानना भी पड़ता है। लॉजीकल रीजनिंग तो यह है कि सफलता के कारण और तरीके खोजे जाय। रुचि और मेहनत के साथ डर और शंका की अपेक्षा साहस और सावधानी की आवश्यकता है। जोखिम भरे काम में हाथ डालने के पहिले अपनी क्षमता अवश्य देख ली जाय। किसी काम को करने में वहकावे अथवा दबाव में नहीं आ पाये। उचित समझकर ही उसे प्रारंभ किया जाय। पहिले उसके लिए आवश्यक बातों को अवश्य समझ लिया जाय। समुचित तैयारी कर ली जाय। यह भी सही है कि मनमाफिक हर समय काम भी नहीं हुआ करता है। जहाँ काम करना होता है वहाँ मन को लगाया जाना चाहिए। ऐसे समय मन और काम में संतुलन बहुत जरूरी है। काम नहीं आता हो। कर सकते हैं, लेकिन शंका भी है तो ऐसे में अनुभवियों से पूछा समझा और सीखा भी जाय। पूँजी रिटर्न को देखते हुए ही लगाई जाय। प्रारंभ में पूँजी लगाना भी पड़ती है। चाहिए भी। रिज्यूम व्यक्त करने की चतुराई के साथ अपना इम्प्रेशन भी पड़ना चाहिए। वाणी संजीदा के साथ आवश्यकता के

अनुकूल होना चाहिए। काम पर नियंत्रण हो। अन्यथा टेंशन उत्पन्न होता है। अपने व्यक्तित्व को संवारों और पर्सनलिटी के लिए वैसा पहनावा, बोलचाल, रहनसहन का स्तर और व्यवहार भी होना चाहिए। कई बातें गोपनीय भी रखी जाती है। किन्तु सचेत भी रहा जाता है। शिक्षा का लक्ष्य व्यक्तित्व को बनाना होता है। मानवीय संस्कार और परम्परा लक्ष्य तक पहुंचने में मन माफिक भी हुआ जाता है। मानवीय संवेदना पर ही मनुष्यता जीवित है। टेक्नोलॉजी तेजी से बदली है ऐसे में इसे टेक्नोलॉजीकल एज तक कह दिया है। तुलनात्मक आदमी की रफ्तार धीमी है। परम्परा और संस्कार को दुरुस्त किया जाय। शिक्षा का लक्ष्य डिग्री और रोजगार तक सीमित होना ठीक नहीं है। सफलता के लिए बदलाव की अनुकूलता आवश्यक है। चिन्तन मनन करना है।

जीवन में सफलता को पाने के लिए माइंड पॉजीटिव हो। तब ही जीवन पॉजीटिव हो पाएगा। इच्छा और जिज्ञासा होना ही चाहिए। तब रुचि और मेहनत करने से आयेगी। मन का क्या कहना ? वह इच्छा पर चलता है। वह सदा तैयार रहता है। कैरियर की लाईन खुद को चुनना पड़ती है। योजना के साथ तत्पर हुआ जाय। तब ही सफलता की ओर बढ़ा जा सकता है। जीवन एक रफ्तार है। इस रफ्तार में कब कितना, कौन से, कैसा काम आ जाय इसलिए जरूरी है कि हर साईड का नॉलेज होना चाहिए। शिक्षा संस्थान रुचि, इच्छा, जिज्ञासा पैदा करने के उत्तम माध्यम है। कोर्स बुक मन मानसिक स्तर के मान से नियत किया जाता है जो अनुकूलता और मेहनत के अभ्यास को बढ़ावा देता है। परिवार परिजन मुखिया को चाहिए कि रुचि देखकर ही शिक्षा संकाय की शिक्षा प्राप्त करवायें। केरियर की लाइन स्वयं को चुनना चाहिए। मन मानसिकता के अनुकूल रुचि होने पर सफलता के आसार बनते हैं। मन होता है। रुचि लगती है। मेहनत करने में मन खूब लगता है। नये नये सुधार सामने आते चले जाते हैं। सफलता की सुनिश्चितता बनी रहती है। मन भावी पहलू मनुष्य को मनुष्यता के स्तर को उठाता है। उन्नति की उत्तरोत्तर स्थिति

बनी रहती है। मनुष्यता तो मानवीय संवेदना पर टिकी है। वर्तमान की आधुनिकता में सामाजिकता के लिए टेक्नोलॉजी बहुत आवश्यक हो गया है। समय के साथ चलने के लिए यह बहुत आवश्यक है। इन्हीं सब स्थिति परिस्थिति के कारण मन की तत्परता ही सफलता का मार्ग बताती है।

कार्यकर्ता को काम का आइडिया मैं विश्वास से काम प्रारंभ किया जाना चाहिए। उत्साहवर्धन, शंका निवारण, रुचि पैदा करने के लिए यह बहुत ही आवश्यक है। एक साथ कई काम करने का मन तो होता है, किये भी जा सकते हैं लेकिन काम की क्वालिटी की ओर अवश्य ध्यान रहे। तभी सफलता के आसार बन पाते हैं। मन में उत्साह भरकर ही काम करना चाहिए. क्रियेटिव सोच और रुचि सफलता को सुनिश्चित बनाती है। सफलता मिलने पर तारीफों को सुनकर हवा में उड़ने के भावों पर संयत और संयम रखें। नहीं तो ऊपर चढ़ने की अपेक्षा गिरने के आसार बनते हैं। सावधानी की हर समय आवश्यकता है। स्टेप बॉय स्टेप सफलता के सोपान अपनाये जाय काश यदि काम असफल होते हैं तो उसमें सुधार भी स्वयं को ही लाना होगा। आइडिया में सुधार तो करते ही रहना चाहिए। कॉम्बीनेशन पावर अपनी ही काम करती है। अत: सफलता के लक्ष्य को ध्यान में रखकर ही बढ़ा जाता है। आइडिया के बेहतरीन होने के साथ और कॉम्बीनेशन और कॉम्बीसिंग पावर चार चांद लगा देता है। हर काम में सम्भावना छिपी रहती है। लेकिन उसकी तलाश अपीन समझ बुद्धि और मन की क्षमता पर निर्भर है। सफलता का राज भी यही है कि उसे विधि (तरीके) से किया जाय। सहयोग सहकार के लिए अपने वालों को साथ लिया जा सकता है। लेकिन उनके हावी होने के पहिले ही सम्हल जाना चाहिए। प्रोत्साहन जीवन को बदल देता है। प्रोत्साहन और सजकता दोनों एक दूसरे के पूरक होते हैं। अतः स्वयं को ही प्रोत्साहित किया जाना उचित है। अपना काम कितना ही अच्छा तो लेकिन मूल्यांकन दूसरे ही करते हैं। स्वयं तो

उत्साही होते हैं। रिस्क को मैनेज करते चले जाना चाहिए। अनदेखी ठीक नहीं है। मन की तत्परता हर तरह और हर हालत में आवश्यक है।

जिन्दगी में बेहतर बनने के लिए संकल्प लिए जाते हैं। उद्देश्य बनाये जाते हैं लक्ष्य की ओर बढ़ा जाता है। संतुष्टि के लिए यह सब बहुत जरूरी है। संतुष्टि के लिए सीखना पढ़ना चाहिए। सीखने पढ़ने की उम्र नहीं होती। हर उम्र उसके लिए उचित है। हेन्डल विद केयर अर्थात सावधानी के करने पर ही सफलता के आसार बनते है हमारा तो यह पूर्ण विश्वास है कि सकारात्मक सोच मानसिक भूख होती हैं। जिसे सकारात्मक मस्तिष्क मन की जिज्ञासा के माध्यम से तृप्त हुआ जाता है मन मस्तिष्क के परस्पर एक होने पर ही सकारात्मक सोच बनता है। जो केरियर के निर्धारण से सफलता के अंतिम छोर तक साधक को पहुँचाता है। जो कुछ किया जाय उसे सकारात्मक सोच के साथ ही किया जाय। ऐसे में मन की तत्परता भी बनती हैं।

मन व्यस्त तो मेहनत सफलता को सुनिश्चित कर देती है। मन के मस्त अर्थात सहमत अर्थात रुचि होने पर काम अच्छा ही होता है। इसके लिए सबसे अच्छा है कि व्यस्त रहा जाय। काम को अदलबदल करते रहने से अरुचि नहीं होती है। समय बर्बादी से बचा जाता है। अपनी योजना के सभी काम पूरे होते चले जाते हैं। बल्कि यह भी होता है कि योजना से अधिक काम ही हो जाते हैं। इस क्रम में सकारात्मक सोच सदा बना रहता है। वर्तमान में कट थ्रोट कॉम्पटिशन होता है। अतः परिस्थिति से अवगत रहा जाय। प्रलोभन और ऊंचे ख्वाबों में एक साथ नहीं फसना चाहिए। गति के साथ प्रगति सर्वोत्तम है।

संक्षिप्त उपरोक्त विवेचना सहित संकेतात्मक रूप से उत्तरोत्तर सफलता प्राप्ति के लक्ष्य की ओर बढ़ने के संकेत दिये हैं। जिनकी सुनिश्चितता मन के तत्पर होने पर ही निर्भर है। मन सदा तत्पर रहता है, लेकिन स्वयं की सोच भी सुनिश्चित होना चाहिए। परिवार मुखिया, विद्यार्थी, उद्योगपति,

श्रमजीवी सेवक, नौकरपेशा, पार्टनर, शेयर होल्डर, स्वामी, नौकर, सहयोग - सहयोगी आदि कोई भी हो सभी को सफलता प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि वह अपने स्वस्थ मस्तिष्क, बौद्धिक सोच, मन को सहमत कर ही अपनी इच्छा और जिज्ञासा की पूर्ति में सफल हो पाएगा। हुआ जाता है। बिना मन मस्तिष्क के सरल से सरल से लेकर कठिन से कठिन काम में सफलता नहीं मिल पाती है। अतः दशा के अनुकूल सकारात्मक सोच बनाकर ही कार्य का प्रारंभ किया जाय। अपने ऊपर विश्वास होना चाहिए। उत्साहवर्धन स्वयं भी संतुष्टि से हुआ जाय। प्रशंसा बहकाना में लिप्त होने के पहिले कइयों बार विचार अवश्य कर लिया जाय। सतत अभ्यास, लगन, तत्परता, सफलता के सोपान प्राप्ति के लिए अति आवश्यक है। सकारात्मक सोच से आधी सफलता तो उसी में छिपी होती है। शेष की पूर्ति अन्य साधनों एवं क्रियात्मकता से संभव संभावना बन ही जाती है। प्रेक्टिकल में आना तो पड़ता है। तब ही सफलता भी प्रेक्टिकल मिलती है।

५१. तनाव मुक्त जीवन जियें

वर्तमान व्यवहारिक जीवन में च्वाइस की चिन्ता में इतनी वैरायटियाँ मस्तिष्क में घर कर गई है कि दैनिक जीवन में मानसिकता तनाव स्थाई समस्या हो गया है। व्यक्ति-व्यक्ति, परिवार जन परिजन, धंधा व्यवसाय, मालिक, मजदूर, अफसर, कर्मचारी आदि कोई भी टेंशन (तनाव एवं चिन्ता) से नहीं बच पाया है। मन तो मन ही है। वह भी कहाँ तक बरदास्त करें। उसे भी समाधान खोजने में हार मानना पड़ जाती है। प्रायः समाधान पसन्द भी नहीं आते हैं। चिंता सताया करती है। तनाव बढ़ जाता है। डिप्रेशन (अवसाद, निरुत्साह) नई समस्या सामने आ जाती है। उदासी, ग्लानि, म्लानता, खिन्नता निरुत्साह, विषाद जैसी स्थिति में मानव आ जाता है कि बौद्धिक मस्तिष्क स्तब्ध हीनता के कारण सोच समझ जैसा कुछ भी समझ मैं नहीं आता है। परिणाम यही निकलता है कि टेंशन दूर नहीं हो पाता है। शान्ति संतोष लगभग समाप्त सा ही नजर आता है। मानसिक विक्षिप्त, अर्ध विक्षिप्त, असंतुष्ट, बदनाम, परेशान से कही अलग प्रकार ही तनाव पैदा हो जाता है कि जीवन जीना नहीं घसीटना ही हो जाता है संतुष्ट जीवन का तो कहना ही क्या ! सुख शान्ति, संतोष से भरापूरा जीवन सबको चाहिए तनाव तो अज्ञान, अभाव और अशक्त से भी उठकर कुछ और ही होता है। नींद नहीं आती है। हार्ट अटैक, लकवा हो जाता है। प्राण शक्ति अधिक व्यय होती है। पारिवारिक कलह पैदा हो जाता है। शारीरिक स्थिति बिगड़ जाती है। हेमरेज हो जाता है। थोड़े में यह कहो कि मानव जीवन निरर्थक हो जाता है। निन्दा, अपमान, बुराई, तिरस्कार को क्रोध से जिनका समाधान भी हो जाता है। परिजन की मृत्यु दुःख मनाकर भूल जाते हैं, लेकिन तनाव इन सबसे ही अलग है। जिससे मानसिक अनेक रोग स्थाई रूप से घर कर लेते हैं। चिन्ता तो धीरेधीरे मिट जाती है। यह तन का रोग तो है जिसका इलाज आसानी से हो जाय। यह मन का रोग है नहीं जो मानसिकता से ही दूर होता है। मानसिकता का प्रमुख उपाय तो शान्ति संतोष को पैदा

करना होता है। इसके लिए चिन्तन अथवा भावना को जाग्रत करना पड़ता है। मनुष्य आस्तिक नास्तिक कैसा भी हो उसे ईश्वर, प्रभु, गॉड, अल्लाह, नेचर कुछ भी कहां उस पर अपना प्रेम, विश्वास, आश्रय, शरण आदि जैसा अपने आपको करना तो होगा। मानव स्वयं से परिवार परिजन से और अपनी सम्पत्ति से सम्बद्ध रहने से मोह लगाव में लिप्त हो जाता है। इससे उसे दुःख होता है। दुःख, चिन्ता, क्रोध, निराशा जब अधिक बढ़ जाते हैं तो मानसिक तनाव का अहसास होता है। घबरा जाते हैं। सोच नहीं पाते हैं। किसी बात का निर्णय नहीं ले पाते हैं। कारण कि मस्तिष्क की शक्ति क्षीण हो जाती है। मौत भी हो जाय तो कोई आश्चर्य नहीं है। धीरे-धीरे मानसिक रोग घर करलेते हैं।

वर्तमान आवागमन की सुविधा के कारण मनुष्य मनुष्य में आपसी सम्पर्क बढ़ गया है। एक-दूसरे पर उनकी संस्कृति का प्रभाव पड़ा है, पड़ता है। भारतीय संस्कृति आध्यात्मवादी है तो पाश्चात्य देशों की विज्ञान वैज्ञानिकीय सभ्यता विकास की जिसमें आध्यात्म को कोई स्थान नहीं है। आपसी समझ की कमी के कारण परिवार परिजनों में जनरेशन गेप अर्थात नई जनरेशन पाश्चात्य सभ्यता को अपनाती जा रही है। जबकि भारतीय संस्कृति का प्रभाव उन पर जमा होता है कि कारण आपसी रिश्तों में खटास पैदा होने से घर परिवार में अशान्त माहौल से तनाव पैदा होने की परिस्थिति बन जाती है। आपसी संवाद बन्द हो जाने से रिश्तों में मतभेद पैदा हो जाते हैं। स्त्री-पुरुष अपनी अपनी टेक पर चलने से सम्बन्ध बिगड़ते हैं। तनाव पैदा हो जाता है। नौकरी करने की लपक सब में जग गई है। ऑफिस का टेंशन घर में आकर उतरता है। मुट्ठी में रेत नहीं ठहर कर फिसलती है। इसी प्रकार से अब जिन्दगी हर पल फिसलती चली जा रही है। अब जीवन जीना क्या काटा जा रहा है। भगवान किसी को नहीं मिला है। न ही किसी ने उसे देखा। ऐसे में पश्चाताप सोच यही है कि भगवान नामक कुछ नहीं है। यह संसार क्यों कैसे चल रहा है। इसके विषय में उनका सोच वहाँ जहाँ पहुँचता ही नहीं है। संसार में मानव ही

ऐसा है कि जो सबके लिए जीता है, काम आता है। वह समय का उपयोग करता है। वह समय से आज आगे हैं। जीवन में जटिलतायें पर्याप्त पैदा हो चुकी है।

वर्तमान में मनुष्य स्वयं खुश रहना स्वयं तै नहीं कर पाता है। उसकी ऐसी परिस्थिति नहीं है कि स्वयं को अच्छी तरह रख सके। वह सच्चे अनुभव से दूर इसलिए है कि वह अपने अन्दर खुशी तलाश नहीं कर पाता है। क्योंकि वह कमाई में लगा रहता है। सबसे बड़ी गलती यह है कि खुशियों के पीछे भागते हैं। आपसी रिश्तों में प्रेम शान्ति की परवाह नहीं करते हैं। जिस काम को करने में आनन्द महसूस करते हैं उसे रोजगार का जरिया नहीं बना पाते हैं। दुःखों की यादगार मन में संजोये रही है। स्वयं के सुख चैन के लिए समय नहीं निकाल पाते हैं। आध्यात्मिक अभ्यास को समय ही नहीं निकाल पाते हैं। ऐसे में वर्तमान को भुला दिया जाता है। इससे खुश रहने की परिस्थिति ही समाप्त हो जाती है। अवसाद खिन्नता पैदा हो जाती है।

तनावी स्थिति मुकाबला करने अर्थात तनाव मुक्त होने के लिए जो प्रयत्न किए जाते हैं उनमें से प्रमुख रूप से इस प्रकार के बिन्दु हो सकते हैं ___

- परमात्म शक्ति को परिवार का मेहमान मानकर परिवार का सदस्य बनने के लिए आह्वान करें। कल्पना करें कि इस परिवार के लोग सभी मेहमान है। आप भी हमारे बनकर पधारें। अर्थात् अपने चिन्तन को प्रभु प्रेम से जोड़ दीजिए तनाव मिट जाएगा।
- जिस प्रकार मेहमानों को प्रणाम करते हैं बस परिवार के। सदस्यों को भी बड़ों का बड़ा सा छोटों को छोटा सा अभिवादन अर्थात सम्मान दे। तनाव मिट जाएगा।

- परिवार में परिवार के सदस्य जो है उनके साथ जैसे को वैसा व्यवहार करें। जैसे पिता को पिता, माता को माता, पति को पति, पत्नी को पत्नी, भाई को भाई आदि। तनाव मिट जाएगा।
- प्रत्येक को अपने व्यवहार में उसको वैसा व्यवहार दीजिए, जैसा आप अपने लिए चाहते हैं। अर्थात् अच्छा। तनाव मिट जाएगा।
- जितना बने सबको सहयोग दीजिए तनाव मिट जाएगा।
- सभी को अपने हृदय में सदभाव दे। तनाव मिट जाएगा।
- सभी में गुण अवगुण होते हैं। अत: तालमेल बैठाइये। तनाव मिट जाएगा।
- आलोचना, अपमान, अनादर, चुगली मत कीजिए। तनाव मिट जाएगा अर्थात न करने योग्य मत कीजिए।
- करने योग्य व्यवहार अवश्य कीजिए जैसे सेवा, सम्मान, आदर सुख सुविधा दे। तनाव मिट जाएगा।
- अपने कर्त्तव्य का पालन करें अधिकार वाली बात छोड़ दीजिए। अधिकार तो कर्त्तव्य पालन करेंगे तो मिल ही जाएगा। तनाव मिट जाएगा।
- आपका व्यवहार प्रेमपूर्वक होगा। रुखापन नहीं होगा। तो जो आपकी कमियाँ होगी वह छिप जाएगी। तनाव मिट जाएगा।

उपरोक्त को संक्षेप में देखा है तो स्पष्ट है कि परिवार में जो सदस्य हैं वे आपस में एक दूसरे से अपने रिश्तों का प्रेम पूर्वक निर्वाह करें। सभी परिवार जन उस परमात्मा के हम सब मेहमान है। मेहमान आपस में प्रेमपूर्वक रहते हैं। हम भी वैसे ही रहें। यदि संभव हो तो आयोजन जैसे सब हिलमिल मनाते हैं। वैसे कभी कभी इनके भी हों। मूल बात यह है कि तनाव उपरोक्त प्रकार के परिजनों से आपसी संबंधों का निर्वाह नहीं होने से तनाव, अशान्ति पैदा होती है परमात्मा की भक्ति भाव पाठ पूजा तिन्तन मनन को मत कीजिए। क्योंकि

वह (परमात्मा) है ही नहीं। तो छोड़िये लेकिन जो परिवार में सदस्य हैं वे तो बड़े छोटे समान सभी प्रकार के हैं। उन्हें उनके अनुसार तो माना जाय। जब सभी एक-दूसरे को सम्मान, प्यार देंगे तो अशान्ति असंतोष रहेगा ही नहीं। तनाव होगा ही नहीं। इसके साथ यह भी किया जा सकता है कि इस संसार को चलाने वाली कोई शक्ति तो है। संसार में हम भी है। तो संसार के मालिक के नाते हम उसके नाम से यह अनुशासन माने कि वह हमारा मुखिया है। हम उसके परिवार परिजन हैं तो हम उसके गुणों का चिन्तन कर अपने अन्दर अहसास करें। उसके मान सम्मान में हम कोई आपस ईर्ष्या भेदभाव नहीं करे। नहीं तो उसका अनुशासन भंग होगा। हम इसके अपराध को क्यों करें। ऐसे में सभी एकदूसरे को ही दिखेंगे। तनाव मिट जाएगा। इन विचारों के उत्पन्न करने के लिए सत्संग, धर्म धार्मिक, नैतिक-सामाजिक आदि जैसे भाव-भावना जन्य आयोजनों में शामिल हो। स्वयं भी आयोजन करे। एक-दूसरे के सम्पर्क में आये। सम्पर्क तोड़कर रहना तनावों को कायम रखना कहलाता है। जब उपरोक्त प्रकार से हमसायापन का व्यवहार होगा तो तनाव होगा ही नहीं। यदि हुआ भी तो मिट जाएगा। तनाव मुक्त जीवन जीने के लिए मिल जाएगा।

--- * ---* ---* ---

५२. निश्चित निश्चिंत मन भावी जीवन

खुशी की ख्वाहिश रिश्तों की तरोताजगी जीवन भोग का आधार है। भावना व्यक्ति की सत्ता है। मन प्राण वाक का अविछिन्न सम्बन्ध है भाव में चित्तवृत्ति, स्वभाव, अभिप्राय, अवस्था, हृदयआत्मा- मन, संवेग, तरंग, रस, हास, परिहास आदि सभी समाहित रहते हैं। दोस्त दोस्ती में आप और हम होते हैं। भोग में जन्म जीवन और मरण होता है। प्राण के द्वारा ही मन में इच्छा शक्ति होती है। जिज्ञासा इच्छा की त्वरितता होती है। शरीर की सारी गतिविधियाँ प्राण से संचालित रहती है। आशा अभिलाषा आकांक्षा निश्चितता के साक्षी है। दूसरी ओर निश्चिंत रहने पर ही जीवन की निश्चितता का विश्वास जमता है। साधना के उपासना पक्ष में ॐ को अक्षर ब्रह्म का प्रतीक, १०८ माला के दाने से मंत्र जाप और १०८ नाम से उसे पुकार सदा सर्वज्ञ कायम रहने के आशय को दर्शाया जाता है। इस प्रकार शक्ति को पुष्ट किया जाकर जीवन जीने की पूर्णता के भावों से विभोर रहा जाता है। सृष्टि आधार पुरुष और प्रकृति है। जो मूल में ब्रह्मशक्ति स्वरूप ब्रह्म और सृष्टि विस्तार में माया उसी का स्वरूप है। कर्त्ता में पुरुष और वह प्रकृति में माया के स्वरूप में विश्व शक्ति की निश्चितता है। उसे आस्था के रूप में लोक व्यवहार में पूजा प्रतीक से माना जाने पर कन्या भोजन आशय से स्वीकारा गया है। कन्या ही के स्वरूप को स्त्री शक्ति से एक एक से बहुत होने के स्वरूप की मान्यता है। जो पदार्थ और ऊर्जा के वैदिक नाम सम्बोधित ब्रह्म और माया होता है। जिसे उपासना के द्वारा आध्यात्म आधार स्वीकारा है। यह ब्रह्म और माया की निश्चितता ही है। मानव शरीर माता भाव की भावना में स्वीकारता है। उसे अक्षर ब्रह्म के रूप में मानकर ही भाषा की लिपि अक्षर प्राण घातक शरीर के ओंठ, कंठ दन्त तालु नासिका के आन्तरिक स्वर और बाहरी सिर कंठ और डर से उच्चारित अर्थ और वाक से दर्शाता है। धैर्यधारणा अर्थात गंभीरता शान्ति से संतुष्ट होकर सामर्थ्यवान मानव उसका स्वरूप (आत्मशक्ति प्राण धारक) मानकर जीवन जीने की

निश्चितता से जीवन काल का समय व्यतीत करता है। जो मन के विभिन्न क्रियाकलाप (चंचलता) से लक्षित होता है। इस धैर्य को प्रतिष्ठा में लेकर विश्वास का इतिहास रचता है। प्रारब्ध नाम से उसे जीवन जीने उपस्थिति बताया जाता है। सम्मान से अनुभूत का आशक्ति के विश्वास कर ज्ञान की संवेदना स्वीकार लिया है। मन मानसिकता जिसे क्रियाकलाप द्वारा प्रकट करता रहता है। स्मरण, दर्शन, दासी, मित्रता, चरण सेवा, आत्मनिवेदन, अर्चना आदि साधना सत्संग आदि से प्रतिष्ठा देता है। आसक्ति के ज्ञान पक्ष में उतार लिया जाता है। यह मन भावी जीवन का आधार उस ब्रह्म की शरीर में प्राण प्रकृति प्राकृतिक के स्वरूप में पारिस्थितिकीय (Sciene of Ecology) के रूप में वही परमात्म शक्ति की निश्चितता कायम है। कायम रहेगी भी। शरीर, प्राण, मन, के स्पंदन निश्चिंतता की साइड से भी उसे ही स्वीकारा है। मानव भ्रान्त स्थिति में आकर ऐसा भी हो जाता है कि उसे कुछ भी नहीं सूझता है। कभी उसे भ्रम हो जाता है, वह जीवन को क्या सोच कर जी रहा है? जो अज्ञान और अंधकार का कारण है। ईर्ष्या द्वेष को मन में बसाकर व्यवहार में प्रकट करता है। कभी वह स्वार्थ, लालच, लोभ में आकर प्रकट करता है। कभी वह जाल फरेब, धोखा, झूठ का सहारा लेकर प्रकट करता है। भ्रान्त, भ्रम, अहंकार, अज्ञान में यही होता है। इस निश्चिंतता को भी निश्चितता अर्थात उस परमात्म शक्ति द्वारा जीवन में विद्यमानता को बताया जाता है। इस प्रकार निश्चितता और निश्चिंतता दोनों ही दृष्टि से जीवन जीने की आशा भी विद्यमानता होती है।

मानव ने अपने जीवन को सुख चैन के वैभव को समष्टि में प्रकट कर उसके सरंजाम जुटा लिए हैं जिससे उसका रहन सहन का स्तर लक्षित होने लगा है। सामूहिकता के पक्ष यही सामाजिक जीवन में मानव को सर्वश्रेष्ठ प्राणी स्वीकार लिया है।

मानव ने अपने आप को परिवार के स्वरूप में बदल लिया है। वह धन सम्पत्ति का स्वामी बन गया है। पारिवारिक संगठन से अपने जीवन को सुखी

सभ्य होने का स्वरूप दर्शाता है। व्यवस्था में शासन प्रणाली को अपना लिया है। नागरिकता के नियम उसने बनाकर पालन किये। नागरिकता के अधिकार प्राप्ति के अन्तर्गत उसका मानव जीवन नियमित हो गया है। नीति निर्देश के मूल तत्वों के आधार पर व्यवस्था (शासन) से मानव जीवन सुसंचालित होने से निश्चिंतता कायम का स्वरूप अपना लिया गया।

उस परम शक्ति परमात्मा ने मानव को सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ बनाकर जीवन जीने को एक प्रकार से अधिकृत कर दिया है। मन की बात इस पुस्तक के विभिन्न अध्यायों में हमने इसी स्थिति को स्पष्ट किया है। यह ब्रह्मशक्ति परमात्मा शक्ति ही का प्रत्यक्ष है कि मानव जीवन के उतार चढ़ाव में मन की विभिन्न चंचलता को अहसास करता है।

मानवीय जीवन में दोस्त दोस्ती के रिश्ते नाते जिन्दगी के आधार बन गये हैं। मानव ने अपने जीवन में पति-पत्नि के रिश्ते नाते को स्वीकारा। तरोताजा रखने के प्रयास में विभिन्न प्रकार के आचरण व्यवहार को उसे नियमित बनाया। जीवन हँसी खुशी के साथ व्यतीत हो उसकी ख्वाहिश रही कि व्यक्ति किस खुशी को चाहता है। उसकी परिभाषा वह स्वयं बनाये। परिभाषा के तत्वों में कमी न आये। तभी लक्ष्य की ओर बढ़ा जा सकेगा। तब देखे जीवन कितना मजेदार है। उसमें गुणों का विकास करें। वांछित चाहत पर विचारे। गलतियों को स्वीकारे। सच्चे हमसफर जीवन में अपने रिश्तों को स्वीकारें। एक-दूसरे पर विश्वास करें। परस्पर जीवन व्यतीत करने के समय में से समय निकालकर आपस में चर्चा करें। रिश्तों में संवाद आवश्यक है। सलाह लेना देना चाहिए, जिससे जनरेशन गेप पैदा ही न हो। दरकते रिश्तों की स्थिति को समझा जाय। बाहरी संस्कृति की नकल में अक्ल लगाई जाय। अपनी संस्कृति को धारण करे। परिवार में हर रिश्ता जरूरी होता है। उसे उसी गरिमा के साथ निभाया जाय।

प्रश्न ऐसे ही उत्पन्न होते हैं कि उनके समाधान में उलझन होती है। वहाँ विवेक का सहारा लिया जाय। समाधान निकल आएगा। भगवान अस्तित्व शरीर रूप में मिले तब होगा, आवश्यक नहीं। उसके शरीर को समझें। वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड है। उस ब्रह्माण्ड में मानव अकेला ऐसा प्राणी है कि जो अन्य जीवधारियों के पास नहीं है। उसके अस्तित्व को नेचर के रूप में स्वीकारते हैं। मानव अपने शरीर पाई जाने वाली विशेषता पर विचार करें तो मालूम होगा कि वह अन्य प्राणियों से सर्वश्रेष्ठ है? परमात्मा ने अपने अस्तित्व के सभी गुणों को मानवीय जीवन में इस प्रकार स्थापित कर दिया कि मानव शरीर उन विशेषताओं से ओत-प्रोत है। विशेषताओं को समझा जाय। परस्पर मानव जिन दूरियों को बढ़ा बैठा है दूर करें। सहयोग सहकार से रहे मन मानने को तैयार है। उसे मनाये रखें। सब ठीक हो जाएगा।

उपरोक्त को हमने संक्षेप में व्यक्त किया है। हो सकता है स्पष्ट होने स्पष्ट करने में भूल हो सकती है। समवेत रूप से यही समझा जाय कि मानव जीवन में जो शारीरिक मानसिक दृष्टि से विशेषतायें हैं। सभी परमात्मा (ब्रह्म - ब्रह्मा) के स्वरूप में ही है। उन्हें मन के द्वारा स्पष्ट करवाया जाता है। इस मन के स्पष्टीकरण में प्राण तत्व के रूप में उसका अस्तित्व झलकता है। वाक द्वारा मन अपनी बात स्पष्ट तो करता है साथ ही सम्प्रेषण के वह शारीरिक विभिन्न अंगों के संकेत से भी व्यक्त किया जाता है। इन सब को मन की बात ही हमने विभिन्न दृष्टिकोण से कहा है। समझा है। वह निश्चितता और निश्चिंतता मानवीय जीवन का आधार स्वीकार है। जीवन की खुशी की ख्वाहिश को तरोताजा रूप से प्रकट करने का माध्यम मन की बात नाम से व्यक्त किया है, जिसका औचित्य मानव जीवन में बना रहे। मन की बात कहने का आशय सफल सिद्ध होता है। जीवन हँसी खुशी का जिया जाय, यह मन की प्रसन्नता है।

और तो और मानव ने अपने ज्ञान विज्ञान कला के सहारे जीवन की सभी प्रकार की सुविधाओं को जुटा लिया है। ईश्वरीय रचना सृष्टि के समानान्तर

समष्टि की रचना कर डाली है। जीवन की निश्चितता की निश्चिंतता और हो गई। अब वह अज्ञानी हो ज्ञानी विज्ञानी कलाकार प्रौद्योगिकीय आदि हो गया। विनिमय के साधन विधियों से अभावों को दूर करने के तरीकों को अपना लिया। बौद्धिक शक्ति क्षमता से शक्तिशाली मशीनों और उपकरणों से वह कमजोर नहीं होकर शक्तिशाली हो गया। आशय यही सिद्ध हुआ कि समष्टि का नया स्वरूप सुख सुविधाओं की ओर से वह भौतिकीय रूप से और सम्पन्न हो गया। निश्चितता और निश्चिंतता की दृष्टि से मानव अब सृष्टि का मालिक होकर सुखी जीवन जी रहा है। वह अपने कारनामों से भी परेशानी का अहसास करता हो किन्तु ईश्वरीय वरद वरदान उसे इतने फलीभूत हो चुके है कि वह निश्चित और निश्चिंत है।

--- * ---* ---* ---

५३. आकर्षण - विकर्षण एवं प्रहार

मानव ओजस तेजस प्राण है। उसने जीवन निर्वाह के अनेकों ऐसे तौर तरीके खोज निकाले हैं कि सिद्धियाँ उसके सामने तत्परता से आ खड़ी हो जाती है। वह अपने तरीकों से उपासना साधना,मंत्र-तंत्र सिद्धि, प्राणायाम, योग, समाधि, वशीकरण, प्रहार भविष्यवाणी, वरदान, अभिषाप, आकर्षण - विकर्षण आदि अपनी आत्मिक के प्राज्ञिक पूर्व शरीर को प्राण विद्युतीय प्रभावों से सफलता पा लेता है। ज्ञान, कला, विज्ञान, धर्म, दर्शन को वाक, लेखन चित्रचित्रण, प्रत्यक्ष-परोक्ष, अंगविन्यास संकेत से मन के भावों को प्रकट करता है। मानव को यह सब ईश्वर प्रदत्त है। तभी तो उसे परमात्मा शक्ति का उत्तराधिकारी कहा जाता है। प्राणी मात्र में मानव ही सफल हो पाया कि वह समष्टि का निर्माता एवं विकासकर्ता भी कहा जाता है। वह अपने बनाये उपासना की साधनाओं के विधि विधान का पालन कर विभिन्न प्रकार की सिद्धियाँ भी प्राप्त करता है। मन मानसिकता से विभिन्न प्रकार से अपने जीवन में स्थिति परिस्थितियों को उत्पन्न करता है। मुकाबला करता है, जिनकी कि अन्य अध्यायों में वर्णन किया जा चुका है।

प्रत्येक मंत्र के शब्दों में अपने अपने मान से शक्ति निहित होती है गायत्री महामंत्र उच्चारण में एक-एक शब्द शह शरीर के विभिन्न स्थानों के बल्व चमक उठते हैं। मंत्रोच्चारण ध्वनि से गायें दूध देते वक्त लीन हो जाती है। साँप पुंगी ध्वनि से फन उठा बैठता है। वीणा की ध्वनि से हिरण सम्मोहित हो उठता है। चन्द्रमा से सम्मोहित सागर की लहरें ज्वार के रूप में लपक उठती है। लोहा चुम्बक से सम्मोहित हो आकर्षित हो उठता है। कृष्ण बांसुरी की धुन से गोपियाँ सम्मोहित हो उठती है। मानव सम्मोहित क्रिया से किसी को भी आकर्षित कर सकता है। बाजीगरी और नजर चुरा कर करतब के चमत्कार दिखाना बहुत साधारण बात है। मानव की यह अद्भुत शक्ति ही है कि वाक कला से चिन्तन

द्वारा प्रहार कर सम्मोहित कर लेता है। ऐसे में नशीली वस्तु से चेतना मस्तिष्क को शिथिल कर भ्रम में डालने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती है। मानव सम्मोहन क्रिया से किसी अमुक वस्तु के सहारे अपनी मानसिकता के मनन चिन्तन से जो प्रहार करता है उसका सीधा प्रभाव जा पड़ता है। मारण प्रहार (मूढ़) इसी विधि से होता है। मानसिकता सम्मोहित हो उठती है। चेतना में हक्का वक्का पन उत्पन्न हो जाता है। सम्मोहित क्रिया से अभिमंत्रित यंत्र बनाये जाते हैं। अभिमंत्रित वस्तु खिलाकर स्पर्श कराकर उड़ाकर, सम्मोहन क्रिया से वार किये जाते हैं। टोना-टोटका किये जाते हैं। झाड़ा- फूँकी की जाती है। मारण प्रहार किया जाता है। यही तो तान्त्रिकीय प्रयोग होते हैं। इसे ओघड़ विद्या भी कहते हैं। प्रहारकर्त्ता अपने मन मस्तिष्क विचारों को शब्द शक्ति से प्रभावी बना लेता है कि विचार भाव का प्रहार मारण या सम्मोहन मे हो उठता है।

यह सिद्धियाँ हर एक मनुष्य को प्राप्त नहीं हो पाती है। बिरले ही को प्राप्त होती है। उन्हें भी इन्हें सिद्ध करना पड़ता है। दूसरे शब्दों में शक्ति ही शरीर का चयन करती है। उसे ही वह प्राप्त होता है। सन्तति से सन्तति में इसका क्रम भी चलता है, लेकिन विद्या को सिखाना पड़ता है। सिद्ध कराया जाता है। मन मस्तिष्क में वैसे ही संस्कार पैदा करवाये जाते हैं। अभ्यास से विधि को अपनाना पड़ता है। शब्द क्रिया से भाव उढेले जाते हैं।

पूजा, पाठ, उपासना, साधना, मंत्रदीक्षा, संस्कार, रक्षाकवच विशेषकर तामसी विद्या के अपने अपने प्रकार होते हैं। जिनका प्रयोग मारण, सम्मोहन आदि में किया जाता है। ईश्वरोपासना. मानसिक चिन्तन, मंत्र चिन्तन, झाड़ा - फूँकी यह जब सम्मोहन के ही रूप होते हैं। देवी देवता के याजक और उपासक को भाव आते हैं जहाँ मनोकामना पूर्ति के लिए याचकगण जाते हैं। वे उनसे लाभांवित होने का आभास करते हैं।

मनोविज्ञान चेतन, अर्धचेतन, अवचेतन, सुपरचेतन मस्तिष्क क्रिया की दशा को बताते हैं। उधर आध्यात्म स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण

शरीर दशा को बताते हैं। साइंस इसी को एकाग्रता (Concentration of mind) कहा करते हैं। ओघड़ विद्या का यह मन मस्तिष्क चिन्तन की एकाग्रता का ही प्रभाव है। अथवा उत्तेजनात्मक वह स्थिति है जब जिसे मनो भावोन्मुख होकर शक्ति को जगाकर उपयोग किया जाता है। दूसरे शब्दों में अपनी श्रद्धा से उत्पन्न उस तंत्र तान्त्रिकी शक्ति के सानिध्य में आकर मिला प्रभाव है कि वे प्रसन्न होकर कृपा करते हैं। इतना अवश्य है कि तान्त्रिकी विद्या सिद्धि में आकर्षण, सम्मोहन आदि जैसी विशेषता अवश्य है। झाड़ा-फूँकी, ढोक-बिनती, स्तुति प्रार्थना, दर्शन-मंत्रोच्चारण आदि सभी प्रकार के अपने रूप ही तो है। जिन्हें मानव अपनाता है ॥ दुआ, बददुआ, श्राप, वरदान, इसी के प्रतिफल से उत्पन्न मनोभावों के उदगार है।

नवरात्राओं के समय नोरता बैठते हैं। रतजगा करते हैं। भेंट गाते हैं। साधक शक्ति सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं। बैठक करते हैं। भाव आते हैं। इन दिनों तंत्र साधनायें सिद्ध की जाती है आदि। पाठ, पूजा, साधना विधान में मंत्रोच्चार से क्रिया कर्म, होम, आहुति के कर्मकाण्ड किये जाते हैं। विभिन्न वस्तुओं का उपयोग किया जाता है। रक्षा सूत्र, ताबीज, गंडे, नाड़ा तैयार किये जाते हैं। विशेष वस्त्र पहने जाते हैं। तिलक लगाया जाता है। व्रत उपवास किये जाते हैं। खानपान में उनके लायक ही का भोजन किया जाता है। संकल्प सूत्र बाँधा जाता है। लॉकेट ताबीज पहने जाते हैं। नग की अंगूठी हाथ में कड़ा आदि पहना जाता है। माँग भरी जाती है। गहने पहने जाते हैं। शरीर रक्षा सौन्दर्य निखार के अतिरिक्त विचार जाप तो आकर्षण के ही सब तौर तरीके है। जो अपनाये जाते हैं। अपनी कल्पना के देवी देवताओं के रूप चित्र मूर्ति चिह्न स्थापित कर शक्ति जागृत की जाती है। उनसे प्रेरणा का आकर्षण सब करवाता है। मंदिर, मसजिद, गिरिजाघर थान, थानक आदि स्थान मानव अपनी मनोकामना पूर्ति के सभी काम किये जाते हैं।

तन्त्र तान्त्रिक क्रिया विधि प्राय: हर एक कोई न तो अपनाता है न इस झमेले में साधारण कोई पड़ता है। कुछेक व्यक्ति ही ऐसे होते हैं जो इन तान्त्रिकी क्रिया विधियों को अपनाया करते हैं। उन्हें सिद्धि भी मिली हुई होती है। ऐसे कार्यों के विधि विधान तौर तरीके वस्तुयें व उनका उपयोग भी उस विद्या के अनुकूल होते हैं। आकर्षण, सम्मोहन मारण प्रहार सब इस विद्या में सम्भव है। जिनका की उनके जानकार जानते हैं। सात्विक क्रिया पद्धति से इस प्रकार के कार्य सफल नहीं होते हैं। किन्तु तान्त्रिकी में सभी सम्भव है। जिनसे लाभ भी होते देखे जाते हैं। विभिन्न प्रकार से विधि विधान से अभिलेख आदि इन्हीं विधि विधानों के अनुसार किये जाते हैं। इनकी पूजा विधान में खर्चे भी ज्यादा ही किये जाते हैं। जो साधारण व्यक्ति के वश के नहीं होते हैं। धनिमानी लोग अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए प्रायः इन विधाओं से लाभ उठाया करते हैं।

संक्षेप में हमने केवल परिचयात्मक ही उल्लेख किया है ॥ जबकि इस विद्या के जानकारों के तौर तरीके सब उनके अपने ही प्रकार के होते हैं। उनके अपने सफलता के इस तान्त्रिक विद्या के विधि विधान तौर तरीके अपने अलग और निराले हैं। जिन्हें। सात्विक वाला तो अपना भी नहीं सकता है। यह तान्त्रिकी (ओगड़ विद्या) ऐसा प्रयोग है कि जिसमें भला करने, नुकसान पहुँचाने, मारने, प्रहार करने, दुख तकलीफ में डालने, असफल करने आदि जैसे काम विशेषकर होते हैं। इस विद्या के कर्त्ता अभ्यस्त होते हैं। तब ही तो वे इन कामों को करते हैं। यह कोई बढ़ा-चढ़ाकर कहने वाली बाते, अंधविश्वास, ढोंग, अज्ञान नहीं है, लेकिन तांत्रिकीय ओगड़ विद्या की सफल सफलता ही है। मानव लाभांवित भी होता है। गौरवान्वित भी होता है। अनुष्ठान अभिषेक, मान मनोती, भेंट, चढ़ावा, बलि बलिदान, आकर्षण एवं सम्मोहन निमित्त तौर तरीके छोटे रूप है। प्रहार इन तान्त्रिकी क्रिया के मूल मकसदी रूप है। जो स्वार्थ सिद्धि, परेशानी दूर करने के लिए अपनाये जाते हैं।

वर्तमान मानव वैज्ञानिक भौतिकवाद से तृस्त है। शक्ति संतोष सुख-सुविधा चाहता है। अक्सर इस विद्या के जानकारों का वह अधिक प्रयोग करने लग गया है। आकर्षण विकषर्ण सम्मोहन प्रहार के प्रभावों को अहसासा जाता है। प्रत्यक्ष में वस्तु की भाँति ग्रहण कर नहीं देखा जा सकता है। विश्वास पर यह सब कुछ इसके गुरु की क्रिया विधि पर छोड़ा जाता है। आस्तिक नास्तिक अब इस विद्या के प्रभावों को मानने लगे हैं। यह स्पष्ट है कि इस विद्या से जुड़ने वाला निश्चित है कि अटूट विश्वासी होगा। तब ही तो उस विधि को वह अपनाता है। उसी प्रकार की सफलता भी पाता ही है। यहाँ सामान्य बात के रूप में ही केवल अवगत होने के मान से चर्चा की है। जानकारों की बात अलग है, वे सब जानते हैं। यह सही है कि बिना गुरु के ऐसी विद्या में हाथ डालना ठीक भी नहीं होता है। हमने कई जगह देखा है कि जब भाव आते हैं तो जानकार उन्हें तुरन्त शान्त कर भी देते हैं। जबकि दूसरे लोग तो देखकर ही घबरा जाते हैं। ऐसे करतब प्रायः देखने में आते हैं कि छाती पर हाथी चढ़ा लेते हैं। आग पर खड़े हो जाते हैं लिंग से ट्रक बांध खीच देते हैं। दूध पिलाकर निकाल देते हैं आदि आदि। यह सभी इस विद्या ही के प्रयोग है। सात्विक को इस विद्या से दूर रखा जाता है। गलत उपयोग से इस विद्या से हानि भी हो जाती है। अतः सावधानी रखना आवश्यक है।

--- * ---* ---* ---

५४. कॅरियर नेटवर्किंग

जीवन का सबसे अच्छा समय विद्यार्थी काल होता है। अर्थात जीवन का प्रारम्भिक काल मन मानसिकता एकदम स्वच्छ होती है। मस्तिष्क में विचार धारा प्रवाहित होने लगती है। दूर के सोच को छूने लगती है। पापा-मम्मी, दादा-दादी तो स्कूल नहीं जाते उसे ही क्यों स्कूल भेजा जाता है। आदि विचार आते हैं। पढ़ाई की क्लास और उम्र बढ़ती चली जाती है। विभिन्न प्रकार के प्रश्नोत्तर चलते। रहते हैं। समझ में आने लगता है। मस्तिष्क बुद्धि मन मानसिकता जन्म के साथ मिले हैं। किन्तु जीवन निर्वाह की सीख सिखावन व्यवहार होशियारी जैसों के लिए पढ़ा लिखा जाता है। शिक्षण प्रशिक्षण लेना पड़ता है। समझ आती है। प्रति वर्ष जन्मदिन पर समझाइश मिलती है। विद्या संस्कार और उज्जवल संस्कार से तो सोच समझ आया है कि उन्हें आगे अपनी जवाबदारी निभानी है। संस्कारों से सीखना है। जीवन ठीक बीते ऐसा उन्हें अभी से बनना है। दिनचर्या बना ली जाती है। मन मस्तिष्क में होशियार वालों की बातें। आती है। सभ्य-सभ्यता सीखी जाती। व्यवहार कुशल बना जाता है। कैरियर का नेटवर्किंग तैयार होने लग जाता है।

दिन और रात्रि का निर्माण सततता की क्रम बद्धता है। दिन का दिन में रात का रात में करना ही ठीक है। जीवन का प्रारंभ दिन का प्रारंभ है। खुद को अपडेट यही से किया जाता है। क्रियेटिव ग्रोथ खुद को योग्य बनाता है। परिवार परिजनों के रिश्ते नाते छोटेपन से ही प्रबल सहायक होते हैं। उनके जीवन के अनुभव सुनने उन्हें करते देखते जो समझ में आता है वह बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। स्कूल में टीचर ज्ञान देते हैं। सहपाठियों के साथ व्यवहार सीखा जाता है। दिमागी सोच स्वतः उत्पन्न होता है। मन का सोच बनता है। अनुकूल दिशा की तलाश में लगा रहता है। मन अनुकूल की ओर चलने को अमादा करता है। योग्यता प्रतिभा का उपयोग होना है। जबावदारी का अहसास

होने लगता है। कैरियर समझ में आता है। आसमान के तारे दिखते हैं लेकिन जमीन पर पैर जमा कर चलने को सावधानी भी अहसासी जाती है। मन मस्तिष्क कैरियर खोज में लगा रहता है। नेटवर्किंग प्लान विभिन्न प्रकार के बनते हैं। सम्पूर्ण जीवन निर्वाह पर सोच-समझ चिन्तन मनन होता है। नेटवर्किंग से सही दिशा मिलेगी। विचार आते हैं

- मन मस्तिष्क में अच्छी नेक प्रभावी बातों को स्थान दें अनावश्यक बातों से मन को दूर रखें। दिमाग आवश्यक बातों के लिए खाली रखें।
- समय की पाबन्दी लक्ष्य बना लिया जाय।
- प्रतिभा विकास में बाधा न आय। सोच बनाये रखें।
- भविष्य लक्ष्य मान से समय के साथ चले। अर्थात् खुद को अपटेड बनाये रखें। कैरियर ग्रोथ के लिए जरूरी है वह समय से करें। आलस्य और टालमटोल आज का कल कर लेगें वाली आदत नहीं बन जाये। नित्य का काम नित्य करें आदत बनाये।
- शालीनता विचार और गुण में होती है। जो बोलचाल, व्यवहार से टपकती है। कटुता, व्यंग, मर्यादा विरुद्ध न हो। ध्यान रहे।
- परिवार परिजनों की मर्यादा बनाये रखे। उनके अनुभवों से सीखें इच्छा, जिज्ञासा आवश्यकता को समझे। घर परिवार परम्परा के निर्वाह में कुप्रचलनों के भ्रम को दूर कर अच्छे प्रचलन का ध्यान रखे।
- परिवार का हर सदस्य अपने अनुकूल व्यस्त रहे। पारिवारिक स्थिति में अनुकूलता बनी रहे। सन्तुलन बनाये रखें।
- आय की सीमा में आवश्यकताओं को स्थान दें। बजट बनाकर व्यय करें। आय वृद्धि के उपाय करते रहे।
- जीवन को सुखी सम्पन्न बनाने के प्रति सजग हो जाये। कैरियर नेटवर्किंग के साथ ऐसी ही छोटी छोटी बातों पर विचार के साथ राह

तलासी जाय तो भटक भटकाव गलती करने से प्रारंभ ही से बचा जा सकता है। चिन्तन मनन के साथ कैरियर तलाश का मन बनाया जाय।

- असम्भव कुछ नहीं है। उत्तरोत्तर सोच के साथ काम का मन बनाये
- नॉलेज हमेशा काम आती है। नॉलेज बढ़ाई जाय।
- सफलता का मैनेजमेंट करें। सुधार और परिवर्तन के लिए तैयार रहे।
- सटीक कैरियर चुने। अपने आइडिया पर विश्वास रखे।
- ऑनलाइन कैरियर पर निगाह रखें। बेटर कैरियर खोज करते रहे।
- भावना पर कैरियर डिपेन्ड है। भाव-भावना, सोच-समझ, निश्चिय के साथ निर्णय लें। कैरियर का ऑनलाइन प्रशिक्षण भी लें।
- योग्य, समझदारों के सम्पर्क में रहे। व्यवहार बातचीत से समझ आती है। अतः योग्य अच्छे व्यक्तियों के बीच स्थान बनाये।
- दूसरों के व्यक्तित्व से सीखे। सीखने के योग्य स्वयं को बनाये।
- इच्छित काम की सफलता प्राप्ति की जाय। प्रयत्न जारी रखे।
- कैरियर में रिस्क भी लेनी पड़ती है। अतः सभी प्रकार से सोच समझकर उद्योग धन्धा किया जाय। नुकसान घाटा से बचा जाय।

इस प्रकार से अपना सोच सोचते रहना है और भी कोई विचार हो तो उन पर भी गौर करें। हमारा तो विचार है कि यदि पारिवारिक जॉब है, तो उसमें सुधार करें। बढ़ाये। यदि लाइन बदलना है तो बदली जाय। नये व्यवसाय में जाना है तो उस योग्य बनाकर जाया जा सकता है। पॉजीटिव सोच बनाकर निर्णय लें। उन्नति मार्ग बनाये। कॉम्पीटीशन का समय है। प्रतियोगियों से बचते हुए धंधा व्यवसाय में सुधार उन्नति की जाय। अपनी प्रशंसा सुनकर अहंकार में नहीं आये। ना ही बहकावे में आकर नुकसान आने वाले काम नहीं करें। स्वयं की योग्यता शक्ति सामर्थ्य के अनुसार धंधे में सुधार विकास करते रहे। हार्डब्रीड जॉब स्लेक्ट कर उन्नति करें। अपने पास की जायदाद सम्पन्नता को देखकर धंधे में लापरवाही नहीं करें। आलस्य लापरवाही करेंगे तो नया तो कुछ

होगा नहीं। पास की सम्पन्नता और ठिकाने लग जायगी। अतः बिगाड़ की नोबत नहीं आये सूझबूझ होशियारी के साथ धन्धा व्यवसाय, नौकरी जो भी हो वह सतर्क रहकर करते रहे। कैरियर सुधार के जो नये नये कोर्स चलते हैं। उनको परख के साथ अपने लिए भी अपनाये। अतिरिक्त आय के साधन अपनाये, आय बढ़ाये।

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि वर्तमान में नये नये कोर्स निकल रहे। उनका सीख सिखान का जॉब चुने शिक्षण प्रशिक्षण ले और अपनाये। हमारा अपना कैरियर नेटवर्किंग है। मन मस्तिष्क और हैसियत भी है तो अच्छा व्यवसाय चुने आगे बढ़े। अपने घर के बच्चों को बेटर जॉब की ओर शिक्षित करें। उन्हें अच्छे जॉब में उतारें।

यहाँ हमारा सोच सुझाव यह भी है कि अपने लिए हार्डब्रीड जॉब स्लेक्ट करे। अपना लिया जाय। अपने पास जो भी जमीन जायदाद सम्पत्ति है उसे सुरक्षित रखते हुए अथवा उपयोग करते हुए स्लेक्ट हार्डब्रीड जॉब को अपना लिया जाय। रिस्क तो है, लेकिन सफल हो गये तो अपनी जमीन जायदाद तो और भी बन जाएगी। वर्तमान लाइन तो सुधर जाती है। भावी पीढ़ी को धंधे व्यवसाय में लगाना आसान हो जाएगा। अब केवल साधारण तौर पर ऊंची पढ़ाई डिग्री धारी बनने से काम चलने वाला नहीं है। पढ़ाई के साथ उसे उपयोग में लाया जा सके ऐसा व्यवसाय धंधा नौकरी भी उससे जुड़ा हुआ होना चाहिए। अपना धंधा व्यवसाय ऐसा हो कि पीढ़ी दर पीढ़ी उसे अपनाती चली जाय तो ही उन्नतिशील रहा जा सकता है। छोटी बड़ी जगह कैसी भी हो। शहर ग्राम कैसे भी हो सभी जगह अपने अपने प्रकार की समस्याएं हैं। हम हमारा मन मस्तिष्क इतना योग्य होना चाहिए कि अपने मार्ग में सफलता की कमी नहीं आये। कैरियर नेटवर्किंग में समयानुसार सुधार करते रहना है। सामन्जस बनाये रखना है तो ही प्रगतिशील इस युग में संतुष्ट रहा जा सकता है।

दूर का सोच अभी पकड़ मन की बात समझ।
कैरियर बने सफल होना ऐसी हो समझ ॥

--- * ---* ---* ---

५५. मन की निगाह - आगाह

मन सतर्क होशियार है। वह बुद्धि बौद्धिक से लेकर रक्षा सुरक्षा तक सभी प्रकार के कार्यों के प्रति इतना सावधान रहता है कि एक्शन लेने में देर नहीं करता है। संग संगति में आवश्यतानुसार फिजा हाल बदलने में सफल हो जाता है। वह अदब के प्रति शालीन, मोहब्बत के प्रति प्रेमी, साहस के प्रति बहादुर, डर के प्रति होशियार और हेन्डल विद केयर के प्रति सावधान सदा तैयार रहता है। मजाल है कि वह अपनी ओर से कही किसी भी कार्य में कमी या त्रुटि आ जाय। आती भी है तो वह तुरन्त उसका समाधान भी देता है। तब नहीं तो अब और अब नहीं तो तुरन्त एक्शन लेने में भूल असावधानी, आलस्य देरी नहीं करता है। परिस्थिति वश टालमटोल करने में इतना चतुर है कि उसकी चालाकी को समझना बड़ी टेड़ी खीर है। वह अनुकूल हो या प्रतिकूल हो हर दशा, स्थिति, परिस्थिति पर निगाह रखता है। समय और समय से पहिले जागते हुए, सोते हुए, कार्य करते हुए हर समय आगा-पीछा देखते हुए आगाह करने में कभी भूल नहीं करता है। यह बात अलग है कि अचेतन से अर्धचेतन, अर्धचेतन से चेतन और चेतन से सुपरचेतन की कार्यवाही में कितनी देरी लगे यह स्थान, समयकाल, व्यक्ति की प्रतिभा योग्यता पर निर्भर है। वह अपने स्थूल, सूक्ष्म कारण और महाकारण सभी दशा में प्रारंभ प्रारंभ से अन्त मंजिल छूने और शिखर तक पहुँचाने में कभी भूलचूक देरी नहीं करता है। होना, क्रिया, विधि, तौर तरीका की पालन पूर्ति। यदि कहीं किसी प्रकार की कमी भी है तो वह आगाह करने में कभी भी पक्षपात जैसी स्थिति आने ही नहीं देता है। मन की इसी होशियारी और सावधानी के कारण के होते वह निगाह और आगाह करने के प्रति कर्त्तव्य पालन करने से भूल चूक देरी और अधिकार के अन्दर कभी अति अथवा कमी नहीं रहने देता है और तो और मन सदा कर्त्तव्यों के प्रति आगाह अधिकार के प्रति सहयोगी सहायक बना रहने में सत्य का पालन असत्य का निखार करने कराने में न्यायिक निर्णय में समानता को छोड़ पक्षपात

को फटकने भी नहीं देता है। तब ही तो शरीर शारीरिक कार्य संचालन करने में सभी इन्द्रियां उसकी आज्ञा की प्रतीक्षा में सदा तत्पर रहती है।

सफल सफलता के बदलाव में तृप्ति, संतोष, शान्ति पूर्ति होती रहती है। काश असफलता की दशा बनती है तो मन त्वरित एक्शन लेकर तब चूके को अब की चाहत में तुरन्त बदलाव लाने के प्रति मजबूर कर देता है। कभी गलत हो जाय तो वह आत्म धोखा भी तो स्वीकार कर लेता है। क्योंकि अवसर आने पर वह समय ही ऐसा हो कि स्वयं की ताकत की पहचान में भूल भी हो जाती है। तो वह खुद को दोषी भी स्वीकार कर लेता है। क्योंकि मनुष्य के सामने आध्यात्मिक, दैविक, भौतिक और लौकिक इच्छा जिज्ञासा की मनोदशा होती है कि होनी नहीं होनी के किसी प्रकार के बदलाव में नकारात्मकता का कभी पुट आ भी जाता है तो वह सकारात्मकता के होते दूर भी हो जाता है। यही तो उसकी बुद्धिमत्ता, सावधानी, होशियारी की दृष्टिकोण में समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी की स्थिति परिस्थिति में बदल बदलाव कभी भूल चूक नहीं होती है। सम्पन्नता हो या विपन्नता, विवाद अपवाद आदि कुछ भी कैसा भी हो उसे कोई भय नहीं होता है। ना ही कभी फुसल फुसलाने में वह आता है।

सारा का सारा ब्रह्माण्ड उसकी सृष्टि मनुष्य निर्मित समष्टि सभी तो उस ॐ (ईश्वरात्व) में समाई हुई है। ईश्वरात्व तो दिव्य सत्य शाश्वत और सनातन है। धर्म कर्म उस सृष्टि में मानव मानस का ऐसा प्रकृति प्राकृतिक सम्बन्ध का योग है कि मनुष्य अपने ज्ञान विज्ञान, कला, दर्शन और धर्मधारणा से संकल्पित होकर मन मानसिकता के अधीन धर्म-कर्म कर्म - धर्म में से श्रद्धा आस्था से उसके प्रति समर्पित है। वह बिना किसी दाब - दवाब आतंक डर, मोह, मोहब्बत के अपने अस्तित्व में उससे जुड़ा हुआ है। क्योंकि उसके दिव्य सत्य की शाश्वतता के सामने मानव कुछ भी नहीं कर सकता है। उसकी मान्यता सार्वजनिक है। जो सनातन है। जीव तो आत्म स्वरूप उसी का अंश है। जो

अपने समय को सर्वश्रेष्ठ अवसर मानता है। विभिन्न नामों से आयोजन प्रयोजन के समारोह वह करता है। व्यक्तिगत हो या सामूहिक हो हिम्मत या डर नहीं बल्कि अपनी उसके प्रति मन मानसिकता से बहादुरी के होते डर पर जीत है। जो उसे आगे बढ़ाती रहती है। उम्र अवस्था कुछ भी हो भ्रूण अवस्था के बाद संसार में जन्म से लेकर मृत्यु तक अनेकों गलती करता है। झूठ बोलता है लेकिन उस परमात्म शक्ति की विद्यमानता के प्रति सदा न अलग करता है न अलग कर सकता है। वह शब्द समूह मंत्र (वाक्य या पद) और उसमें भी उस शक्ति के प्रति बीज मंत्र रहस्य को जोड़कर 'अ' से 'क्ष' तक उससे जुड़ा रहता है। पूजा-अर्चना, स्तुति, आरती, प्रार्थना, जप, तप, भेंट, भजन, कीर्तन आदि विभिन्न प्रकार से उसे स्मरण करता है। ढोक, बिनती, दर्शन, दण्डवत प्रणाम करता है आदि। उसके स्वरूप को अपनी मनोदशा के अनुकूल नास्तिक आस्तिक कैसे भी उससे जुड़ा रहता है। मानव मन मानसिकता की कितनी सटीक निगाह है। वह उसका होने और उसे अपना बनाने में सदा गौरवान्वित रहता है।

मानव विकास गति के उस मंच पर आकर स्वयं को पहचाना। मानवीय मानवता की शालीनता में विवाह संस्कार (मैथुनी) प्रथा से परिवार कुटुम्ब समाज के रूप में अस्तित्व बनाये हुए हैं। परिवार का विकसित स्वरूप व्यवस्था (शासन) में आकर मानव की मानवीयता में संयुक्त परिवार से उठकर वृहद परिवार (Larger Family) के स्वरूप को अपना लिया है। उसका स्वरूप वर्तमान एकल परिवार, संयुक्त परिवार, वृहद परिवार से मानव समाज तक की भाव भावना आकर आधुनिकता के इस मानव मानव एक स्वरूप को मान मान्यता देता है। जाति, समाज, धर्म एवं सम्प्रदाय संगठन के आये भटकाव को वह मानने से इंकार कर बैठा है। आधुनिकता के साए में अब मानव मानवीयता के विकास दशा को अपना चुका है। वह जो परमात्मा का अंश आंशिक स्वरूप आत्मा जो उसमें विद्यमान है। सनातनी स्वरूप को उसने मान लिया है। परिवार,

कुटुम्ब, कबीला, समुदाय, उपजाति, जाति, समाज तो उसने पुकार पहचान के नाम सम्बोधन के रूप में भले मान लिए है, लेकिन वह एक पिता उस ब्रह्म की संतान स्वीकारता है। तब ही तो मानव मन की निगाह में वह आगाह मानवता दिखती है। मन मानसिकता की निगाह में आगाह को मानव मानता है।

मन की बात में मन की निगाह - आगाह विवेचन परिचय का स्वरूप स्पष्ट है। समझने समझाने, मानने- मनवाने, सीखने-सीखाने, कहने- कहलाने आदि सभी भांति से एक मन की बात ही को विभिन्न दृष्टिकोण से उस एक पहलु मानव की मानवता को कहा गया है। यहाँ मन की निगाह में आकर मन की बात को एकरूप में व्यक्त करने का एक लघु प्रयास ही तो किया है। जिसे समझने, मानने, स्पष्ट करने आदि के प्रति हमारा कोई दाब - दबाव, विनय निवेदन, नम्र - नमता आदि कथन कथानक कुछ भी नहीं है। है तो वह यह है कि मन मानसिकता में मानव का यह तकाजा, सुबोध सम्बोधन, कहना, बताना जो भी हो वह है कि वह कितना सजग सावधान रहता है कि होशियार होशियारी और सावधानी को अपनाता है। बुद्धि बौद्धिकता के विवेक से किस प्रकार समाधान निकाल लेता है। यहाँ उसकी बुद्धिमानी को तो मानना ही पड़ेगा और तो और इसे उसका भ्रम कहो या अहं, स्वाभाविक कहो या अस्वाभाविक, वास्तविक कहो या अवास्तविक आदि कुछ भी कहो समझो लेकिन यह सत्य है कि प्रामाणित होने की कोई आवश्यकता नहीं बची है कि मन की निगाह - आगाह मान को मानवीय जीवन के सम्पूर्ण समयकाल में होशियार, सजग, सावधानी की बेमिसाल यह अपने प्रकार की सतर्कता है। इस सतर्कता के होने पर से उसका प्राणियों में मानवीय स्वरूप अपना श्रेष्ठ अपने आप ही सिद्ध है। जो मानव मन-मानसिकता की दृष्टि ही की देन है। मानव उस परम सत्ता के प्रति किन शब्दों में अहसान माने उसके पास नहीं है। ॐ शान्ति ही कहेगा।

सारांशत: - बुद्धि बौद्धिकता तो आवश्यकता पूर्ति के लिए जन्म से मिली हुई होती है। केवल सतर्कता इतनी ही चाहिए कि उस योग्यता को कब

किस प्रकार किस हित-अहित में उपयोग किया जाय। इस सोच को सही दिशा देने की समझ, सजग, सतर्क रहने की दृष्टि से आगाह होकर निगाह रखी जाती है। इसकी सार्थकतो के लिए मन बुद्धि के सोच को दिशा के चिन्तन-मनन के लिए समझ, ज्ञान, विद्या ली जाती है, जिससे मन डायरेक्शन सही दिशा में चलता जाये। आगा-पीछा सन्तुलन हो जाता है। जीवन जीने का मानवीय आगाह - निगाह, निकाह - आगाह यही मानवीय गुण है। बस ! सब ठीक है।

--- * ---* ---* ---

५६. तब नहीं तो अब सही

भूल चूक सुधारना व्यवहार व्यवहारिकता।
सोच समझ ठीक बन जाय यही है सभ्यता ॥
कहाँ से चल कहाँ तक मानव जीवन बीता।
तब छूटा वह अब हुआ ठीक अपनाया ॥

अपनी क्षमता, योग्यता, ताकत, शक्ति, बल की पहचान समय से हो जाय तो उसकी होड़ (बराबरी, तुलना) नहीं की जा सकती है, लेकिन प्रायः ऐसा होता नहीं है। जब हो जाता है तो तब और अब का प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता है। टेस्ट परीक्षा, जांच प्रतियोगिता इसी बात के द्योतक होते हैं कि समय पर सावधानी है या नहीं है। बदल बदलाव की आवश्यकता भी तभी होती है कि जब जिसकी आवश्यकता होती है वह पूर्ति नहीं मिलती है। प्रत्येक काल की पूर्व योजना बनाना। योजना को सावधानी से अंजाम देना। इस बात का द्योतक है कि वह वह काम पूरा किया गया है या किया जा रहा है, लेकिन इतने पर भी कभी का तो अहसास होता है। ऐसा भी होता है कि बिना किसी योजना के काम किया जाता है तो यह कहा जाता है कि बिना सोच समझ योजना के तो काम में कमी आना स्वभाविक ही होता है। लेकिन जब काम पूरा होता है तो करने करवाने वाले दिमाग को यह दाद दी जाती है कि अरे क्या कहना आप तो सूझबूझ के धनी है जो करते हैं उसमें कमी रहने का कोई कारण ही नहीं हो सकता है कि कमी रह जाय ॥ इसी प्रकार की विभिन्न परिस्थिति में विभिन्न प्रकार के सोच प्रायः उत्पन्न होते रहते हैं। यह भी अब किये जाने की पहचान है

यह भी कहा जाता कि हर समय एक जैसा नहीं होता है। सबका दिमाग एक जैसा नहीं होता है। दिमागी भिन्नता के कारण अन्तर आना

स्वभाविक है। इसके साथ यह भी सत्य है कि एक एक का काम और उपलब्धि बढ़ चढ़कर होती है। कारण में मानसिकता की विशेषता तो होती ही है। इसके अलावा करते समय की सावधानी अधिक महत्व रखती है। इस समय सामयिक सावधानी के लिए ही शिक्षित हुआ जाता है। प्रशिक्षण लिया जाता है। होशियारों के मार्गदर्शन में रहा जाता है। आदत डाली जाती है। आदत मोहब्बत या डर से कैसे भी की हो लेकिन उसमें मन का प्रेम विवेक तो होता है। उसे पहचाना जाय। ज्ञान घड़ा उलटा रखा। जाय वह विवेक स्थानी प्रेम होगा, लेकिन जीवन इतना नाजुक हैं कि उसे विवेकमय प्रेम ही से चलाया जाता है। भय क्रोध से वह विश्रृंखलित अर्थात अस्त व्यस्त हो जाता है। कुछ करता है कुछ का कुछ हो जाता है। नाजुक शिशुकाल माता सम्हालती है। विद्यालय में की पिता व्यवस्था करता है। तो गुरु ज्ञान देता है। यह सब टीन एज में सब का सब हो जाता है। बाद का जीवन तो हेन्डल विद केयर का होता है। केरियर सम्हला तो जीवन सम्हला। यह मन की निगाह पर निर्भर होता है। हेन्डल विद केयर अर्थात सावधानी से सम्हला जीवन सरलता से निर्वाहित होकर सफल होता है। यहाँ योग्यता डिग्री उसे सोच सुधार में काम आती है। चेतावनी के साथ प्रारंभ जीवन मंजिल की ओर भूल भटकाव के बाद तब नहीं तो अब के साथ किनारे लगता है। मन और मन का सोच तो यही है। कि दूर तक के सोच से जीवन सफलता से चलता है। मन की निगाह कितने आगे के सोच से जुड़ी है। पता लगता है कि

- क्या गोपनीय है ? जिसे मन जानता है लेकिन उजागर नहीं करता है।
- क्या सामान्य हित का है? जिसे सामान्य से बचाकर उसके हित में लाभ के लिए सार्वजनिक होने से बचाया जाता है।
- क्या अपने हित की बात को हम सबके हित के लिए उजागर करते हैं।

- क्या दूसरों में पाई जाने वाली बात को उन्हें गुमराह कर उन्हें उससे होने वाले फायद से वंचित क्यों करते हैं। ईर्ष्या द्वेष यह है। कि वह हमसे कही आगे नहीं हो जाय।
- क्या खोल खुलासा हमारा यह रहा है कि सबको आगे बढ़ने का अवसर तब नहीं तो अब मिले।

उपरोक्त को क्या कहेंगे। कुछ भी कहे। यह गोपनीय नहीं है। मन को समझने के लिए मानव सदा से लालाहित रहा है। कोशिश भी करता है यही तो मन मानसिकता का मनोविज्ञान है। जिसे वर्तमान में विशिष्ट शाखाओं में बाँटकर अध्ययन किया जाता है। फिर भी आधा अधूरा ही लगता है।

मानव मन मानसिकता अद्भुत है। निराली है कि जिसका मुकाबला सभी प्राणी मिलकर भी चाहे तो नहीं कर पायेंगे। कारण मानव मन मानसिकता ईश्वरीय अनेकों नेक विशेषताओं से ओतप्रोत है। जो अन्य प्राणियों में कही होती ही नहीं है। यह मानव मन इतना मनस्वी है कि वह अपनी समस्याओं का समाधान बड़े आसानी से निकाल लेता है। धर्म धार्मिकता और व्यवहारिकता में लोभ लुभावन में वह पीछे नहीं रहा है। विभिन्न देवी देवताओं की मूर्ति चित्र उसने अपने मान से बना लिए है। उनके पूजा पाठ यज्ञ आहुति अभिषेक करता है। चोला, झंडा, प्रतीक, ध्वजा, निशान भेंट बलि, पूजा आदि समय समय चढ़ाता रहता है। उसने कर्म को पूजा पूजा को कर्म मान लिया है। मूर्ति चित्र पूजा उपकरण साधन सामग्री निर्माण कर व्यवसाय ही बना लिया है। वह अपनी धार्मिकता आध्यात्मवादित। रखते हुए अपनी पकड़ से धन तो कमा ही लेता है। इस होशियारी से उसने यह रिजल्ट निकाला है कि जो वह नहीं कर पाया अब सभी करने का चान्स मिला है तो क्यों चूका जाय। परिवार के रिश्ते नाते शालीनता, मान मर्यादा से चलते हैं। लेकिन समय की चकाचौंध ने मानव का ऐसा बना दिया है कि रिश्तों को निभा भी नहीं पा रहा है। क्या पुरुष क्या स्त्री सब यही सोचते हैं। कि वर्तमान जैसी उनमें होशियारी होती है तो इतने

पिछड़े न रहते अतः उनने मन ही बना लिया है कि मान मर्यादा शालीनता के चक्कर में अब वह नहीं रह सकता। जब था तब था। अब तो गरज पर माफी माँगता। खुशामद करता। नहीं तो कोई मतलब ही नहीं रखता है। तब और अब में इतना अन्तर आ चुका है।

मानव मन चंचल चपल होता है। भागता फिरता है। उसका सोच तब का अब करने की सफलता तलाशा करता है। वह सोचता है। कि तब नहीं तो अब सही। अब नहीं तो कब भरोसा नहीं। ज्यादा नहीं तो कम क्या? मौका मिला तो खूब लेने का लो मजा। अब नहीं तो कभी नहीं। अब कम तो कभी ज्यादा सही। अब कम भी नहीं तो कुछ भी नहीं सही। पकड़ बनी यही सही। अब जब जो है। उसे चूको नहीं। पशु पक्षी मछली आदि के स्वभाव से जोड़ देखे तो उनमें विशेषता है लेकिन मानव में तो उससे भी ज्यादा है। यह मानव मन की उपेक्षा है। मानव मन पर्याप्त सम्पन्न है। बुद्धि बौद्धिक भरपूर है। वह चाह की राह खोज ही लेता है। गुणों को टटोल कर उन्हें अपने लिए फिट बना लेता है। जैसे मन 'म' के पाँच गुण उदाहरण से मालूम होगा- म मटर, स्वास्थ्यवर्धक। म-मूग- पाचक रसायन युक्त। म मैथीदान जोड़ पेट दर्द निवारण। म- मोठ - मनोभावर्धक। म- मूंगफली - मन मानसिक शान्तिदायक भारतीय काजू। इसी प्रकार प्राण और मन दोनों का गठजोड़ गहन है। प्राण चेतना के व्यक्त करने वाला मन होता है। वह प्राण का संचालक कहा जाता है। प्राण व मन दिखते नहीं है। लेकिन चेतना से प्राण। इन्द्रियों के क्रियाकलाप से मन की विद्यमानता का पता लगता है। भय, क्रोध, ईर्ष्या, प्रेम, मोह, घृणा, सेवा, त्याग, लोभ, लालच, उच्छश्रृंखलता, उद्दंडता, भीरूपन, साहस आदि प्राण की विद्यमानता मन-मानसिकता दशा को व्यक्त करते हैं। मस्तिष्क, बुद्धि, विचार, समझकर स्तर मन के द्वारा व्यक्त व्यवहार तब और अब कब- कभी, सदा पता चलता है। प्राण मस्तिष्क मन दशा प्राण चेतना व्यक्त करता है। अच्छा बुरा हम आकलन करते। तब नहीं अब। अब नहीं कभी नहीं आदि जैसे

महत्व पर मन फिसल पट्टी का खेल अपनी चंचलता से खेला करता है। अब जब मानव इतना विकसित हो चुका है तो वह जो जब कर सकता है या नहीं कर पाया क्योंकि वह इतना विकसित नहीं था। अब है तो उसे जो जब नहीं कर पाया वह अब करने पर उतारू हो चुका है। तब का पश्चाताप उसे आज अब सताता भी है कि वह चूक गया। अब उसे नहीं चूकना है। तब ही तो वह ज्ञान-विज्ञान बुद्धि-बौद्धिक, कला- कलाकारिता आदि सभी प्रकार से अधिक से अधिक सफलता पाने के लिए जुट गया है। क्योंकि मानव को पिछली रही कमी का अब अहसास हो चुका है। तब ही तो वह अब सब कुछ करने जुटा रहता है।

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट है कि मन अपनी पकड़ पकड़कर श्रेय, लाभ से प्रथम तो वंचित होता ही नहीं है। कभी कभाक हो भी जाता है तो अब जब उसे अवसर मिलता है तब का अब पकड़ लेता है वह शेष रहा, चूका हुआ आदि भूल सुधार में अब चूकने वाला नहीं है। कर लेता है। कर भी लेगा। तब नहीं तो अब उसका कितना अच्छा तरीका है, कि चूके अवसर, लाभ को वह प्राप्त कर लेता है। यह मन का कमाल है। नहीं तो क्या है? और कुछ नहीं। तब नहीं था या चूके थे वह अब होना है करना है, फिर चूकना क्या-

तब चूके तो चूक, अब चूकना क्या ?
मौका लगा तो इससे अच्छा अब क्या ?
मन की पकड़ यही तो तब नहीं अब है।
अब को क्यों छोड़े मन की बात यह है ॥

--- * ---* ---* ---

५७. मन क्या ? यही कि कैसा ? क्या ?

स्वागत विदाई फिर मिलने का वादा।
सम्भावना की आशा व्यक्त किया ॥
मन की बात बताने का गौरव पाया।
आत्मदेव को साधा तो समझ आया ॥

मावन की रचना उस ब्रह्मशक्ति ब्रह्मा ने सर्व गुणी सम्पन्न की है। कही उसने पक्षपात तो नहीं किया है। नहीं ऐसा नहीं हो सकता है। रचना के अनुकूल यही उचित था। उचित करना कोई पक्षपात नहीं होता है। ठीक है तभी तो मानव प्रज्ञा, विवेक, क्षमता, साहस, सूझबूझ, निर्णय आदि में उससे बढ़-चढ़कर कोई भी जीव प्राणी है ही नहीं। तो अब क्या होगा। सम्भावना नहीं है। मानव मन ऐसा मनस्वी है कि वह पूर्ण रूपेण सम्पूर्ण शरीर पर नियंत्रण रखता है। फिर उसके अंग प्रत्यंग भी ऐसे हैं कि उनकी विशेषता का कोई मुकाबला भी नहीं कर सकता है। यही कि मानव शरीर के प्राण, मस्तिष्क, हृदय, इन्द्रियाँ और मन की विद्यमानता भी अर्जीब, अनोखी विशेषता भरे है। चेतना ज्ञान, गति, कर्मक्रिया, इच्छा, जिज्ञासा, श्वास, प्रश्वास, ग्रहण, विसर्जन, निगलना, गटकना, खाए हुए से रस बनाना, उद्गार, देखना, सुनना, सोचना, उत्तर देना, बोलना, भूख लगना, तृप्त होना, जंभाई, छींक, सूघना, पहचान, चलना, दौड़ना, रुकना, खड़े होना, बैठना, सोना, नींद लेना, झपकी लेना, भटकना, रोना, हँसना, दुख मनाना, प्रसन्न होना उदास होना आदि आदि सभी आभास इस शरीर से होता है। जिन्हें प्राय मन आभास कराता है। प्रेम, मोह, क्रोध, कष्ट, प्यार करना, दुत्कारना, अपमान करना आदि का अहसास करना। थकान, ताजगी, सुस्ती, उदासी, शान्ति, संतोष आदि महसूस करना। यह सब जीवन जीने की मानवीय सामान्य क्रियाकलाप दशाये आदि ही है। होशियारी, ईमानदारी, सावधानी, सही गलत का निर्णय, विवेचना, निन्दा, विचारना,

टालना आदि आदि लौट पलट इस शरीर में उत्पन्न हुआ करती है। यह सब उसी एक ही मन के निर्णय से होता है। ऐसा मानते हैं। इसी मन की मानसिकता से यह भी चाहा जाता है कि ज्ञानी, ध्यानी, तपस्वी, वैज्ञानिक, पहलवान, खेल-खिलाड़ी, साहित्यकार, कलाकार, शिक्षक, टेक्नीशियन आदि की इच्छा जिज्ञासा वह उत्पन्न करता रहे। क्या यह सब करवाने वाला वास्तव में मानव मन ही होता है ? है तो ऐसा कैसा मन है जो मन सब का सब वह कर लेता हो। मन दिखता तो नहीं है। तो शरीर व उसके अंगों जैसा उसे समझा भी नहीं जा सकता है। तो उसे कैसा? क्या ? माना जाय। विज्ञान तो प्रत्यक्ष को मानता है। आध्यात्म अनुभूति करता है। दर्शन गुणों का अहसास करता है। धर्म धारणा बनाता हैं यही तो विशेष है कि वह मन भिन्न-भिन्न आभास कैसे कराता है। जब शरीर से प्राण निकल जाता है तो शरीर की यह सब क्रियायें रुक जाती है। शरीर सड़ने गलने की बदबू जैसी आती है। वह शरीर किसी काम का नहीं रहने से दफना देते हैं या अग्नि के हवाले कर देते हैं।

इसी पुस्तक मन की बात के विभिन्न अध्यायों में हमने खूब देखा समझा है। जो शरीर चेतन अवस्था में मन के विभिन्न क्रियाकलापों से आभास होता है। लेकिन अब जब प्राण निकल कर शरीर निर्जीव हो चुका है। प्राण के साथ मन ही चला गया तो कौन कुछ करवायेंगा और ना ही किसी से आशा की जा सकती है। मन की बात जो की जा रही है वह अब निर्जीव अवस्था में करना सम्भव नहीं है, है तो यही कि उसे जल्दी से जल्दी घर से निकाल शमशान अथवा कब्रिस्तान ही पहुँचाया जाता है। उसके द्वारा किया हुआ, उसने अपने लिए किया हुआ, उसके अपने पराये सब यही छूट जाते हैं। उसे छोड़कर आ जाते हैं। कोई उसे घर रखने को तैयार। ही नहीं होता है। न ही उसके बदले स्वयं को प्रस्तुत करता है, जबकि लड़ाई झगड़े आदि से उसकी सहायता करते हैं। यहाँ उसका अपना ऐसा एक भी उसका साथ नहीं देता हैं। बल्कि उससे सब छीन लेते हैं। क्या यही विडम्बना है।

जब शरीर में प्राण थे तब आत्मदेव का उसके अन्दर अहसास किया। यही आत्मदेव मन का अधिष्टाता था। मन तो उसका प्रशंसक, उद्बोधक और क्रियाकलापों पर नियंत्रणकर्त्ता ही होता है। उसी के द्वारा मन साहसी, निर्णायक, सक्षम आदि जैसा बनकर कार्य सम्पादन कर सकता है, करता है। करना चाहिए, मन की अपनी शक्ति क्षमता होती है। वह मन के प्रभावी, संतोषी और क्रियाशील होने पर ही वृद्धि होती है। मन की अपनी शक्ति होती है। वह और उस शक्ति में इजाफा वृद्धि तभी आएगी जब मन उन शक्तियों से परिचित होकर उन्हें विश्वासपूर्वक जगायेगा नहीं। जब वे शक्तियाँ जागती है तो मन उनमें लिप्त होकर सफलता पाने लगता है। इस सफलता पाने को मन मानसिकता से ही कहलाया जाता है। और जिसका श्रेय मन को मिलता है। इसलिए मन को प्रबल कहा जाता है।

प्रकृति प्राकृतिक ऋतु मौसम में विशेष अवसर लिए दिन त्योहार वसंत और शारदीय नवरात्रा, अक्षय तृतीया, शरद पूर्णिमा, श्रावणी, गुरु पूर्णिमा, अवतारी, महापुरुषों के दिन, देवी-देवताओं के विशेष मान मनोति दिन, समय सामयिक निर्धारित आयोजन प्रयोजन दिन आदि, अपने जन्मदिन, विवाह दिन, मरण मौत स्मृति दिन, श्राद्ध, संस्कार, संकल्प, वृत्त, उपवास, पूजा-पाठ अभिशेख, मन- मानसिक शक्ति साधना, अनुष्ठन, पुरश्चरण आदि दिन एवं अवसर आदि मनाते हैं। शक्ति पुष्ट होती है। क्रियाशीलता में वृद्धि होती है। गहरे प्रभाव पड़ते हैं, जिसके कि कारण मन-मानसिकता में प्रयास प्रयत्न की क्षमता बढ़ती हैं। मन और अच्छे प्रकार से इन्द्रियों को नियंत्रित कर उनसे अधिक अच्छे काम करवाता है। जिसका मानवीय जीवन यापन, आयु, क्षमता, प्रतिभा, योग्यता, शक्ति, मनन, चिन्तन आदि आदि प्रकार प्रभावित प्रभाव पड़ते हैं? प्रगति मार्ग खुलते हैं। सफलतायें मिलती है। अच्छे परिणाम अवसर आते हैं। जीवन को जितना अधिक नियोजित संलग्न सरल सादगी,संयमित - नियमित क्रियाशील बनाया जाएगा उतने अच्छे परिणाम निकलेंगे। जीवन

उन्नति के सोपानों को छूता व्यतीत होगा। सुखी, सम्पन्न, प्रतिभावान, विभूतिवान, सुखी, संतोषी, सम्पन्न आदि होता चला जाएगा, जिसकी कि आशा व अपेक्षा की कमी नहीं होती थी। दैनिक जीवन में आने वाली बाधायें टलेगी, मन अपने आप में कमजोरी, निराशा, अविश्वासनीयता से बचेगा। आदि आदि।

स्वाध्याय, स्वावलम्बन, सम्पर्क, संवाद, चिन्तन मनन आदि जितना अधिक किया जाएगा मन अनुपातन उतना ही सक्षम होता चला जाएगा। यही कारण है कि विभिन्न प्रकार के शिक्षण, प्रशिक्षण, पठन पाठन किये जाते हैं। कोर्स किये जाते हैं। योग्यता बढ़ाई जाती है। प्रतियोगिताओं में भाग लिया जाता है। फिर एक समय ऐसा आता है कि उसका मुकाबला करना आसान हो जाता है। उन्नति के सर्वाङ्गीण काम होने लग जाते हैं।

मानव सामाजिक तो हैं। रहन-सहन का स्तर वृद्धि, सामाजिक सुधार, स्तरण वृद्धि की ओर और अधिक जोर दिया जाने लगता है, जिससे मन मानसिकता और अधिक प्रेरित होती चली जाती है। अच्छे कामों में मन लगता है। सुधार होते हैं। कमजोरियाँ दूर होती है। दूसरे शब्दों में यही कहा जाएगा कि सामाजिक जीवन का सर्वाङ्गीण पक्ष उत्कृष्ट वृद्धि की ओर प्रेरित होता है। जिससे उन्नति, प्रगति, विकास मार्ग सरल होते हैं, खुलते हैं। संभव संभावना की आशा में अपेक्षा की जाती है। जीवन दीर्घजीवी, स्वस्थ, स्वच्छ, तृप्त, संतोषी आदि साथ आनन्द और मुक्ति मार्ग सफलता मिलती है। ऐसे जीवन को फिर क्या कहना। वह नई नई सफलताओं के सोपान चढ़ने लगता है। जन्मजात वृत्ति प्रवृत्ति बनती है और प्रवृत्ति से वृत्ति निर्माण होता है। प्रवृत्त होते चले जाते हैं।

परिवार में ऐसे भी अवसर आते हैं कि जब कभी मनमुटाव छिन्न-भिन्नता के अवसर आते हैं तो मन अपने आप समाधान देता है। अधिकाधिक

सम्पर्क मेलजोल के प्रयास बढ़ते हैं जिससे छित्र- भिन्नता दबाव पड़ने से रुकती है। परिवार की समस्या सुलझती चली जाती है।

मन क्या है?यही कि कैसा? क्या ? सब ठीक होता चला जाता है। प्रेरित होता है। समस्याओं का समाधान होता है। समस्याओं के उत्पन्न वृद्धि से बचे रहते हैं। प्रगतिशील जीवन व्यतीत करने के प्रति हामी हो जाते हैं और तो और क्या कहा जाय मन-मानसिकता का औचित्य बनता है ॥ इन्हीं सब कारणों के कारण मन की बात में दम होता है। कहने में आता है कि उपरोक्त विवेचना के मुद्दों पर मन बनाया जाय लगाया जाय। मन मनाया जाय। मन मान जाएगा। जीवन सफल होगा। मुक्ति का आनन्द यही इसी धरा उत्पन्न होगा। स्वर्गिक कल्पना पूरी होने में कोर कसर का अन्तर तक नहीं आएगा। मन सहलाया जाय। उसके अनुसार चला भी जाय। महत्व दिया जाय। दिया जाता है। मन मानसिकता से निकले आशीष, उल्लेख, वाणी सफल सिद्ध होती है। बस मन यही तो हैं। ऐसा ही है जैसा कि चाहा जाता है। उसे होना चाहिए। वह होता है। इससे अच्छा अच्छाई और क्या चाहिए। मन की बात करने, बताने का गौरव लेखक को प्राप्त है। गौरवान्वित है। पुनः पुनः जन्म जन्मान्तरों में अच्छे जीवन के लिए उत्कृष्ट मन की आशा है। सम्भावना की निश्चितता में अपेक्षा के प्रति मन का कृतज्ञ ही हुआ जाएगा। घाटा कहीं से कहीं तक नहीं है। मन की बात तो मन क्या? यही कि कैसा? क्या ?आत्मदेव की कृपा बरसती रहेगी। मन की बात कैसी रही? अच्छी रही कह देंगे।

५८ - शरीर स्वास्थ मन स्वस्थ / मन स्वस्थ शरीर स्वस्थ

शरीर मूर्त होता है। जिसे हम देख सकते और छू सकते है। शरीर में आत्मा, बुद्धि और मन होते हैं। जो अमूर्त हैं। जिन्हें हम न देख पाते हैं, न छू पाते है। लेकिन शरीर के लिए ये सभी काम करते हैं। बुद्धि, इच्छा, जिज्ञासा का श्रेष्ठ करने के लिए प्रेरित करती है। तो बुद्धि, मन उसे अपनी इन्द्रियों के द्वारा पालन करवाता है। ऐसे में मन हमारी सेवा का प्रथम हकदार होता है। मन अनुकूल है तो सभी अनुकूल होगा। मन अनुकूल नहीं है तो अनुकूल तो क्या थोड़ा भी अनुकूल नहीं होगा। कहा जाता है कि सधा हुआ मन हमारा सबसे बड़ा मित्र है, तो बिगड़ा हुआ हमारा सबसे बड़ा शत्रु होता है। इसलिए जीवन के अच्छे के लिए मन को समझा कर रखा जाता है। सकारात्मकता की ओर बढ़ना सम्भव है। तब तो अनुकूल परिवर्तन होंगे और सुख शान्ति जैसा हमको लगेगा। इस सबका यही आशय हुआ कि मन हमारे लिए कल्पवृक्ष का काम करता है। तो उसे समझाकर या अपने अनुकूल या चाहत का बनाकर रखना आवश्यक है। ऐसे में मन हमारा प्रत्यक्ष देवता ही तो होता है? जो हमारे पास चौबीसों घन्टे हमारे साथ होता है। वह हमको कुछ न कुछ करते रहने में व्यस्त ही रहता है। उसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं होता है। बस ठान लेना जरूरी होता है। ऐसे में मन को साधे रखना जरूरी है। सधा हुआ मन प्रत्यक्ष फलदायी होता है। जबकि देवी देवताओं की मन्नत मानने पर भी विश्वास नहीं होता है। कन्डीशन रखते है कि अमुक अनुकूल हो तो मन्नत में अमुक करेंगे। आदि। अर्थात चाहा होगा भी या नहीं लेकिन मन के साधे रखने पर होना बाद की बात बात है, किन्तु पहिले विश्वास जैसा होता है। दूसरे शब्दों में सधे मन के रखने पर शंका होना बेमानी जैसा ही है।

हम प्रतिभाशाली हो सकते हैं। साधन सम्पन्न हो सकते हैं। शौकीन हो सकते है। विभिन्न इच्छा आकांक्षाओं को पूरा करने को तैयार भी रहते हों, लेकिन इतने पर से सफलता की आशा कैसे सम्भव होगा ? जब मन ही तैयार नहीं हो तो।

हम कलाकार हैं। ज्ञानी है। वैज्ञानिकी है। कवि, लेखक साहित्यकार, डॉक्टर, इन्जीनीयर, राजनीतिक, दार्शनिक, समाजसेवी आदि आदि जो भी हो सकते हैं। लेकिन इनको चरितार्थ तो मन को सधे रहने से ही सम्भव हो पायेगा। दूसरे शब्दों में मान सकते हैं तो अपनी जो कुछ भी चाहत है, योग्यता भी है तो उसे दर्शाने में चमत्कृत हो जायेंगे। ये चमत्कृतता की साधनाये मन को साधे रखने पर ही चरितार्थ होंगी। साधे रखने का दूसरा मतलब काबू में है तो सभी सिद्धियाँ हमारे अनुकूल सिद्ध होंगी, जिससे कि हम लाभान्वित होते चले जायेंगे। यहाँ मन को जागृत देवता कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। यदि वह सधा नहीं है तो वही शत्रु के समान सिद्ध होगा। अर्थात कुछ भी अनुकूल नहीं हो पायेगा।

हम संयमी है। अनुशासित है। कर्त्तव्य निष्ट है। वायदे के पक्के हैं। यह हमारी अच्छाई है। जिससे सफलता मिलती है। लेकिन क्रिया पक्ष की ओर देखें तो मन को सहमत होना जरूरी है। तब ही तो उसे करने का काम मन का आदेश पाकर इन्द्रियाँ सफल बनायेंगी। यदि मन ही खराब है तो सभी चाहत के काम धरे के धरे रह जायेंगे। अच्छे व अच्छी तरह कैसे भी नहीं हो पायेंगे। होंगे भी तो आधे अधूरे कम उपयोगी ही होंगे।

हमारे शरीर में पाँच ज्ञानेद्रि और पाँच कर्मेन्द्रि हैं। इन दसों से तो काम के आदेश देनेवाला ग्यारहवीं इन्द्रि मन है। जो सबसे प्रबल है। मुख्य है। जिसके सहमत होने पर ही इन्द्रियाँ अपना-अपना काम करती है। जिसमें बुद्धि की विशेषता काम काम करती है। तो आत्मिक अच्छा लगने से उस पर आत्मा की

कृपा होने की दुहाई दी जाती है। इस अद्भुतता के होने पर कल्पना शक्ति, मनोबल, इच्छाशक्ति, आदि जो भी वे हैं सभी सम्भव नजर नहीं आते हैं। क्योंकि मन के अच्छा करने भर की आवश्यकता बन जाती है।

मन को अच्छा बनाये रखने के लिए उपयुक्त मार्ग है तो संस्कार है। संस्कारों से संस्कारित होने और उनकी शिक्षाओं के पालन से उस परमात्मा के नाम सब कुछ होता है। इस अनुकूलता के लिए मनुष्य उपासना, साधना आदि की दिनचर्या को अनुकूल बनाया जाता है। उसका अपने अन्दर आत्मारूप में परमात्मा का बास मानकर उसका अनुकूल अनुशासित रहा जाता है। अर्थात मन हमारे अनुकूल बना रहने की चाहत पूर्ति होती है। सुकृत्य होते हैं। इस प्रकार मन हमारे लिए सचमुच में उस परमात्मा के अनुकूल जिन्हें हम समझ करते हैं। मन ही सहमती ही तो है। कि हमारे क्रिया कृत्य सफल आते हैं। अतः मन के साधे सब सध जाते है। बोओ और कारो इसी का परिचायक है।

मनुष्य शरीर की संरचना सृष्टा ने अति जटिल की है। जिसे समझने के लिये मेडिकल विभाग प्रगति करते हुए भी और प्रगति की आवश्यकता पर आवश्यकता अहसास करता जा रहा है। मनुष्य के स्वास्थ को ठीक कैसे रखा जाय? खान पान की पूर्ति किनासे कितनी की जाय? रुग्ण होने पर इलाज के लिए कैसे क्या किया जाय? आदि। मेडिकल साईंस शरीर को कितना कैसा कब तक रखा जा सकता है, क्रिया की सफलता से पूरी तरह असफल रहा है। कोशीश अधिक से अधिक जीवित रहने के और जीवित रखने के प्रयास मनुष्य स्वयं और मेडिकल विभाग करता है। यह शरीर को स्वस्थ रखने के प्रयास हैं। लेकिन शरीर को स्वस्थ रहने के लिए मन को भी स्वस्थ रहना आवश्यक है। मन स्वस्थ है तो शरीर स्वस्थ है और शरीर स्वस्थ है तो मन भी स्वस्थ है। दोनों स्थिति और परिस्थिति अपना अपना महत्व रखती है। कहने में आता है कि जैसा मन होता है वैसा शरीर हो जाता है। तो जैसा शरीर स्वस्थ है तो मन भी

उसमें स्वस्थ के काम करेगा। इसलिए दोनों दिशाओं में हमको ध्यान देना चाहिए।

शरीर स्वस्थ मन स्वस्थ। मन स्वस्थ शरीर स्वस्थ। यह दशा जीवन जीने की दशा और उम्र मान से शरीर में आई क्षीणता का मन पर भी असर पड़ता है। जितनी उम्र कम होगी मानसिक शक्तियाँ अच्छा काम करेंगी। बढ़ती उम्र से उनमें शिथिलता आना स्वाभाविक होता है। लेकिन जीवन जिए के अनुभव से मन की दशा शरीर की अपेक्षा फिर भी स्वस्थ ही नज़र आता रहता जान पड़ता है। अतः शरीर को भी इस मान से स्वस्थ रखना आवश्यक है। बुजुर्गों में भूलने की समस्या जरूर होती जाती है। इससे मन पर भी प्रभाव तो पड़ता है। यदि बुजुर्गों का सम्मान के नजरिये से रखा जाय तो भूलने की स्थिति में बहुत कुछ याददास्त में भी टिकी परिस्थिति बनती है। तो मन भी उसी के अनुसार होता रह सकता है।

उपरोक्त तो क्या मन के ऊपर तो पिछले अध्यायों में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। लेकिन जब शरीर के साथ मन की बात आती है तो फिर भी इतना तो है कि मन के साये में साधे सब सपना माना जाता है। कहना गलत नहीं होगा कि शरीर स्वस्थ तो मन भी स्वस्थ होगा। मन स्वस्थ रहता है तो शरीर भी स्वस्थ रहने की झलक मारे बिना कभी नहीं चूकेगा। यह कोई गलत नहीं है। कि मनुष्य दोनों की स्थिति परिस्थिति अपने अपने मान से रखता है। अहसास करता है। तो इन्हें अपनाये रखने पर इसकी महत्ता सदा बनी रहती है। फिर जीवन जीवनी के साथ तो जो होना है वह होकर ही रहता है। स्थिति बनती है कि शरीर को स्वस्थ रखा जाय और मन को हँसते हँसाते प्रसन्न रखा जाय। जीवन जीने का यह राज सबसे अच्छा और सुलभ मार्ग बन जाता है।

५९. जीवन जिए की सार्थकता

मानव का मानवीय जीव अनुरूप स्वयंभू ब्रह्म शक्ति ने अति महरवान होकर रचना की है। जिसमें अनेक नेकानेक अथक विशेषतायें होती है। जो रहस्यपूर्ण ही प्रतीत होती है। शरीर और उसकी इन्द्रियाँ मूर्त अर्थात दृश्यमान है। तो आत्मा, बुद्धि और मन अमूर्त अर्थात अस्पर्श है। दृश्यमान नहीं हैं। ये सभी अतीन्द्रिय समता प्राप्त है। शरीर में ही आत्मा, बुद्धि, और मन का वास होता है। शरीर पंच तत्वों का आकार प्रकार है। जिसमें तीन शरीर, पाँच कोष, छः चक्रों की मान्यता है। आत्मा के रूप में परमात्मा की अनुभूति होती है। शरीर जन्मता है। तो दिखता है। परन्तु आत्मा इसे छोड़ते जाते का कोई पता नहीं लगता है, कि कैसे वह निकल जाती है। परमात्मा आत्मा का शक्तिकेन्द्र है। आत्मा अजर अमर है। जो मृत्यु ग्रंथी के माध्यम से शरीर बदलती रहती है। जो उसका नवीनिकरण होता है। आत्मा शरीर में अप्रत्यक्ष होती है। जिसे प्राण शक्ति से नवाजा जाता है। बुद्धिक्षमता सभी प्राणियों से निराली है। मन क्रिया-कर्म, इच्छा, जिज्ञासा को व्यवस्थापक और नियन्त्रक होता है। इन्द्रियाँ उसी के अनुसार काम करती हैं।

मनुष्य ही है कि उसे जीवन में अनुशासित होना होता है। जो संस्कारों से प्रभावित होता है। उसे कर्त्तव्यों का फलन करना पड़ता है। कारण कि उसे अपने स्वयं के अतिरिक्त दूसरों के हित के कार्य करने पड़ते हैं। कहा जाता है कि जीवन है तो जहाँन है। अतः मनुष्य जीवन सम्पदा विशेष विशेषता लिए हुए होती है। जिन्हें जीवन जिए के साथ उपयोगिता में लिए जाने की मान्यता मानी जाती है।

जीवन जीने को जीवनी शक्ति कहो या परमात्म शक्ति। परमात्म शक्ति जिसे चेतना तन्त्र या कल्पित भी माना जाता है। कहा जाता है। जिसे प्राण से सम्बोधित किया जाता है। संदिग्ध अवस्था में हार्टबीट प्राण वेन्टीलेटर

से इसकी सक्रियता को बनाये रखने की पहचान की जाती है। जिसे कार्डियोग्राफ से अनुमान लगाया जाता है। लेकिन जीवनी शक्ति कितनी अभी शेष है का पता नहीं लगता है, कि जीवनी अभी कितना शेष है। यह सभी मस्तिष्क की चेतना ग्रंथी के ऊपर निर्भर होता है। जिसकी खोज तो जीवित शरीर के पोस्टमार्टम रहे ही हो सकती थी। मृत से नहीं। यही कारण है कि जिसकी खोज अभी तक नहीं हो पाई है। खोज हो पाई होती तो चेतना शक्ति अर्थात प्राण को बनाये रखने की विधा अपनाई जाती। मृत्यु होती ही नहीं। जीवनी शक्ति परमात्मा का दिया अनुदान है। तभी तो उम्र समाप्ती के साथ मृत्यु हो जाती है। यही कारण है कि जीवन कितना मिला है, उतना ही जिया जाता है।

सृष्टि के प्राणियों में मनुष्य ही है कि वह सुधरा हुआ पशु और पिछड़ा हुआ देवता है। वह कोई सृष्टि का चलता फिरता पेड़ नहीं है। ना ही वह कोई दो पैर दो हाथ का अपने अलग ही प्रकार का कोई प्राणी है। है तो वह सृष्टि का मानव प्राणी जो सामाजिक जीवन जीने वाला सामाजिक मानव प्राणी। उसकी अपनी सभ्यता और संस्कृति होती है। जिसके कारण वह व्यवस्थित जीवन जीने का हामी है। भविष्य निर्माण (सुधार) का लालायित वर्तमान में अधिकाधिक अच्छे तौर तरीके से जीवन जीने के लिए प्रयत्न प्रयास सदा करता ही रहता है। भूल भुलावे और गलती से वह सीखता है। वर्तमान में सदा सुधार वृत्ति की प्रवृत्ति से प्रवत्त होता है। इसी में उसकी अपनी विरासत होती है। मनुष्य जीवन जीता है। इसी में उसकी मानवीय जीवन उम्र जीने की सम्पदा को सार्थकता नवाजा जाता है। इसके अलावा कुछ नहीं है।

योनि विशेष के अनुसार आत्मा शरीर बदलती है। जिसका संचालन मानसिक शक्ति अर्थात मस्तिष्क की जीवनी शक्ति उम्र के अनुसार होता है। योनि के एक जीवन से दूसरे जीवन को जोड़ने वाली ग्रंथी को मृत्यु कहते हैं। मृत्यु से जन्म जीवन योनि मिले, शरीर का नवीनीकरण होता है।

जब विशेष शक्ति से विशेष शरीर को जन्म मिलता है तो उस जीवन में समय बद्ध परिवर्तन होने वाले कार्यों की विधा बनती है, और समय मैं परिवर्तन की धारा बहती है।

उम्र जीने के विषय मैं कई किव्युदत्तियाँ, दंत कथायें, कहानी, संस्मरण जैसे आये दिन कहते सुनते हैं। साँस है तो आस है। जब तक साँसे पूरी होती है तब तक तो जीवन मिलेगा ही। जब तक जीवन जीने का समय (उम्र) पूरा नहीं होता है, तब तक तो जिन्दगी मिलेगी ही। घटना, दुर्घटना, बीमारी, प्राकृतिक प्रकोप आदि की स्थिति पर कब कैसा मौका आ जाय, उम्र कच्ची, पक्की कैसी भी हो मरना ही पड़ेगा। अर्थात मौत के आने तक ही जीवन मिलेगा। आदि। आदि। अच्छे कर्मों से उम्र। इजाफा होता है। तो बुरे कर्मों से कभी। मान्य मान्यता में माना जाता है। ऐसे में यही कहा जायगा कि जब को होना होता है वह होकर ही रहेगा। उसी मान से जीवन जीने को मिलेगा। आदि। उपरोक्त पर से सन्तुष्टि के लिए इतना ही क्या कम है। कि जीवन इतना ही था। जो मिल गया। जीवन और होता है और जीने को मिलता। बस इसे अंधविश्वास भी कहते हैं। किन्तु यह सन्तुष्टि के कारण से ठीक कहना या मानना ठीक भी लगता है। तथ्य यही है कि जीवनी उम्र के विषय में कोई कुछ नहीं कह सकता है ना ही किसी को कुछ भी मालूम है। अनुमान सोच समझ सबके अपने अपने होते हैं।

विज्ञान वादी कहते या मेडिकल साईंस, यहाँ तक तो सफल है कि मृत शरीर के पोस्टमार्टम से वह मरने का कारण का अनुमान लगा लेता है। लेकिन अभी तक जीवित शरीर का पोस्टमार्टम नहीं हो पाया हो कि जिससे जीवनी शक्ति उम्र ग्रंथी का पता लगता। जीवित शरीर का पोस्टमार्टम सम्भव भी नहीं है। यदि पोस्टमार्टम का प्रयास किया भी जाय तो शरीर से प्राण निकल ही जायेंगे। यह बात अलग है कि जीवित शरीर के किसी पार्ट (हिस्से) का आपरेशन कर विक्रति का पता भले लग जाय और इलाज किया जा सकता

है। विज्ञान वादी मेडिकल साईंस में मानते है कि पौष्टिक भोजन की कमी या यों कहो कि विटामिनों की कमी से बीमारी होती हो, जिससे शरीर मरणासन स्थिति तक पहुँचता है। व्यायाम, योग, प्राणायाम, इलाज आदि कुछ भी हो किन्तु यहाँ यह सत्य ही मानना होगा कि जीवनी उम्र पूरी होने से बचा भी तो नहीं जा सकता है। अनुमान कुछ भी लगा लिया जाया औसत जीवन उम्र अपने अपने मान से मानकर अधिक जीने कारण तो समझ लिया जाय। लेकिन निश्चितता से यह उस परमात्म शक्ति के सामने केवल अनुमान ही रहता है। स्पष्ट और खरा जैसा नहीं कह सकते है।

बीमारी आदि कारण यह लगता है कि जब जीवित रहना कठिन होता तो वेन्टीलेटर पर रखने से भी बचना तो मुश्किल हो जाता है। प्राण निकल ही जायेंगे। जिसका पता भी नहीं लग पायेगा। प्राण कब कैसे निकल जाते हैं, अभी तक तमाम कोशीस करने पर भी इसे जानने में असमर्थता ही रही ही। साइंस अभी तक ऐसी कोई न विधि अपना पाया है। ना ही कोई इसे बताने वाली मशीन बना पाया है। कि किससे जीवनी शक्ति अर्थात उम्र का पता लग सके कारण स्पष्ट है कि परमात्मा के जन्म और मृत्यु पर अधिकार अपने पास ही रखा है। अतः मनुष्य का इसमें कोई वश नहीं चलता हैं। न चल पाया है। सम्भव भी नहीं है।

आध्यात्म साधक साधना के महाकारण दशा में साधना की अर्जित शक्ति से यह अनुमान है कि उसे अब जीना नहीं है। ना ही पुनः जन्म लेना है। अर्थात मुक्ति मिलना है। किन्तु शरीर से अमर रहने का वह भी दावा नहीं किया जा सकता है। यह बात अलग है कि महाकारण अवस्था में पार्थिव शरीर के रूप में नहीं रहा जा सकता है। आध्यात्म स्थिति में भले पहुँचा जा सकता है। जो मान्यता माना जाता है।

उपरोक्त पर से यह स्पष्ट है कि जीवन जीने की अन्तिम उम्र तक ईश्वर शक्ति प्रदत्त अनुसार ही जिया जाता है। अधिक नहीं। इच्छामृत्यु से मरने को मरना नहीं कहा जायेगा। वह तो हत्या ही कहा जायगा। घटना दुर्घटना से जब मृत्यु होती है तो क्या वह शेष रही उम्र के पहिले मृत्यु माना जायगा ? यहाँ हमारा मत है कि नहीं। ती यही मानना पड़ेगा कि उसकी उम्र उतनी थी। जो उसे मिली थी। ऐसे में स्वस्थ शरीर को भी मृत्यु का ग्रास बनना ही पड़ेगा। बचना मुश्किल है।

वर्तमान तक समझने की बात तो यही है कि जन्मना और मरना इन दोनों दशाओं में मनुष्य अपने किसी भी मेडिकल साइंस तरीके से कारण जानने में सफल नहीं हो पा़या है। घटना, दुर्घटना, बीमारी आदि तो मरण मौत के निमित्त ही बनते हैं। इलाज के मध्य इनसे यह दावा करके कि उसने अपने प्रयास से बचा लिया। यह कहना इसलिए सही नहीं है कि उसका जीवन था तो बच गया। यदि जीवनी उम्र शेष नहीं होती तो मरने से नहीं बचाया। जा सकता है। यदि मेडिकल साईंस था ओगड़ विद्या मंत्र-तंत्र के किसी विधि या आध्यात्म कैसी भी विद्या हो यदि मृत्यु से बचाया जा सकता तो कभी मृत्यु होती ही नहीं। दूसरे यदि जन्म पर सफलता मिल जाती तो एक तरफ से मृत्यु से बचने वाले दूसरे जन्म से जीवन मिलने वालों की संख्या ही इतनी हो जाती कि खड़े रहने की भी जगह नहीं मिल पाती। उस परमात्म सत्ता ने परिवर्तन व्यवस्था इसीलिए की है कि सृष्टि पर नवीनीकरण की व्यवस्था बनी रहे।

ईश्वर रचना बड़ी सूझ बूझ से की गई है कि जीवन जीवनी में केवल जन्म और मृत्यु के समय में ही जीने की व्यवस्था उसने की है। जिसमें वह कुछ भी कर लो। कैसे भी जी लो मरना तो पड़ेगा ही।

यह कहना कहीं से कहीं तक ठीक नहीं है कि अमुक व्यक्ति जल्दी क्यों मर गया। उसकी तो उम्र ही अभी क्या थी। अर्थात मरने योग्य उम्र नहीं

थी। इसके अलावा उम्र के व्यक्ति क्यों अधिक जिए? इसकी तो उम्र औसत से भी कहीं ज्यादा हो गई। अभी तक क्यों जिन्दा रहा? आदि। इन सब का उत्तर यही है कि उम्र जितनी होगी उतना ही तो जिया जायगा।

डॉक्टर को धरती का भगवान मानते हैं। वह पढ़ा लिखा होता है। इलाज करता है। आराम भी होता है। यहाँ डॉक्टर का जीवन देने का करिश्मा नहीं कहेंगे। उसके पीछे यह है कि जो इलाज से ठीक हुआ है। उसकी जीवनी उम्र थी तभी वह इलाज से ठीक हुआ कहा जायगा। दूसरे इलाज करने पर भी मौत आती है तो यह तो कहते हैं कि इलाज नहीं लगा लगता भी कैसे ? उसकी जीवनी उम्र थी ही नहीं। यही तो कहा जाएगा। तब ही तो उसको इलाज से फायदा नहीं मिला। और मौत हो गई। इस पर ऐसे मैं डॉक्टर को भला बुरा कहना व्यर्थ है। डॉक्टर भी तो एक शरीरधारी मनुष्य है। उसने पढ़ाई पढ़ ली तो वह सृष्टि का भगवान थोडे ही बन गया। है तो वह धरती का प्राणी। जो इलाज करने का काम (धन्धा) करता है। बहभी तो अपने आपको मरने से नहीं बचा पाता है। उसे भी मरना पड़ता है। क्योंकि उसकी भी उम्र निश्चित होती है।

जीवन जीने के समय में ईश्वर के विद्यमानता को महत्व देना ही पड़ता है। इसमें कर्मो से बदलाव होते की मान्यता मानी जाती है। ईश्वरीय व्यवस्था है कि विश्राम से थकान दूर होती है। रात्री स्वप्न भूतकालिक कमियों और भविष्य के लिए संकेत होते है। तो दिवा स्वप्न अर्थात अनुभूतियों से सम्बोधित होते हैं कि अब आगे काम करने का मार्गदर्शन मिलता है। जो व्यक्ति इन गम्भीरताओं को समझता है। वह लाभ भी उठा लेता है। अधिकांश तो इनके महत्व और मतलब निकालने से अनभिज्ञ ही रहते हैं।

यह ठीक है कि मनुष्य जीवन के नित्य को नियमितता से जोड़कर जीवन जीता है। लेकिन परमात्म शक्ति का प्राण की विद्यमानता से यह मानो कि वह स्वतः होता रहता है। मनुष्य दिनचर्या के साथ जीता है। व्यवहार करता

है। ऐसे में भटकाओं से बचा जाता है। जीवन का उचित की ओर संचालन होता है। जो विकास का आधार होता है। यदि यह आधार नहीं हो तो न चिन्तन का आधार बनता है न नये पथ का और न नये अनुभव का विनिर्मित हो पाता है। जीवन में प्रगति की आकांक्षा रखी जाती है। बाधाओं से डरा नहीं जाता है और बदलाओं से घबराया भी नहीं जाता है। बल्कि उनका स्वागत के साथ जीवन सम्पदा को संजोया जाता है। अपनी गलती सुधारता है। तो अच्छा अपनाता है। पुराने अनुमान टूटते हैं। तो नये बनते है। मनुष्य जीवन गतिशीलता के साथ जीवन यापन होता है। चुनौतियाँ मनुष्य को जागृत करती है। तो आपदायें व्यक्तित्व का निर्माण करती हैं। इससे जीवन विकसित होकर पोषित होता है।

उपरोक्त सभी होतव्य है। जो होता रहता है। इस सबके बीच मनुष्य जीवन सम्पदा के अधिकाधिक उपयोगी बनाने के भरसक प्रयत्न प्रयास करता है। जिसके लिए वह अपनी प्रज्ञा बुद्धि ज्ञान और समझ से सोचता है। मन लगाता है। समझता है। कलाकृति के अनुसार, अन्जाम देता है। वैज्ञानिकता से सुख सुविधाओं को जुटाता है। दार्शनिकता के अनुसार वृत्ति की प्रवृत्ति बदलता है। तो धर्म धार्मिकता का पालन करता है। सन्तुष्ट होता है। जीवन को स्वस्थ रखने के लिए खान-पान करता है। शरीर ढकने के लिए पहनावा जैसी व्यवस्था जुटाता है। रक्षा सुरक्षा के लिए अपनी सभी सम्भावित निवास आदि की व्यवस्था करता है। एक मेव यही है कि मनुष्य सभी प्रकार से सुरक्षित रहकर जी सके ऐसी सुविधा व्यवस्था कर जीवन जीता है। यही चाह चाहना उसकी बनी रहती है।

मनुष्य है कि जिसे सामाजिक प्राणी से सम्बोधित किया जाता है। परिवार बनाता है। रीति रिवाज, परम्परा के चयन से जीवन बिताता है। अपने सामाजिक स्तरण को विकसित करता है। तो स्तर सुधार करता है? समाज में अपना स्थान बनाता है। कमाता खर्च करता है। बचत करता है। इस प्रकार से जीवन सम्पदा का उचित उपयोग ही उसके लिए श्रेयश्कर है। जीवन का

अनुचित उपयोग न हो, ध्यान रखने से जीवन सम्पदा को सफल माना जा सकता है। जीवन जैसे और जैसा बीतेगा वैसा परिणाम तो मिलेगा। बोओ और काटो जैसा जीवन का समुचित उपयोग संतोष का एक मात्र मार्ग है। तब ही स्वस्थ तन, मन स्वच्छ, आदर्श परिवार, सभ्य समाज जीवन की सार्थकता जीवन जिये सम्पदा का एक मात्र निश्कर्ष है। जिसे याद रखना सदा चाहिए।

जीवन जिन्दगी से जोड़कर अनुरूप जिये की सार्थकता सम्बन्धी कुछ भी कहा जा सकता है। समझा जा सकता है। किन्तु मनुष्य है कि मान्यता के बाहर है कि वह ईश्वर माया को पहचान पाता हो। रचना में उस परमात्म सत्ता ने जो कुछ कर दिया, उसके विरुद्ध मनुष्य कुछ भी नहीं कर सकता है। उसके द्वारा निर्धारित अवधि का ही जीवन मिलेगा। अर्थात जो निर्धारित है वही होता है। इससे अधिक कुछ नहीं।

मनुष्य अन्य प्राणियों की भाँति केवल पेट प्रजनन का ही जीवन नही जीता है। वह समाज बना कर जीता है। सामाजिक प्राणी है। वह धरती का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। ईश्वर का राजकुमार है। सृष्टि का मुख्य घटक है। सृष्टि प्रकृति प्राकृतिक साधनों से भरपूर है। मनुष्य तो उसका उपभोक्ता है। उसने इस सृष्टि पर अपने सुख सुविधाओं के लिए समष्टि का फैलाव फैला लिया है। उसे वह अपने कला, ज्ञान, विज्ञान की दाद देता है। सामाजिक होने के नाते परिवार कुटुम्ब, समाज, बना कर रहता है। समाज परिवार का अमूर्त रूप है। वह परिवार स्तर पर पारिवारिक है। सामाज स्तर पर सामाजिक होता राष्ट्र उसकी शासन व्यवस्था है। जिसका वह व्यवस्थापक है। हामी है।

नित्य अर्थात समय अर्थात जीवन जिए का मानव के लिए अनूठा ही उपहार है। उसका वह उपभोक्ता है। जो उसके लिए कर्मभूमि काल समय है। जिसमें वह जागरुक रहता है। उसे बुद्धि मानवीय, विरासत प्राप्त है। जो उसे जीवन के साथ उपयोगिता और उपयोगार्थ प्राप्त हुई है। आत्मा उसे परमात्मा

का अंश मिला है। जिसकी वह अपने लिए अनूठी विद्यमानता मानता है। जीवन को अनुकूलता के अनुसार बिताता है। वह सुकृत्यों से समय को स्वयं सुधारता है। तो समय उसे निश्चित ही अच्छे मे स्वीकारेगा। वह वर्तमान को सुधारता है। तो मौत मिलने की दशा में भी निश्चित सुधार होगा। आत्मा अकर्त्ता है। वह अपने शरीर (देह) से व्यवहार करता है। तब तो कर्तव्यों का पालन हो पाता है। कर्म के दो रूप हैं। एक पिछले जन्म कर्म तो दूसरे वर्तमान के नित्य में किये जाने वाले कर्म के अनुसार स्थिति की परिस्थिति उसके वर्तमान में सामने आती है। अनुकूल जीवन की आशा में वह वर्तमान के कार्य करता है। जो केलेन्डर बनकर सामने आता है। मानव तीन चौथाई अन्दर और एक चौथाई बाहर से जीता है। मनुष्य इसे समझता तो क्या किन्तु अनायास वह जीवन उतरने से सफलता मिलती है। उसके जीवित अवस्था में प्राण शक्ति का वजन कायम रहता है। जो उसके वर्तमान के अनुकूल होता है। मरने पर अर्थात प्राण निकल जाने पर वजन भी कम हो जाता है। क्योंकि वह मरने पर प्राणशक्ति का वजन बैठता है। कुछ भी करने लायक नहीं रहता है। मनुष्य ही है कि मृत शरीर को उसके परिजन, समाज जन दफना कर या अग्निदाह संस्कार कर पंच भूतों में मिलने के लिए छोड़ देता है। स्मृति अपने रीति-रिवाजों से बनाये रखता है। आत्मा परमात्मा का अंश है। स्पष्ट है कि जीवन का संचालन परमात्मा के हाथ में है। कठिनाई वहाँ आती है कि जहाँ वह स्वयं के मन मस्तिष्क, बुद्धि विवेक को काम में नहीं लेता है। मानव का नित्य है कि वह कल की आशा में अच्छा ही करता है। यह उसकी भविष्य निर्माण परम्परा में वह करता है। मनुष्य की चाह है कि वह आस्थावादी रहकर जीवन बिताये। जिससे ईश्वर की नजर में वह अपराधी नही बन पाये। इसीलिए वह विभिन्न प्रकार के आस्थावादी कर्म करता है। वह यह जानता है कि जीवन जीने की सीमा है। वह यह भी जानता है कि जीवन सदा बना रहने के लिए नहीं मिला है अतः उसे जीने का जो समय मिला है उसमें वह अपने जीवन को अनुकूल बना कर ही जिए। जीवन का अधिकाधिक नेक नियति के उपयोग में लाये। बस यही उसके मिले जीवन के

जिए की सार्थकता है। तब ही भूतकाल का घनत्व वर्तमान से कम होने के कारण हट जाता है। भविष्य का घनत्व जो कम था वह बढ़ जाने से वर्तमान में आ जाता है। यही कारण है कि भविष्य के लिए बनाई योजना का वर्तमान से ही पालन किया जाता है। मन स्वीकार करता है। व्यक्ति अपनाना नहीं चाहता है। किन्तु उसे मन स्वीकार छोड़े अथवा मन चाहे किन्तु मिले नहीं। व्यक्ति चाहे वह मिले नहीं। न चाहे छूटे नहीं। इसका कारण भटक भटकाव है। वह इस भटक भटकाव में रहे नहीं। अतः युगधर्म को अपनाता है। उसका यही युगधर्म वह समझता है कि सबके हित में सबको देखना अर्थात अपने हितकारी क्रिया कलाप को सामान्य हित में नियोजित किया जाना ही होगा। तब ही जीवन का वह युगधर्म होगा। पालन होगा। यह तभी होगा जब जीवन को अनुकूलता से जिए। बस इसी में उसकी सार्थकता है। सफलता है। अनुरूपता है। मनुष्य धन्य है।

--- * ---* ---* ---

६०. वक्त व्यक्त बात

हे! मनुष्य मैं तुझे मनाऊँ अब मन की बात समझाऊँ।
मेरी बात मान लिया सुनो जीवट तुझे बनाऊँ ॥
छोटी छोटी बातें ऐसी महत्व महात्म्य की होती।
रही धन सम्पत्ति अपार जगत में पर चरित्र शक्ति से छोटी ॥१॥

अहं भाव में मत भरमाओ अहो सरल सादगी सीखो।
बुद्धिमान से करो दोस्ती वाचालों से है मुँह मोड़ो ॥
आगे और बताऊँ क्या मैं सच्ची अच्छी आदत डालो।
सच सच्चाई अमर है रहती उसका विधान है मानो ॥२॥

बीसी बीस होती ऐसी सदा परीक्षा लिया करती।
अपने मन का भान न खोओ है मनुष्य मनुष्यता ऐसी ॥
अपने आप पूछो पहिले कौन मार्ग की चाल अच्छी।
मन की बात ऐसी वक्त आये दुहराई नहीं जाती ॥३॥

जीवन ही क्षण भंगुर प्यारे उसको मत व्यर्थ में खोओ।
मन को मनाये राखो ऐसे सदा झंझटों से छूटो ॥
मन कभी न धोखा देता है उसे मनाये सदा रखो।
उसे जोड़ लो आत्म प्रेरणा मन का उपहार पहिन लो ॥४॥

हम हमारा वह आपा है जो अन्दर वास किया करता।
अन्दर उसे ढूँढो ही नहीं तो बाहर वह कहाँ मिलता ॥
रूप स्वरूप कहीं नहीं मिलेगा अनुभूति भाव उसका।
विचार भाव गुण चेतना से उसको पहचाना जाता ॥५॥

शरीर मस्तिष्क आत्मा मन होती वही उसकी पहचान।
जीव मात्र में उसका वास वनस्पति रूप सौन्दर्य मान ॥
खनिज सम्पदा उसकी ऐसी गर्भ छिपाये उसे बैठा।
शरीर रूप उसका निराला ब्रह्माण्ड रूप उसका अपना ॥६॥

गर्मी बरसात जाड़ा तीन छः ऋतु मौसमी पहचाना।
वर्षा शरद हेमन्त शिथिर बसंत ग्रीष्म श्रृंगार दिखा देखा ॥
सेकण्ड मिनिट घण्टा दिन सप्ताह पक्ष महीना वर्ष होता।
बाहर महीना का एक वर्ष एक इकाई वर्ष गणना ॥७॥

समय एक वर्ष आध्यात्म जगत दो मुख्य नवरात्रा होती।
परिपूर्ण ज्योतिष शास्त्र विभिन्न मानक फल गिनती होती ॥
चैत्र महीना वर्ष प्रतिपदा को घट स्थापना जब होती।
अश्विन नवरात्रा उत्सव गरबा नाच सामूहकता दिखती ॥८॥

सांस्कृतिक राष्ट्रीय त्योहार उत्सव वर्षभर चलते।
व्रत उपवास विभिन्न कार्यक्रम जन मंगल के खूब होते ॥
है यही समयकाल भी चली प्रथा विभिन्न दिवस मनाते।
मन सम्प्रदाय अपने अपने त्योहार उत्सव जो होते ॥९॥

ईसर कौन कहाँ है मानव खोज खोज हारा।
मैं शरीर आत्मा रूप में तेरे अन्दर वास किया करता ॥
जब अपने अन्दर झाँकता तो मैं कौन हूँ सोचा समझा।
अन्दर देखा नहीं बाहर ढूँढ-ढूँढ मनुष्य हार माना ॥१०॥

ईश्वर न स्थापित किया जाता न निर्मित वह होता देखा।

स्मरण करो अन्दर आत्मा में प्रभु बसा सदा पास रहता ॥
सामान्य जन भाँति वह कही नहीं मिलता जुलता दिखता।
भाव का भूखा प्रेम की दीवाना वह सबका होता ॥११॥

पंथ जाति वर्ण सम्प्रदाय कर्म आधार आँख संकुचितता।
धर्म निजी सम्पत्ति नहीं होता वह तो सार्वजनिक होता ॥
निमित्त धर्म परिभाषा केवल सदाचार संकेत मिलता।
झूठ परे पाप नहीं सत्य परे कोई धर्म नहीं माना ॥१२॥

अस्तित्व के लिए मन मस्तिष्क में चिन्तन मनन चलता रहता।
जीवन प्रवाह में बहता है नियंत्रण छूटता जाता ॥
महत्वकांक्षा की चाह चाहना बढ़ती व्यस्तता देखा।
ईश्वर ने सभी कुछ दिया फिर भी मनुष्य माँगता ॥१३॥

विधि विधानों अर्चना पूजा भाव भावना प्रार्थना।
स्मरण मात्र की होती है आत्म देव की अन्तरआत्मा ॥
मनुष्य कल्पना परे असीम ससीम ईश्वर ही होता।
भाव कर्म किये का फल स्वतः स्वयं वह ही देता रहता ॥१४॥

प्रभु स्मरण होती योगी ध्यानी तपस्थ तपस्वी अन्तरात्मा।
वह तो सबका सब उसके होते है जग सारा उसका ॥
श्रेय श्रद्धा से दूरी घटती ईश्वर पास सदा रहता।
सुन्दर शरीर दिया उसने मानव कृतज्ञ धन्यवाद देता ॥१५॥

अच्छा अच्छाई धारण जीवन जीने का होता श्रृंगार।
ऊर्जा को धारण करना होता जीवन शक्ति मात्र सार ॥

महत्वपूर्ण लक्ष्य सिद्धि का वृत्तशील होना सोच विचार।
मनोभाव भाव भावना व्यक्तित्व का होता है परिष्कार ॥१६॥

सुनिश्चित लक्ष्य होता है मानव जीवन का साध्य साधना।
सफल व्यक्तित्व निखार आता है सेवा भाव आराधना ॥
निश्चित लक्ष्य होना अवश्य चाहिए मानव जीवन जीने का।
विचार भाव शक्ति मार्ग होता है तब सफलता पाता ॥१७॥

अवलम्बन में स्वावलम्बन होता है श्रद्धा सिक्त सहारा का।
असमर्थ को समर्थ बनाता आभास होता य उसका ॥
निमित्त पर्याप्त पूर्ति मार्ग खुलता जाता देखा ऐसा।
प्रत्यक्ष परिणाम को साक्षी क्या असंभव संभव होता ॥१८॥

मानव मन निर्मल होता सदा सहायता किया करता।
योग्यता, प्रखरता, क्षमता स्वतः वह उत्पन्न करता रहता ॥
ईर्ष्या द्वेष कपट से नारी महत्व महात्म्य घटा करता।
ममता प्रेम समर्पण नारी को वह शक्ति देता रहता ॥१९॥

दीन हीन कृपा मात्र मानव स्वयं को क्यों समझा करता।
आयु अक्षय नहीं कि धर्म कर्म कर्त्तव्यहीन नहीं होना ॥
दृढ़ संकल्पी हो तो मानव असहायी कभी नहीं होता।
मानव मन की दृढ़ता ही मनोबल होती नहीं क्षमता ॥२०॥

मन पतियायें स्मरण मनन उसका मानव करता रहता।
नित्य जीवन आदर्श मान मन में हो धीरता धारता ॥
अपना विश्वास प्रतीति एतबार मन की होती धारणा।

गलती सुधार मन विश्वास सब ठीक ठाक होता कहना ॥२१॥

शाश्वत का रूप सनातन अनोखा कहलाता कहना।
जो सदा रह सकता कायम वही जीवन आलम समझा ॥
वही सृष्टि का सत्य शाश्वत स्वरूप भरोसा माना जाता।
जो सनातन का शाश्वत है वही सत्य दिव्य कहा जाता ॥२२॥

आराध्य शक्ति क्षमता आपा छिपा तन नहीं निमित्त बनता।
गुरुमाता आँचल दुग्धपान शिशु सराबोर हो उठता ॥
नभवलय दिव्यत्व चेतना संचार माता का प्यार मिलता।
आद्यशक्ति का दुग्धपान साधक ध्यानमग्र जो किया करता ॥२३॥

है जन श्रुति शक्ति देवत्व से अलग कभी नहीं हुआ करती।
सोम बोध अंधकार पहचान का होता पर्यायवाची ॥
सोम की अग्नि में वही आहुति से सृष्टि की होती रचना।
सरस्वती ज्ञान, लक्ष्मीधन, दुर्गा शक्ति की रही अधिष्टाता ॥२४॥

एक वही परमात्मा प्राण शरीर आत्मा में बट जाता।
परमात्मा आत्मा आत्मा प्राण स्वरूप मैं जो झलकता ॥
परमात्मा आत्मा प्राण वही एक एक शरीर वास होता।
शारीरिक रूप एक से बहु वृहदाकार परिवार कहा ॥२५॥

युग दृष्टा युग पुरुष युगावतार गुरुवर।
लग पलटवार प्रज्ञायुग के तुम ही हो एक खेवनहार ॥
एक मई दो हजार एक से लगा प्रज्ञायुग समयकाल।
युग निर्माण योजना जो बनाई वह इहीकाल कमाल ॥२६॥

गायत्री के महामंत्र को अक्षर अक्षर कर स्पष्ट बतलाया।
कौन अक्षर क्या शक्ति रूप कल्याणी माने खोल समझाया ॥
हर अक्षर अपने आप में जैसे विशेष विशेषता होता।
अक्षर श्रृंखला से देखो तो आपका जीवन ही दिखता ॥२७॥

महामृत्युंजय का महामंत्र जो जीवन जीना सिखलाता।
कर्म क्रिया दैनिक व्यवहारी उसकी होती वह छाया ॥
नित्य प्रति पालन कहता कैसे जीवन चलना होता।
दिनरात चौबीस घंटे मनुष्य कैसे काम किया करता ॥२८॥

बदल बदलाव करते जो विचार भाव धरती अवतार।
लीला करते समाज में कोई कैसा करता विचार ॥
साधारण क्या असाधारण भी सोच नहीं पाता सार।
आये दिनों लीला से भी नहीं समझ पाते अवतार ॥२९॥

हमने मन की बात मैं भी सबकी बात को जोड़ दिया।
है शरीर स्वस्थ मन स्वस्थ मन स्वस्थ शरीर स्वस्थ समझा जाता ॥
जीवन जिये की उम्र खोज नही विज्ञान अव तक कर पाया।
मन मानसिक मानव मानस खोला राज वह बता दिया ॥३०॥

मन की बात संक्षिप्ताकार ग्रंथ या ज्ञान यज्ञ उसका सम्मान।
एक पाठ रोज पढ़ो देखो कैसा होता किसको ज्ञान ॥
मन आपा बतायेगा आत्मदेव कहा सबका प्रधान।
आत्म निर्माण अपना निर्माण होगा कहते सभी विद्वान ॥३१॥

संक्षिप्तकार गद्य ग्रंथ छोटी सी पुस्तक मत मानो जानो।

आत्मा प्राण मस्तिष्क बुद्धि साथ इन्द्रियों संचालित सच समझो ॥
मन की कहना सबको मानना ऐसा य प्रभाव देखो।
मानव तन से जो कुछ होता आत्मदेव की जय बोलो ॥३२॥

शरीर का स्वास्थ मन की शान्ति मानव मन भोगा करता।
क्यों माँग मगता बनना अरे तू है आत्मदेव आला ॥
तू दिलवाता तेरे बिना कोई नहीं पाता देखा।
तू ही प्राण बुद्धि इन्द्रियों से जिज्ञासा पूरी करवाता ॥३३॥

मन सदा साधो सध जाएगा देखो जीवन रंग लाता।
न देखो न बोलो न सुनो मन सब कुछ कर दिखलायेगा ॥
यही एक अकेला मन है जो सबका काम किया करता।
प्राण बुद्धि ज्ञान मन एक होते तब ही जीवन चल पाता ॥३४॥

धर्म धार्मिक भक्ति ज्ञान यज्ञ जैसे आयोजन क्यों होते।
बढ़-चढ़ खर्च होता जिनमें भेंट दक्षिणा खुलकर देते ॥
य प्रचलन व्यवसाय बन गया कुप्रचलन प्रोत्साहन फलते।
होड़ ईर्ष्या प्रतियोगिता जैसे क्या धार्मिकता कहते ॥३५॥

कथा भागवत ज्ञान यज्ञ जैसे आयोजन हुआ करते।
चरित्र चित्रण उस काल संस्कृति परिचय अवगत होते कहते ॥
धर्म कर्म सीख सिखावनों प्रेरणा मान अच्छे कहते।
अपनेपन को नहीं पहचाना तो क्या लाभ होते दिखते ॥३६॥

भला भलाई इसमें है कि स्वयं से स्वतः अवगत होना।
निज को नहीं सम्हाला तो सुनने देखे से क्या होता ॥

दवालिए से आराम मिले, दवा नाम क्या रोग मिटता।
समझ समझ का फेर यही है ऐसे ही धोखा होता ॥३७॥

क्या भगवान दक्षिणा माँगता या खाने भूखा बैठा।
वह भाव का भूखा है लूट समेटा कोई और करता ॥
मन से सोच सोचने की है एक अनेक बाते माना।
समझे काम नहीं किया तो मनुष्य मान मारना होता ॥३८॥

पाँच ज्ञानेन्द्रि पाँच कर्मेन्द्रि दस का संचालन मन करता।
हृदय गति संकेत प्राण मस्तिष्क तैयार मन को बतलाता ॥
मन की बात मन कहता देखो संदेश मन क्या क्या देता।
जीवन जीना किसको कितना य प्राण यहाँ मौन साधा ॥३९॥

आत्मा अजर अमर कहते न जलती गलती न कट सकती।
आत्म देव आत्मा जीवन देव प्राण है पर्यायवाची ॥
सोचो जीवन लम्बा कामना भावना है जो वलवती।
आत्मा परमात्मा स्वरूप में दर्शन लाभ दिया करती ॥४०॥

आत्मा प्राण स्वरूपा जीवन जियो समय आशय होता।
आत्मा सधे तो जीवन सधे जीवन साधो तो आत्मा ॥
दोनों में से एक को मानव जो साधा करता रहता।
वक्त व्यक्त की बात निराली एक रूप दो नाम कहलाता ॥४१॥

जीवन देव करो साधना स्वरूप रक्षा होती रहती।
जीवन देव भूखा तो कदम बढ़े नहीं आफत होती ॥
खाओ पिओ शरीर बने जीवन देव कहा माँग यही।
जीवन जी जिओ जिन्दगी आते जाते नमस्कार होती ॥४२॥

जीवन देवकी हो साधना आत्मदेव की उपासना।
जीवन जियो साधो समय आत्म देव प्राण रक्षा करना ॥
आत्मा आध्यात्म जीवन भौतिक जगत की होती छाया।
प्राण तत्व ईश्वर रूप भौतिकीय लपेट जीवन काया ॥४३॥

काल समय की बात एक जान लो व्यक्त मन ही कर देता।
जीवन जियो हँसी खुशी का आत्मदेव सभी कुछ देता ॥
बाहर क्यों ढूँढते उसको वह तो तुम्हारे मन में बैठा।
तुलसी कहे है मनुष्य प्राणी भ्रम जाल मिटाओ मन का ॥४४॥

आत्मा उसी का वासा तो कौन आत्मा को माने।
आत्मा हमारे शरीर में तो परमात्मा को कहाँ ढूँढे ॥
प्रभु करता वह आत्मा करती हर शरीर उसका माने।
आत्मा माना परमात्मा माना संतोष क्यों नहीं धारे ॥४५॥

उपासना साधना परमात्मा की है वह पालन हार।
आत्मदेव नहीं मानते फिर भी वह सबका मददगार ॥
मानव भूल करता कितनी आत्मा छोड़ भटका करता।
मंदिर मसजिद क्या जरूरत जब आत्म देव मन में बसता ॥४६॥

हमको ज्ञान हुआ जबसे आत्मा को माना तब हमने।
सभी जन आत्मा को समझते ऐसा कहना है तुमसे ॥
अब समझ में आया हमको ढूँढे से वह नहीं मिलते।
वही हमारे शरीर में है क्यों ना देखा उसे हमने ॥४७॥

आत्मदेव चालीसा समझो झूठा हो तो मन मानो।

विनम्र निवेदन तुमसे करते आत्मदेव देखो जानो ॥
मंदिर भोग लगाते निस दिन हम खाते बताते उसको।
आत्मदेव रोज देखते भोग क्या पेटभर हम खाते ॥४८॥

प्रत्यक्ष देव ऐसा वह तो हर दम काम हमारा करता।
फिर भी उसे नहीं पूजते दण्ड नहीं वह हमको देता ॥
उनके पालन पोषण को धंधा व्यवसाय करना पड़ता।
घर परिवार सभी जन आत्मा देखो तो सब में मिलता ॥४९॥

छोड़ो बाहर बैठाना उसे अन्दर घर में आने दो।
उसका घर स्थान नियत हो ऐसा जहाँ उसे रहने दो ॥
लगाओ दीपक पाठ आरती, रोज रोज करो देखो।
दुख दर्द में राह बतलाता समझो उसे प्रत्यक्ष देखो ॥५०॥

ईश्वर प्रदत्त योजना से मानव इतना भूला रहता।
निज आपा को आत्मा में पहचान नहीं फिर भी पाता ॥
यही कारण आत्मदेव की ओर ध्यान नहीं जा पाता।
बाहर भटके आशीष की चाह चाहना किया करता ॥५१॥

ईश्वर की योजना मानव को इतना ज्ञान दिया होता।
मानव स्वयं को भगवान मान किसी की फिर नहीं सुनता ॥
जीवन देव आत्मदेव वह स्वयं ही बन अमर हो जाता।
ईश्वरीय सनातनी परिवर्तन चक्र बदला सा होता ॥५२॥

ऋतु मौसम दिन रात जैसा कुछ भी नहीं होता दिखता।
जन्म मरण बजाय जन्म बाद मरे नहीं क्या ऐसा होता ॥

जो है वह है नहीं है वह भी नहीं स्थिति का होना होता।
सब कुछ स्थिर होकर यथा रूप स्तब्ध जहाँ का तहाँ होता ॥५३॥

ब्रह्माण्ड रचना पीछे स्तब्धता उद्देश्य नहीं रहा उसका।
प्रत्यावर्तन प्रतिवर्तन परिवर्तन पूर्व से लक्ष्य रहा ॥
तब तो मानव अपने से अपरीचित रखा गया ऐसा।
अब जब बात आई तो यहाँ वर्णन तथ्य स्पष्ट हुआ कहा ॥५४॥

राह बताता है वह हमें सोते स्वप्न अनुभूति द्वारा।
जब उसको माना नहीं तो स्वप्न अनुभूति नहीं समझा ॥
जिनने समझा लाभ उठाया य सुख शान्ति घर में वासा।
मानो या नहीं मानो सत्य कथन अनुभव होता साँचा ॥५५॥

भूल हो गई हमसे अब तो दूर करो अपनी गलती।
आत्मदेव को समझे अपना वह देता हमको मस्ती ॥
जीवन देव हमारे हम हैं आत्मदेव जीवन जिन्दगी।
कपड़ा हम बदलते हैं तो वह भी बदले अपनेपन को ॥५६॥

मन की बात नहीं करते तो आत्मा ज्ञान नहीं होता।
मन को मना देखोगे तुम उसे वह तुम्हारे पास होगा ॥
दुनिया के भूल भुलावे उसको भुलाकर क्या देखा।
मन को टटोल देखो तो ईश्वर हमसे सब करवाता ॥५७॥

वक्त व्यक्त बात बताते हैं जो अभी नहीं समझा हमने।
धर्म आस्था गंदा कर लिया छुआछूत माना हमने ॥
ईश्वरवास हमारे अन्दर रोज आत्मदेव बात करें।

क्या मदद करें करता वह सबकी उसको पहले माने ॥५८॥

जानो मानो देखो परखो प्राण तत्व वही ही होता।
आत्मदेव जीवन देव मान मनौती पूरी करता ॥
तो नित्य आत्मा देव ईश्वर मानक को मानना होगा।
मानना होगा कि ईश्वर आत्मा रूप प्राण ही होता ॥५९॥

तत्व तात्विक जो भी हो सृष्टि के हर तत्व तात्विक होता है।
सृष्टि रचना का औचित्य यही कि उसे समझना होता है ॥
प्राण को प्राण माने तो सृष्टि का औचित्य भी होता है।
इसीलिए तो कहा जाता ईश्वर सर्वव्यापी होता है ॥६०॥

प्राण के द्वारा मन वही इच्छा जिज्ञासा जागृत होती।
प्राण के द्वारा वाक वाक शक्ति वही शब्द व्यक्त हुआ करती ॥
मन वही इच्छा वाक प्राण की शक्ति जो जो व्यक्त जान पड़ती रहती।
मन ओर वाक अपूर्ण जहाँ बने प्राण बिना शून्य स्थिति ॥६१॥

आत्म प्राण पर्यायी है जहाँ मन इच्छा जिज्ञासा होती।
वाक मन दोनों प्राण बिना शक्ति काम नहीं किया करती ॥
मन इच्छा के लिए प्राण संचरण शक्ति होती बलशाली।
योगी योग बल पर उसे प्राण तत्व आभास होती ॥६२॥

प्राण देवता ऋषि है देव ऋषि ऋषि देव नहीं हो सकता।
प्राण तत्व शरीर का संचालन करता है माना जाता ॥
आयुर्वेदिक प्राण तत्व वायु जोड़ दूजा स्थान देता।
प्राण तत्व योग बल पर योगी उसे पूर्ण जान लेता ॥६३॥

प्राण वायु ऊष्मा समृद्धि सिद्ध तत्व ऐसा विज्ञान मानता।
ज्ञान परे विज्ञान क्या कहा ज्ञान ही तो विज्ञान होता ॥
हेर फेर मानव कहा करता उलट पुलट शंका करता।
ज्ञान को प्रमुख मानो तो सभी कुछ समझ आ जाएगा ॥६४॥

झूठ नहीं इसको मानो तो सोचो समझो सच क्या है।
अपने अन्दर वह नहीं दिखता तो कारण इसका क्या है ॥
यही कि उसे हमने विश्वास दे देखा नहीं वह क्या है।
जब समझ में आता है तब चले मुक्तिधाम को जल्दी है ॥६५॥

जन्म समय से याद करो उसे बोध करायेगा हमको।
हार न होगी कभी जीवन में है आश्वासन हम सबको ॥
ध्यान दिया जाय तो मार्ग दर्शन मन हमको देता रहता।
भूल हमारी यही कि मन की बात को अनदेखा करता ॥६६॥

मन की बात माना जाय मन कभी नहीं धोखा देगा।
सत्य को सत्य असत्य को असत्य सदा यही बतलाया करता ॥
हम हमारी आदत सुधारें सब कुछ ठीक ठाक होगा।
मन को साध लिया तो प्राण उसके बाहर नहीं जाता ॥६७॥

दूरदृष्टि आत्मज्ञान भविष्य कथन इसको विज्ञ कहते हैं।
मन की बात मन से कर लो यही आत्मज्ञान उपलब्धि है ॥
आत्मज्ञान जीवनज्ञान सब कुछ मालूम हो जाता है।
इसी क्रम में जीवन ढालें यह सभी स्वयं पर निर्भर है ॥६८॥

पैदा होते नहीं जानता कोई शिशु जीवन गाथा।

परिवारी संस्कार मिलते वैसा जीवन आदत ढलता ॥
शिशु काल से आत्मज्ञान का जीवन ढले आदत बनना।
समय साथ मार्गदर्शन भविष्य मान जीवन चल पड़ता ॥६९॥

सद् इच्छा की यही परम्परा में वही भविष्य छिपा रहता।
शिशुकाली जीवन सम्हालें माता-पिता कर्त्तव्य होता ॥
विकास काल समय गति प्रगति में भविष्य निर्माण होता देखा।
आत्मज्ञान दूरदृष्टि भविष्य दर्शन सरल सादगी होता ॥७०॥

ईश्वर ने प्राण बुद्धि मन जिज्ञासा पर्याप्त दी है सबको।
बचपन के संस्कार मिले तो पूरा लाभ होता तन को ॥
वक्त व्यक्त बात कही जाती समझे सोचे जाने इसको।
प्राण तत्व की गति प्रगति देव स्वरूप जीवन मिले सबको ॥७१॥

मौलिक रचना युग बोध चालीसा नाम दिया है जिसका।
सृष्टि काल इतिहास श्रृंखला साधना परिचय उनमें छिपा ॥
चालीसा माध्यम मन जुड़ अन्तः शक्ति उभार प्रकट होता।
भाव भावना आत्मासात शक्ति चरीत्र की ग्रहण विशेषता ॥७२॥

मन की गद्य संक्षिप्ताकार में दो चालीसा जोड दिया।
मन मानसिकता अन्तः चेतना का भाव जागृति होता ॥
यह प्राण स्वरूप आत्म देव चालीसा आत्म शक्ति दर्शाता।
बासंती शारदी दो नवरात्रा होती प्राकृतिक छाया ॥७३॥

मनोभाव अनुकूल देव स्वरूप चित्रण आभास होता।
नाक स्वर आँख व भुजा फड़कन शकुन विचार पता लगता ॥

चलते चलते कदम ढिटक दिशा बोध संकेत मिला करता।
अनुभव अभ्यास भले बुरे का संकेत यही ज्ञात होता ॥७४॥

बौद्धिकता ऐसी होती गुरुज्ञान उभार आता देखा।
कल्पना से असंभव चित्रण का भी सोच बना लिया जाता ॥
कभी भी मन की उड़ान गति को नापा नहीं जा सकता।
दूरदर्शिता भविष्य सफलता वर्तमान आभास होता ॥७५॥

तर्क शब्द पर शब्द का प्रहार तभी तर्क मन बहस करता।
अपने पक्ष की प्रबलता दूसरे पक्ष की हीनता कहा ॥
श्रम शरीर शर्मसार हीनता कारण नहीं परास्त का।
तार्किक शब्द की सत्यता परिणाम विश्वास जगाता मन का ॥७६॥

तर्क बाद को न्याय निर्णय का आधार माना जाता।
वाद परिवाद वकालत मुख्य पहलू सीखा जाता ॥
न्यायाधीश बिना शब्द वाद समझे निर्णय नहीं देता।
तब ही तो कानून नियम प्राविजों का सहारा लेता ॥७७॥

शासन तन्त्र के अधिकारी अपने मन में सोच समझता।
कानून की धारा पर सोच समझ नियम बनाना होता ॥
नियम कानून धारा समझता प्राविजो स्पष्ट करता।
निर्णयित परिणाम सत्यता घोषणा गलत को दण्ड देता ॥७८॥

वैज्ञानिक प्रयोग में दिल दिमाग मन लगाया करता।
अन्तः की सूझ बूझ प्रयोग परीक्षण तब सोच बनता ॥
निराशा में आशायित हो उलट पुलट परीक्षण करता।

सफल सफलता मिलती तब वह तो सृजनात्मक आनन्द लेता ॥७९॥

साहित्यकार अपने में वह तो एक अनोखा ही होता।
जहाँ न पहुँचे रवि साहित्यकार का मन वहाँ जा लगता ॥
शब्द चयन वाक्य पद का लेखन रचना भूमिका विकसाता।
बुद्धि विशेषता भाव साहित्य में वह मन की बात कहता ॥८०॥

ईश्वर की यह माया चतुराई माद्या सब में होता।
मन की बात एक यही कि जानकार बखान नहीं करता ॥
विपरीत कि अधकचरा अपना बखान करते नहीं थकता।
प्रतियोगी जब आ जाय तो वह दुम दबा छिपता दिखता ॥८१॥

मन का एक प्रबल आलम है प्रश्न जवाब तत्काल ढूँढता।
हेकड़ शालीनता से पछाड़ दिये बिना नहीं मानता ॥
मन की हार कभी नहीं रही हीनता अहसास करना।
हीनता शिथिलता डालती हाथ का काम मुश्किल होता ॥८२॥

जब मन न लगे तनाव सताय लेट झपकी शान्ति पायें।
पैदल घूमे सुस्ति मिटे तनाव से यों निजात पाये ॥
कुछ नहीं तो हँसे हँसाये खेले बच्चों से किलकायें।
फिर भी नहीं तो चुप बैठ मनन चिन्तन लगे तनाव मिटे ॥८३॥

बचपन की सभी बातें याद नहीं रहा करती सबको।
बच्चे देखो समझो वे कैसे क्या क्या करते समझो ॥
मन मानसिकता की सब बातें वृत्ति प्रवृत्ति होती सबमें।
हाँ अन्तर होता मेल मिलाप होता लगभग सबमें ॥८४॥

बचपन में सीख सिखाता परिवार महत्व महात्म समझे।
समय निकल जाने पर बेसकीमती को फिर क्यों कोसे ॥
आने वाला पल अच्छा होय जाने वाला कल भूलें।
वर्तमान को आज संवारे आने वाला कल सुधरे ॥८५॥

भला बुरा जो कुछ जब कभी किसी भी उम्र में हो सकता।
मन मानसिकता सब अनुकूलता को सदा स्वीकारता ॥
सदव्यवहार ज्ञान सदशिक्षा सदाचार का महत्व होता।
जीवन मिला तो अच्छा हो समझ करे यही ठीक होता ॥८६॥

बाहर निकले कम्फर्ट जोन से अच्छा पक्ष इसे समझें।
अपने आप को सिमिटाये नहीं विकास गति को पकड़े ॥
सामान्य हित में सभी का हित होता है सोचे समझें।
एक अकेला निज स्वार्थ छोड़े मानवता को स्वीकारे ॥८७॥

अगर मूड जाय खराब असर लाइफ रिश्तों होता।
मूड सुधारो का यही तरीका बच्चों को दे सदशिक्षा ॥
बचपन चुक जवानी आई मूड मॉडल बनता गया।
पति-पत्नी रिश्तों में समझो मूड सुधार करना जरूरी होता ॥८८॥

एनरजेटिक बने एक बार में एकल काम ठीक होता।
गहरी पूरी नींद थकान मिटे तरोताजा हुआ ॥
एक के बाद एक काम को अपनी सफल होती योजना।
ए एनर्जी बनी रहेगी घाटा नहीं उठाना पड़ता ॥८९॥

है रिश्ते इन्सानी जिन्दगी की प्रत्यक्ष सम्पत्ति जीवन जीना।

करीबी रिश्ते कुछ नजदीकी कुछ पूरी चाह चाहना ॥
पर्सनल स्पेस ही जहाँ वहाँ समय बीते अच्छा लगता।
दूरी से यह नजदीकी रिश्तों को मजबूत करना लगता ॥९०॥

जब जैसा करना होता वैसा सोच बनाना पड़ता।
अपने विचार का सोच बने तब ही उन्नत हुआ जाता ॥
जैसे को तैसा मिले तब परस्पर निर्वाह सही चलता।
रिश्ते उलट पुलट मिल जाये तो निर्वाह कठिन हो जाता ॥९१॥

सभी सामान्य इच्छा सिद्धान्त में लाभ अंश बटकर मिलता।
निजी इच्छा कामों में स्वयं सबको लाभ अधिक होता ॥
दो नम्बरी काम में लक्ष्य संगठित इच्छा मजबूती होती।
एक नम्बरी काम में संगठित इच्छा भिन्न भिन्न दिखती ॥९२॥

कलाकार कलाकारिता अलख मन का चिन्तन बतलाता।
प्रकृति दर्शन मनमलीनता हँसी खुशी चित्रण झलकता ॥
अवसाद विषाद सेवा क्रूरता दृष्टि झाँक प्रतिमा भला।
मन कल्पना तूलिका कमाल कला की कल्पना विशेषता ॥९३॥

दुष्टता क्रूरता द्वेष भाव छिपाय नहीं छिपता देखा।
बात बात नोक झोक गलती पकड़ आलोचना करता ॥
गंभीरता मनोभाव सम्हाल स्थिति सोच बनता रहता।
गलती को टाले उलटवासी से जवाब दिया करता ॥९४॥

मन मर्जी भाव भावना कष्ट भड़ास विरोध करना।
दूजे का नुकसान निज लाभ मुख्य कपट जहाँ छिपा ॥

मीठी मीठी बाते कह घाव नहीं कोई भर पाया।
छिपा चोर भड़ास पकड़ाये में आये नहीं चूकता ॥९५॥

अनेकों नेक नेक अनेक छोटी बात समझी जाये।
वक्त व्यक्त यही बात मन को खोजे बिना नहीं पकड़ावे ॥
साँच समझ की है विशेषता को खोजे नहीं यदि मन धारे।
अपराधी पहचान फोरेस्टिक साइंस पिछड़ जाये ॥९६॥

सबकी कुशल कुशलता यहाँ हम मन की बात बतलाता।
मन दुरुपयोग छोड़ सदुपयोग मन लगे अच्छा कहते ॥
है मन सबका साथी है दुष्मन पाठ उसे पढ़ाया जाता।
आत्मदेव को पहचानो सब कुछ ठीक ठाक हो जाता ॥९७॥

मन सन्तोषी धीरज धारणा जीवन सफल बना देता।
उच्छश्रृंखल उद्दण्ड हो जाय तो बदनाम नाम को कर देता ॥
ज्ञानी ध्यानी योगी साधक ईश्वर मैल मिला देता।
क्रोधी हिंसक हो जाय तो शरीर दुर्गति करवा देता ॥९८॥

दानीदाता मन की दशा सभी के लायक हो जाता।
लोभी लालची स्वार्थी सदा भ्रष्टाचार को पनपाता ॥
सबके हित को जब चाहे तो मान सम्मान खूब पाता।
सूम सूमड़ा मन की हालत अपुन आप धिक्कार देता ॥९९॥

जब जो हिलमिल रहे परिवार नाम कमा लेता।
सहयोग सहकार सामाजिक मानव मन की विशेषता ॥
मन को साधे ऐसा जैसा देव देवता गुण होता।

धरा स्वर्ग लोक हो जाये मिले स्वर्गिक आनन्द लहराता ॥१००॥

बेटी एक अनोखी कही दो परिवार प्रभावित होता।
अच्छा चाल चलन चले तो मायका ससुराल धन्य होता ॥
हस्तनी पद्मनी परिवार सत्ता का सौभाग्य उजालता।
शंकनी डंकनी पति परिवार मिटा मायका नाम होता ॥१०१॥

मन तो अति निर्मल है जिधर मोड़ो उधर वह मुड़ जाता।
मोड़ मरोड़ ऐसा दिखे वह सबको अपना कर लेता ॥
अपनेपन को सब चाहेंगे सबके लायक वह होता।
बना लो या बन जाओ भला भलाई इसमें ही अच्छा ॥१०२॥

कभी ठीट हटीला बने न मन आदत बुरी छोड़े मन।
मन मर्जी हटधर्मी मन की भड़ास बुरी आदत पहचान ॥
मन में गाँठ लगे नहीं मन मुटावों से हो सावधान।
सभी हिलमिल बोलो चालो लगी गठान खुली पहचान ॥१०३॥

रूठे उससे सम्पर्क बनाय रखना बुरा नहीं होता।
भले टालमटोल दिखायेगा खुद समझ आ जाएगा ॥
अहं अहंकार उसका पलट सामान्य स्तर पर आ जायेगा।
स्वयं गलती स्वीकार लेगा मन मेल स्वतः घुल जाएगा ॥१०४॥

सीख सिखानी सब कह डाली फिर भी छूट गई अनेक।
वक्त व्यक्त की बात एक य सीखो सीख छोड़ो टेक प्रत्येक ॥
अच्छे को अच्छा कहते हैं अनेक नेक की बात एक एक।
सभी को मन से मानो अपना समझा तुमको चाहे प्रत्येक ॥१०५॥

दुनिया ऐशो आराम घर परिवार बाहर मिल सकते।
देश-विदेश हद ज्यादा भोगे जा सकते ॥
वैभव विलासिता का जीवन मन सबको ठुकरा देते।
लगाव घर परिवार दौड़-दौड़ परिजनों मिलने आते ॥१०६॥

वैभव आकर्षण हिले मिले स्वास्थ लाभ प्रीति होता।
य घुटना पेट को मुड़ता अपना सगा श्रेष्ठ सिद्ध होता ॥
सबसे सुन्दर सबसे प्यारा घर परिवार का क्या कहना।
फीके सभी रिश्ते नाते घर परिवार निराला आला ॥१०७॥

एक सौ आठ का हीरक हार मन स्वागत सबका करता।
कर्म कृत्य के फल भोग अपनों बीच जीना मरना अच्छा ॥
मन की बात समझो तो अच्छा है मानवता का जीना।
यह राज खुला समझ आया जीवन का उपयोग होना ॥१०८॥

मन ! जानो !! मानो !!!

आत्म कल्याण मन आत्मदेव जगाये होता।
आत्म चिंतन खोज खबर व गलती बतलाता ॥
'मन की बात' ऐसी जो क्या समझा क्या जाना।
क्या करना क्या नहीं करना मन खुद निर्णय देता ॥

सोचो समझो मानो जानो सीखो वह वाणी
मन का आपा खोल बताये ऐसी एक प्रणाली ॥
मन मानसिक दशा दिशा बात बतलाया करती।
'मन की बात' मानो प्यारे खुशियाली रंग लाती ॥

हाँ! मन अतीन्द्रिय क्षमता वाला होता।
ईश्वर अपार मन कमाल समझा जाता ॥
संप्रेषण अंग विन्यास मन संकेत करता।
दूरदृष्टि मन तुष्टि संतोष शान्ति देता ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः

मन क्या है ? क्या करता ?
मानव मानसिकता पहचान का अपना साथी

मन की बात

-हिन्दी-

आधुनिक भाषा भाषी
गद्य शैली में लिखित

गद्य ग्रंथ

मानव मन का मूल्य परक जीवन सुधार सम्पदा के रुप में

तुलसीराम प्रजापति
४६ बाण गंगा मेईन रोड, इन्दौर (मध्यप्रदेश)
मों 9826799243

लेखक परिचय

आराध्य शक्ति गुरु सत्ता कृपा जन्म जीवन मिला।
बुद्धि सोच तन क्षमता प्रेरणा अवसर जो था।।
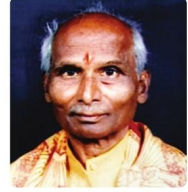
नाम - तुलसीराम प्रजापति

जन्म - दिनांक 8 मई सन् 1935

पिता - श्री हरिप्रसाद प्रजापति माता गंगाबाई प्रजापति

गोत्र - तेनगुरिया

शिक्षा - बी.ए., सा. विशारद, इन्टर ग्रेड ड्राइंग & पेन्टिंग और एल.एल.बी. (प्र.)

शासन सेवा - नियुक्ति सन 1962 एवं सेवा निवृत्ति सन् 1997 हुई।

पता - 46, बाणगंगा मेन रोड इन्दौर मो. 9826799243

पत्नि - योगवती प्रजापति

पुत्र - नरेन्द्र मो. 9425320276 और राजेंद्र मो. 9303226974

पोत्र - जयन, ऋग, केतन और प्रवग

पुत्री - इन्दू

नातिन - यक्षा और कितिक्षा

आर.एस.एस. से जुड़ाव था। स्वतन्त्रता आन्दोलन चल रहा था। अँग्रेज शासन की यातनायें झेली। परिवार बिखराव हुआ। बड़े ताऊ की मौत हुई। भाई को जेल हुई। मैं कक्षा 3 में था। पुलिस हिरासत रही। ननिहाल आया पीछा छूटा। समाज सेवा में रुची थी। अच्छे लोगों से मार्गदर्शन मिला।

समाज सेवा स्थानीय से राष्ट्रीय स्तर कार्यकर्त्ता का श्रेय मिला। सन 1950 मास्टर सा. श्री कन्हैयालाल चारण ने गायत्री चालीसा दिया। पू. गुरुदेव श्रीराम शर्मा आचार्य ने स्वयं ब्रह्मास्त्र अनुष्ठान महायज्ञ में दीक्षित किया। मिशन में सक्रियता रही। सभी बड़े आयोजन में कार्यकर्त्ता का गौरव मिला। पहचान बन गई।

महाकाव्य लिखने की इच्छा पू. गुरु ने उपजाई।
कल की बात छोड़ दो बेटा काव्य अभी रचना है।।
मदद करेगा महाकाल जो उसका काम करेगा।
दादा गुरु के अशीस से महाविजय को पायेगा।।

पूज्य गुरुदेव का स्पर्श कलम मिला। युग प्रज्ञावतार साहित्य लेखन हुआ-

(1) स्मृति के चित्र
(2) प्रबन्ध प्रत्युष
(3) ग्रामीण समाजशास्त्र
(4) नगरीय समाज शास्त्र
(5) प्रज्ञावतार का प्रज्ञायुग - लीलासंदोह महाकाव्य
(6) प्रज्ञा प्रकाश - युग निर्माण लीला संदोह महाकाव्य
(7) हम हमारे वंश वंशज
(8) युग सुधा - गायत्री मंत्राक्षर शक्ति ग्रंथ
(9) ब्रह्मांजली - ब्रह्मावंश वंशजी सृष्टि महाप्रबन्ध काव्य
(10) युग धारा
(11) मन की बात
(12) युग बोध चालीसा
(13) युग प्रभा - त्र्यंवकं महामृत्युंजय मंत्राक्षर शक्ति ग्रंथ
(14) युग बोधक प्रतिमान
(15) राजकीय स्वरूप आधार
(16) युग विषय विचार
(17) महाशक्ति गायत्री नाम
(18) माँ भगवती और प्रज्ञावतार - लीला संदोह महाकाव्य
(19) काव्यांजली
(20) एकांकी नाटक
(21) सत्या सत्य का हिताहित
(22) पारिवारिक जीवन के तौर - तरीके
(23) आचार्य श्रीराम शर्मा का साहित्य
(24) हमने जिया जीवन
(25) विनय पाती
(26) विचार समाधान
(27) साधना भास्कर
(28) प्रज्ञावतार भास्कर
(29) युग प्रज्ञावतार सरोकार
(30) मन मंथन संप्रेक्षण।

भवानी शंकरो श्रद्धा विश्वास रुपीणों रहे तुलसीदास।
युग प्रज्ञावतार साहित्य तुलसीराम लिखा तो हुआ उल्लास।।